मादक औषधियां

लोकोपयोगी विज्ञान

मादक औषधियां

अनिल अग्रवाल

चित्र
पवित्र घोष

अनुवाद
चन्द्र शेखर श्रीवास्तव

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

यह पुस्तक पुनर्निर्मित पर्यावरण-मित्र कागज पर मुद्रित है।

ISBN 81-237-1719-9

पहला संस्करण : 1996 *(शक 1917)*

Narcotic Drugs *(Hindi)*

रु. 46.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

यह पुस्तक समर्पित है
मेरी माता कमला
मेरे स्वर्गीय पिता श्री कृष्ण चन्द्र
मेरे परामर्शदाता प्रो. एन्थनी बुसूटिल और
मेरे मित्र प्रो. एस. के. खन्ना को
जिन्होंने मुझे तार्किक, विवेकपूर्ण और वैज्ञानिक
दृष्टिकोण से सोचना सिखाया

विषय-सूची

आभार

मैं लंदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर महारानी के सीमा शुल्क विभाग में निरीक्षक के पद पर कार्यरत अपने मित्र श्री पी. के. चक्रवर्ती का धन्यवाद करना चाहता हूं, जिन्होंने पुस्तक लिखने के दौरान पूरे मन से मेरा उत्साह बढ़ाया। उन्होंने मुझे इस पुस्तक में प्रयुक्त कुछ मूल्यवान सामग्री भी उपलब्ध कराई। अपने लंदन प्रवास के दौरान मुझे उनके निकट रहकर विचार-विमर्श करने का अवसर मिला और मुझे उनके मादक औषधि नियंत्रण के क्षेत्र में व्यापक अनुभव से काफी लाभ मिला।

मैं 'साइंस रिपोर्टर' के मुख्य संपादक डा. जी. पी. फोंडके का भी आभारी हूं जिन्होंने यह पुस्तक लिखने के लिए मुझे प्रोत्साहित किया। पुस्तक लिखने के प्रारंभिक दौर में मेरी कई जानकार व्यक्तियों व मित्रों से उत्साहवर्द्धक बातचीत हुई जिसका सार इस पुस्तक में है। इन मित्रों में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के सहायक प्रोफेसर डा. आर. के. शर्मा और जनरल अस्पताल, गुड़गांव के वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी डा. एस. के शर्मा प्रमुख हैं। प्रकाशन उद्योग के मेरे कई मित्रों ने मुझे पुस्तक लेखन के सूक्ष्म भेदों से भी परिचित कराया। मुझे जब भी कोई दिक्कत आयी, मैंने इन्हीं लोगों से मदद मांगी और इन्होंने मुझे मदद देने में काफी उत्साह दिखाया। इनमें प्रमुख हैं—एप्लाइड मीडिया के श्री सुधीर बंसल, बटरवर्थ्स के श्री रवीन्द्र सक्सेना, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस के श्री राजेन्द्र सिन्हा, सुश्री मोहिनी वर्मा व श्री सी. बी. शर्मा, 'साइंस रिपोर्टर' के श्री पल्लव बाग्ला और कोलेगल शर्मा और 'विज्ञान प्रगति' की श्रीमती दीक्षा बिष्ट। विदेशों से मेरे कई मित्रों और संबंधियों ने मुझे पूरा सहयोग दिया। इनमें प्रमुख हैं—एडिनबर्ग से मेरी बहन रेवा वासुदेव, और भानजी कविता, रोम से मेरे भाई सुनील और फ्लोरिडा से मेरे भार्यानुज विक्की। पर्थ से टोनी, ऋतु, अनीता और संजीव गुप्ता ने मुझे कई रोचक और लाभदायक सुझाव भेजे। दयाल सिंह कालेज के भूतपूर्व प्रो. एस. पी. गुप्ता मेरे लिए प्रेरणा के मुख्य स्रोत रहे हैं। मेरे अन्य

मित्र, जिन्होंने मेरा उत्साहवर्द्धन किया, ओपल एडवर्टाइजिंग एंड मार्केटिंग के श्री अखिल जैन, दयाल सिंह कालेज के श्री हंसराज शर्मा और देशबंधु कालेज के डा. पी. के. मुखर्जी हैं।

मैं खासतौर पर नेशनल बुक ट्रस्ट में अपनी संपादिका सुश्री मंजु गुप्ता का धन्यवाद करना चाहता हूं, जिन्होंने इस पुस्तक के लिखे जाने के दौरान असीम धैर्य का परिचय दिया। अगर मैं आज जिंदा हूं तो यह उन्हीं की मेहरबानी है। किसी दूसरे संपादक ने तो मेरे विलंब के कारण मुझे मार डाला होता। हमेशा की तरह उनके साथ काम करना आनंददायक रहा।

कम्प्यूटर में कई विशेषज्ञ नवयुवकों ने मुझे मेरे कम्प्यूटर और वर्ड प्रोसेसर की दिक्कतें दूर करने में सहयोग दिया। इनमें प्रमुख हैं—भृगु सेली, अरविंद लाम्बा, वनीत पसरीचा और राजा साही। मैं सचमुच नहीं जानता कि उनकी मदद के बगैर मैं अपने कम्प्यूटर पर कैसे काम करता।

मैं यूनाइटेड न्यूजपेपर नेटवर्क के श्री वाइ. एस. गिल और श्री प्रदीप भट्टाचार्य का धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने मुझे पोस्त के डोडों (फलों) की रंगीन पारदर्शियां उपलब्ध कराईं। सुश्री सर्वेश ने मुझे सन के रंगीन छायाचित्र उपलब्ध कराए। जी. बी. पंत अस्पताल के रेडियोलॉजी विभाग में एसोशिएट प्रोफेसर डा. सतबीर सिंह ने मुझे मादक औषधियों से संबंधित डाक टिकटों के चित्र उपलब्ध कराए।

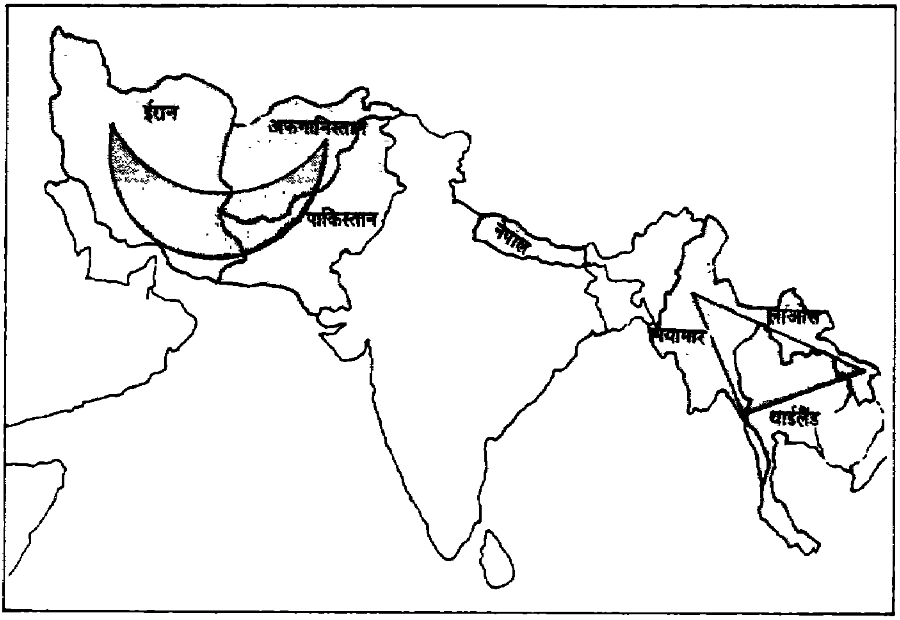
अंत में, पर सबसे कम नहीं, मैं आभारी हूं अपनी पत्नी अपर्णा और अपने दस वर्षीय पुत्र तरुण का, जिन्होंने मेरे पुस्तक लिखने के दौरान धैर्यपूर्वक सब कुछ सहा।

जनवरी 1995 **—अनिल अग्रवाल**

प्रस्तावना

'मादक औषधियां' आज एक बहुचर्चित विषय है। अक्सर हम पढ़ते हैं कि हवाई अड्डों पर सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा मादक औषधियां जब्त की गई। अधिक से अधिक युवा इन औषधियों की गिरफ्त में आते जा रहे हैं। आज हमें औषधियों के अवैध व्यापार और इनके दुरुपयोग की दोहरी समस्या का सामना करना पड़ रहा है। यह समस्या पहले इतनी गंभीर नहीं थी। संसार के सबसे बड़े अवैध व्यापार क्षेत्रों के बीच हमारे देश की भौगोलिक स्थिति के कारण समस्या और गंभीर भी हुई है। दक्षिण पूर्व एशियाई देशों–वर्मा, थाईलैंड और लाओस (जो कि 'सुनहरा त्रिकोण' के रूप में जाने जाते हैं) और निकटवर्ती व मध्य एशियाई देशों–पाकिस्तान, अफगानिस्तान और ईरान (सुनहरा चांद) के बीच फंसे होने से भारत मादक औषधियों की तस्करी के एक बड़े मार्ग के रूप में उभरा है। 'सुनहरा त्रिकोण' और 'सुनहरा चांद' अवैध औषधि व्यापार की दो बड़ी धुरियां हैं। इसके अलावा उत्तर में नेपाल है जो कि मादक औषधियों के विश्व बाजार में हशिश और मैरिजुआना की आपूर्ति का सबसे बड़ा स्रोत है (चित्र 1)।

मादक औषधियों के दुष्प्रभावों से बेखबर अधिकांश नवयुवक महज जिज्ञासावश इनका सेवन करते हैं। अंग्रेजी में कहावत है 'क्रियोसिटी किल्स द कैट' और नशे की लत लगने में भी ऐसा ही कुछ होता है। लोकोक्तीय मछली की तरह जो कि हरेक चारे पर मुंह मारती थी, युवाजन भी इन औषधियों के चंगुल में बुरी तरह से फंस जाते हैं। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि उनकी इस जिज्ञासा को रचनात्मक ढंग से शांत किया जाये ? ये औषधियां क्या हैं ? इनका हमारे शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है ? वे हमारे शरीर को कैसे नुकसान पहुंचाती हैं ? इन औषधियों में ऐसी क्या खासियत है कि वे व्यक्ति को चूहेदानी में चूहे की तरह फंसा लेती हैं ? हम इन औषधियों से कैसे बचे रह सकते हैं ? आगे



चित्र 1 : भारत 'सुनहरे त्रिकोण' और 'सुनहरे चांद' के बीच स्थित है और नेपाल के कारण यह मादक औषधियों की तस्करी के लिए अति-संवेदनशील क्षेत्र बन गया है।

के अध्यायों में हम इन प्रश्नों के उत्तर तलाश करेंगे। अधिकांश औषधियों का अनूठा इतिहास है। कई औषधियों के साथ आश्चर्यजनक मिथक, आख्यान और लोककथाएं जुड़ी हुई हैं। इससे इनका अस्तित्व ही रहस्यपूर्ण और महिमा-मंडित हो गया है। इस रहस्य को तोड़ने और सचाई को जानने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है। सचाई की खोज में हम उन दूर-दराज के अनोखे देशों की यात्रा करेंगे जहां इन औषधियों के सेवन की प्रथा शुरू हुई। इन सबके अलावा इन औषधियों को नवीन वैज्ञानिक दृष्टि से भी देखा जायेगा। इस प्रकार कथा को दिलचस्प और रोमांचपूर्ण बनाने के साथ-साथ, लोगों की जानकारी के लिए, और विशेष रूप से युवाओं की जिज्ञासा को शांत करने के लिए, जो हमेशा ही औषधियों के बारे में और ज्यादा जानने को आतुर रहते हैं, कुछ कटु वैज्ञानिक तथ्य भी दिये जायेंगे।

अगर यह पुस्तक मादक औषधियों के दुष्प्रभावों को सही परिप्रेक्ष्य में उभार कर युवाओं को इनका शिकार होने से बचा सके तो मैं समझूंगा कि मेरे प्रयासों का मुझे उचित पुरस्कार मिल गया। मुझे पाठकों की रचनात्मक आलोचना प्राप्त

करके भी खुशी होगी, ताकि अगले संस्करण में उन्हें शामिल किया जा सके। ऐसे सभी सुझावों को उचित श्रेय दिया जायेगा और अगले संस्करण में उनका आभार प्रकट किया जायेगा।

–अनिल अग्रवाल

1

मादक औषधियां : कुछ बुनियादी तथ्य

अलग-अलग लोगों के लिए 'औषधि' शब्द का अलग-अलग अर्थ होता है। कुछ लोग पीड़ानाशक गोलियों को औषधि मानते हैं पर आंख की किरकिरी दूर करने वाले लोशन को नहीं। कुछ के लिए एंटिबायोटिक कैप्सूल औषधि है, पर सड़ते घावों पर लगाने की मलहम नहीं। कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो सभी दवाओं को औषधि मानते हों। पर सचमुच में औषधि है क्या ? विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की परिभाषा के अनुसार कोई भी चीज जो प्राणी की जैविक प्रक्रियाओं में परिवर्तन कर दे औषधि है। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि ज्यादातर चीजों को औषधि माना जा सकता है। अवश्य ही, उपर्युक्त गोलियों, लोशन, कैप्सूल और मलहम को भी औषधि की श्रेणी में शामिल किया जा सकता है।

अर्थ

नशीली, मादक या नारकोटिक औषधि का क्या अर्थ है ? चिकित्सा पेशे से जुड़े लोगों के लिए ऐसी कोई भी दवा जो शरीर को सुन्न कर दे और नींद लाने में सहायता करे मादक या नारकोटिक औषधि है। 'नारकोटिक' शब्द यूनानी के 'नाक' से बना है जिसका अर्थ है निष्चेष्ट, निष्क्रिय या संवेदनहीन। कानूनविदों और उसके रक्षकों के लिए नारकोटिक औषधि का बिल्कुल अलग अर्थ है। उनके लिए यह कोई खास चीज है। आइए देखें कि यह कैसे होता है।

औषधियां हमेशा ही स्वास्थ्यकर नहीं होतीं। गैर-औषधीय औषधि वह औषधि है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से लेनी जरूरी नहीं। अल्कोहल (मदिरा), तंबाकू, मैरिजुआना और कोकीन ऐसी ही औषधियां हैं। ये सभी मस्तिष्क को बदल देती

हैं। मस्तिष्क कोशिकाओं में पहुंचकर ये औषधियां वहां रासायनिक प्रतिक्रियाओं को परिवर्तित कर देती हैं। इस प्रकार ये लोगों के सोचने, महसूस करने, बोलने और चलने के ढंग को भी प्रभावित करती हैं।

मस्तिष्क में बदलाव लाने वाली औषधियां तीन तरह से अपना कुप्रभाव डाल सकती हैं—वे इसकी कार्यक्षमता बढ़ा देती हैं (उत्तेजक औषधियां); इसकी कार्यक्षमता घटा देती हैं (शामक या मादक औषधियां) और या मस्तिष्क की कार्यक्षमता को पूरी तरह से गड़बड़ा देती हैं (भ्रांतिजनक औषधियां)। भ्रांतिजनक औषधियां व्यक्ति में भ्रम उत्पन्न करती हैं यानी वह अलौकिक और अस्तित्वहीन वस्तुओं को देखता है, महसूस करता है और सुनता है। उदाहरण के लिए एल. एस. डी. लेने पर व्यक्ति को हाथी के आकार के तिलचट्टे अपनी ओर आते दिखाई देते हैं जबकि वास्तव में ऐसी कोई चीज नहीं है। कोकीन के काफी समय से आदी व्यक्ति को अपने शरीर पर कीड़े रेंगते लगते हैं।

मस्तिष्क में बदलाव लाने वाली सभी औषधियां व्यक्ति को अपना गुलाम बना लेती हैं। वे शरीर की क्रियाओं में ऐसा बदलाव लाती हैं कि कुछ समय बाद शरीर उनकी मांग करने लगता है। औषधि न मिलने पर व्यक्ति तंद्रालु, उदासीन और बेचैन महसूस करता है। औषधि मिलते ही जैसे उसमें जान आ जाती है। पर जल्दी ही वह दुबारा उदासीन हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वह नशेड़ी हो गया है। इन औषधियों का आदी व्यक्ति रोज औषधि प्राप्त करने के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाएगा, यहां तक कि छोटी-मोटी चोरियां और हत्या जैसे जघन्य अपराध भी। इस प्रकार आदी व्यक्ति न केवल अपने और अपने परिवार के लिए बल्कि समाज के लिए भी एक अभिशाप बन जाता है।

आदी बनाने वाली औषधियों के साथ एक खास बात यह है कि सेवन करने वाले व्यक्ति को हर बार पहले से अधिक खुराक की जरूरत पड़ती है ताकि पहली बार जैसा आनंद प्राप्त हो सके। इसे औषधि सहनशीनता कहते हैं। इस प्रकार जल्दी ही आदी व्यक्ति की जरूरत उसके साधनों से अधिक हो जाती है। अब वह गैरकानूनी तरीके अपनाने पर मजबूर हो जाता है। कभी-कभी एक औषधि के लिए सहनशीलता से उस जैसी दूसरी औषधि, जिसे कभी आदी व्यक्ति ने न लिया हो, के लिए भी सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है। इसे प्रति-सहनशीलता (क्रॉस टालरेंस) कहते हैं। उदाहरण के लिए मार्फीन का आदी व्यक्ति इस जैसी दूसरी औषधि पेथिडीन के प्रति भी सहनशील हो जाता है।

कोई भी आदी होने के लिए औषधियां नहीं लेता। लेकिन फिर लोग औषधियों के आदी क्यों बन जाते हैं ? इसका एक कारण यह गलतफहमी है कि औषधि का सेवन करने वाला आदी होने की प्रक्रिया को जान लेता है और आदी होने से पहले ही औषधियों का सेवन बंद कर सकता है। पर ऐसा कभी नहीं होता क्योंकि तब तक औषधियां शरीर को अपने जाल में फंसा लेती हैं। पहली बार मस्तिष्क को बदलने वाली ये औषधियां मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव डालती हैं कि लेने वाले को मनचाही अनुभूति होती है। लेकिन औषधि का असर खत्म होने पर प्रतिक्रिया प्रभाव (रिबाउंड इफेक्ट) पड़ता है। यह औषधि के शुरुआती असर के विपरीत काफी दुखदायी होता है। उत्तेजक औषधि एम्फीटामीन लेने पर व्यक्ति पहले ऊर्जावान महसूस करता है, पर असर घटने पर वह थकान महसूस करता है। इसके बाद चिड़चिड़ापन और उदासी के लक्षण उभरते हैं। यह प्रतिक्रिया प्रभाव है।

इस प्रतिक्रिया प्रभाव को काटने के लिए व्यक्ति फिर औषधि लेता है। इस प्रकार एक सिलसिला बन जाता है–औषधि सेवन–आनन्द की अनुभूति–प्रतिक्रिया प्रभाव–औषधि सेवन, और इस दुश्चक्र से व्यक्ति कभी भी बाहर नहीं निकल पाता। जल्दी ही ये औषधियां मस्तिष्क के रासायनिक संतुलन को बिगाड़ देती हैं। फलस्वरूप आदी व्यक्ति का मस्तिष्क हमेशा ही इन औषधियों की जरूरत महसूस करने लगता है। जीवाणुओं (बैक्टीरिया) के साथ भी एक ऐसी ही अनुरूपता देखने में आती है। कुछ जीवाणु एक प्रतिजैवी (एंटिबायोटिक) स्ट्रेप्टोमाइसिन के प्रति इतने संवेदनशील होते हैं कि उनके मध्य इस औषधि की एक बूंद डालते ही वे मर जाते हैं। पर यदि इन जीवाणुओं की इस औषधि की बहुत ही कम मात्रा के साथ वृद्धि कराई जाये तब ये उसके प्रति सहनशील हो जाते हैं। जल्दी ही बढ़ने के लिए उन्हें इस औषधि की जरूरत होने लगती है। दरअसल ये जीवाणु स्ट्रेप्टोमाइसिन पर निर्भर हो जाते हैं, हालांकि स्ट्रेप्टोमाइसिन उन्हें नष्ट करने के लिए बनी है। पर अब वह औषधि न मिलने पर ये जीवाणु उसके अभाव में मर जाते हैं।

इस प्रकार आदी व्यक्ति औषधि न मिलने पर मरता तो नहीं पर उसका जीना दूभर जरूर हो जाता है। उसमें असाधारण लक्षण उभरते हैं जिन्हें अपनयन लक्षण (विदड्रावल सिम्पटम्स) कहते हैं। अवसाद, उल्टी, बुखार, कंपकंपी और शरीर की अनियंत्रित ऐंठन अपनयन लक्षणों के ही रूप हैं। जब कोई कानून का रक्षक अधिकारी मादक औषधियों की बात करता है तो इनमें उत्तेजक, शामक

और भ्रांतिजनक औषधियां शामिल होती हैं। चिकित्सक के लिए सिर्फ सुन्न करने वाली और नींद लाने वाली औषधियां ही मादक होती हैं।

मादक औषधियों का कानूनी अर्थ इतना अधिक प्रचलित है कि उसका चिकित्सकीय अभिप्राय कभी-कभार ही आगे आता है। कई बार चिकित्सक भी इसी कानूनी परिभाषा का प्रयोग करते हैं। इस पुस्तक में भी मादक औषधि का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है। कई चिकित्सक इस उलझन से बचने के लिए इन्हें 'मनोत्तेजक औषधियां' कहते हैं। इसमें मादक औषधि का कानूनी अर्थ भी शामिल हो जाता है।

एक क्षीण प्रकार की औषधि-निर्भरता शायद हम सभी में पायी जाती है। इसे औषधि अभ्यस्तता (हैबिच्यूएशन) कहा जाता है और यह सामाजिक रूप से स्वीकार्य है। शाम को एक प्याला चाय न मिलने पर उनींदा महसूस करना अभ्यस्तता का एक उदाहरण है। क्या हमें कैफीन (चाय, कॉफी में मौजूद एक उत्तेजक पदार्थ) की लत लग गयी है। नहीं, हम सिर्फ इसके अभ्यस्त हो गये हैं।

आदी होना या अभ्यस्तता

इन दोनों शब्दों के बीच कई अति महत्त्वपूर्ण व सुस्पष्ट अंतर हैं। औषधि की लत लगने या आदी होने पर मस्तिष्क की रासायनिक प्रक्रियाएं औषधि पर निर्भर हो जाती हैं जिससे न चाहते हुए भी औषधि का सेवन करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में औषधि पर शारीरिक निर्भरता विकसित हो जाती है। औषधि अभ्यस्तता में ऐसा कुछ नहीं होता। हम सिर्फ औषधि लेना चाहते हैं। पर यह हमारी मजबूरी नहीं। दूसरे शब्दों में यह निर्भरता सिर्फ मनोवैज्ञानिक होती है। इन दोनों के बीच एक अन्य अतिमहत्वपूर्ण अंतर यह है कि लत लगने पर हमेशा पहले से अधिक खुराक की जरूरत होती है जबकि अभ्यस्तता में ऐसी प्रवृत्ति देखने में नहीं आती। अगर दस साल पहले आप सिर्फ एक प्याला चाय पीते थे तो आज भी शायद एक प्याला चाय से आपका काम चल जाता हो। इसके अलावा अगर अभ्यस्तता छोड़ दी जाए तो कोई अपनयन लक्षण भी प्रकट नहीं होंगे। यानी अगर शाम को चाय न मिले तो आपको उल्टी या ऐंठन जैसे लक्षण नहीं होंगे। इसके अलावा एक सबसे खास बात यह है कि कोई एक प्याला चाय के लिए चोरी-चकारी या हत्या नहीं करता। पर वही व्यक्ति औषधि प्राप्त करने के लिए यह सब कुछ करने को तैयार हो जाएगा। कभी-कभी चिकित्सक लोग एक सर्वग्राही परिभाषा 'औषधि निर्भरता' का प्रयोग करते हैं। कुछ

अन्य लोग औषधि के गैर-चिकित्सकीय प्रयोग को औषधि दुरुपयोग (ड्रग अब्यूज) कहते हैं।

औषधि के आदी होने की अवस्थाएं

औषधि का आदी व्यक्ति प्रायः लत लगने की चार अवस्थाओं से गुजरता है।

अवस्था-1 : प्रयोग की अवस्था : इस समय नये-नये सुख और अनुभव प्राप्त करने की इच्छा होती है। व्यक्ति सोचता है कि वह औषधि सेवन को नियंत्रित कर सकता है और जब चाहे उसका प्रयोग बंद कर सकता है। आत्मविश्वास से भरे युवा लोग अनदेखी दुनिया का अनुभव प्राप्त करने जैसा महसूस करते हैं। किशोरवय के आदी इसके उदाहरण हैं।

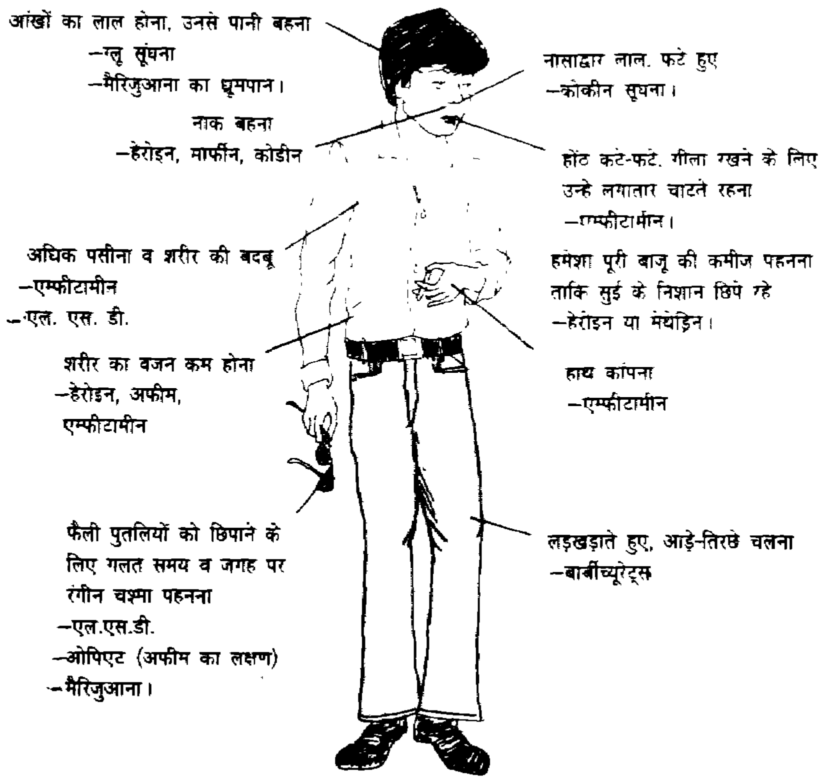
अवस्था-2 : अनियमित प्रयोग की अवस्था : प्रायोगिक अवस्था से आगे लगातार औषधि लेने का एक कारण यह है कि औषधि स्वनियंत्रण को समाप्त कर अंतरंग सामाजिक संबंध कायम करने में सहायता करती है। जैसे कि पार्टियों में बहुत से लोग इसलिए शराब पीते हैं कि उनकी बोलने की क्षमता बढ़ जाए और वे एक-दूसरे से खुलकर वार्तालाप कर सकें। बराबरी की समूह रचना और होड़ का भी इसमें अपना योगदान होता है। ऐसे लोगों को अंग्रेजी में पीयर्स कहते हैं जो उम्र और कार्य के हिसाब से समान हों। बराबरी की होड़ का यह अर्थ है कि ऐसे लोगों का एक-दूसरे पर कितना प्रभाव है। अगर यह होड़ सकारात्मक हो तो यह हमें अच्छी चीजें करने की प्रेरणा देती है। और अगर नकारात्मक हो तो तब ऐसी होड़ से नुकसान ही होता है। बराबरी की होड़ परोक्ष या प्रत्यक्ष दोनों ही हो सकती है। जब कोई व्यक्ति कोई कार्य सिर्फ इसलिए करना चाहता है क्योंकि दूसरे भी वही कर रहे हैं तब यह परोक्ष होड़ होती है। कोई भी किसी से सीधे-सीधे बराबरी करने को नहीं कहता है। दूसरी ओर जब कुछ लोग मिलकर किसी व्यक्ति को कोई कार्य करने के लिए उकसाएं तब यह प्रत्यक्ष होड़ होती है। छेड़ना, नीचा दिखाना, मजाक उड़ाना, अनुचित मांग करना या उपेक्षा करना ऐसे कुछ तरीके हैं जो आदमी को बराबरी की होड़ करने के लिए मजबूर करते हैं। चूंकि व्यक्ति झुंड में रहना चाहता है इसलिए वह इन अनुचित दबावों के आगे हथियार डाल देता है।

किसी पार्टी या ऐसे ही किसी दल में औषधि सेवन की परोक्ष होड़ दिखाई देती है। कोई भी अपने मित्र को सीधे-सीधे औषधि लेने के लिए जोर नहीं डालता पर क्योंकि दल के अन्य लोग औषधि ले रहे हैं तो वह व्यक्ति भी उसमें खपने

के लिए औषधि लेने लगता है। बराबरी की सीधी होड़ कई कारणों से प्रकट होती है। कुछ लोग इसलिए दबाव डालते हैं ताकि वे अकेला महसूस न करें या अपने तौर-तरीकों को लेकर अपराध-बोध से ग्रस्त न हों, जबकि कुछ अन्य लोग अपने मित्रों को दवा बेचकर पैसा कमाना चाहते हैं। ऐसे सभी लोगों से बचने का एक ही तरीका है कि उन्हें सख्ती से 'ना' कह दी जाये।

अवस्था-3 : निर्भरता की अवस्था : इस अवस्था में व्यक्ति अपनी आदत (लत) का शिकार बन चुका होता है। अब औषधि लेना उसकी मजबूरी हो जाती है क्योंकि औषधि न मिलने पर उसमें अपनयन लक्षण प्रकट होते हैं। पर इस अवस्था में भी आदी व्यक्ति इलाज से इनकार नहीं करता है। इसलिए यह स्थिति बिल्कुल निराशाजनक नहीं है।

अवस्था-4 : समाज से बहिष्कार (स्किड रो डेरेलिक्ट्स) की अवस्था : यह लगभग पूर्ण निराशाजनक अवस्था है। आदी व्यक्ति इलाज से भी इनकार



चित्र 2 : औषधि का गलत प्रयोग करने वाला आदी व्यक्ति।

कर देता है। इसके अलावा वह अपनी लत के लिए कुछ भी करने को तैयार होता है। शारीरिक, मानसिक और सामाजिक ह्रास इस अवस्था के मुख्य लक्षण हैं।

कुछ विशेषज्ञ एक पांचवीं अवस्था भी मानते हैं। बहुत थोड़े से आदी व्यक्ति सामाजिक या व्यावसायिक तंगी के कारण अंततः इस लत को छोड़ देते हैं। पर ऐसे लोगों का प्रतिशत बहुत कम है। एक बार आदी हो जाने पर औषधि के प्रति मस्तिष्क की प्रतिक्रिया पूरी तरह से बदल जाती है। व्यक्ति औषधि छोड़ने के बाद भी कभी भी पूरी तरह से स्वस्थ नहीं हो पाता। औषधि का सेवन बंद करने और उससे बचने को उबरना (रिकवरी) कहा जाता है। आमतौर पर लत से उबरना बहुत कठिन होता है और दुबारा नशे की लत लगना असामान्य नहीं है।

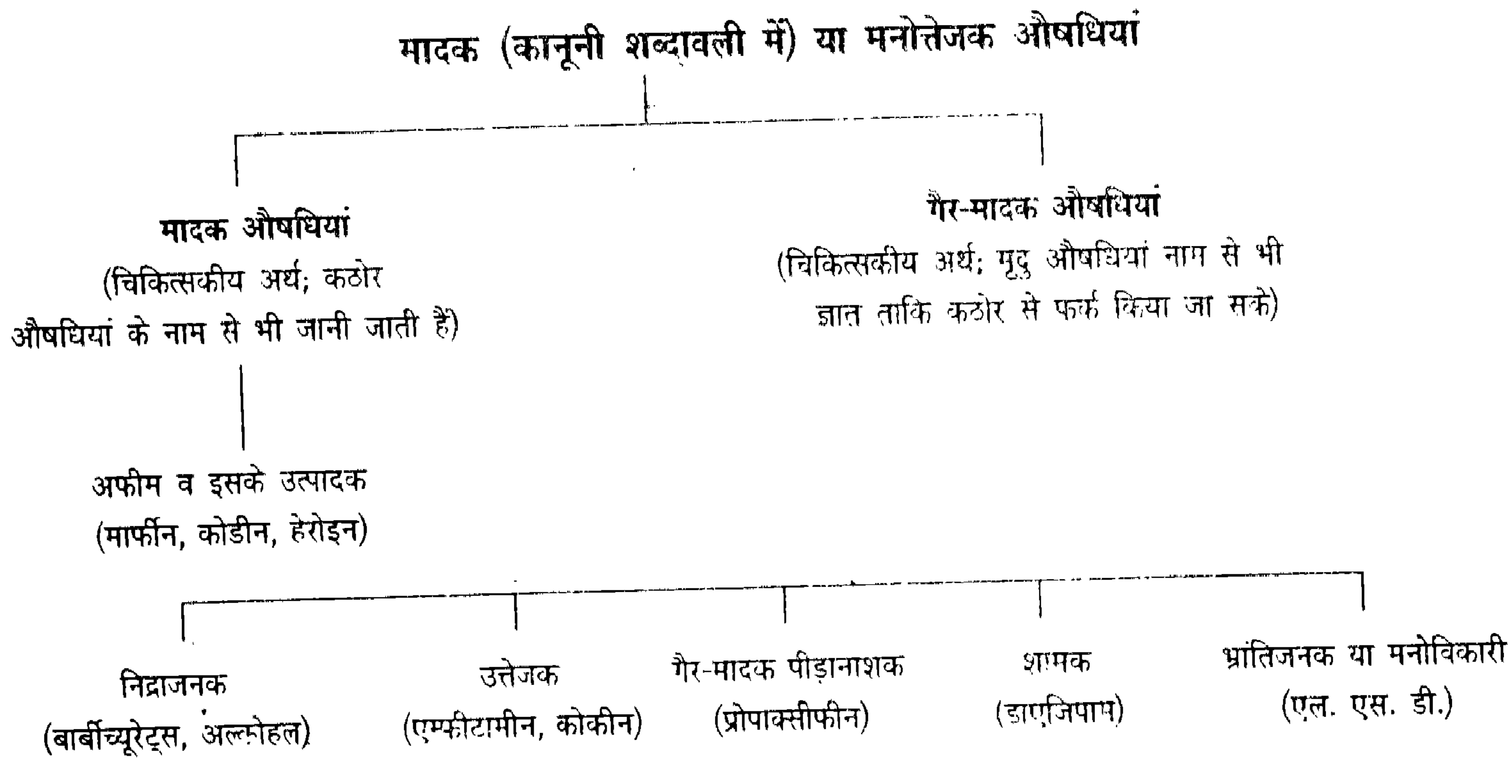
मिलती-जुलती औषधियां (डिजाइनर ड्रग्स)

मादक औषधियों के क्षेत्र में एक नयी खोज यह है कि अब इनसे मिलती-जुलती औषधियां भी उपलब्ध हैं। जैसा कि इनके नाम से पता चलता है कि ये मादक औषधियों की नकल भर होती हैं। ये भूमिगत तहखानों या गैराज में चोरी-छिपे अवैध रूप से बनायी जाती हैं। पैसे के लालच में रसायनज्ञ लोग हेरोइन, कोकीन और पी. सी. पी. (फिनसाइक्लोहेक्सिल पिपरीडीन) जैसी औषधियों को उनके रासायनिक सूत्र में परिवर्तन करके बनाने की कोशिश करते हैं। रासायनिक सूत्र में बदलाव के कारण कई बार ये दवाएं 'असली' औषधियों से सैकड़ों गुना तेज होती हैं। 'चाइना व्हाइट' हेरोइन की, पी. सी. इ., पी. सी. पी. की और 'एक्सटेसी' एम्फीटामीन की नकल हैं। ये सभी औषधियां गंभीर रूप से नुकसान पहुंचा सकती हैं।

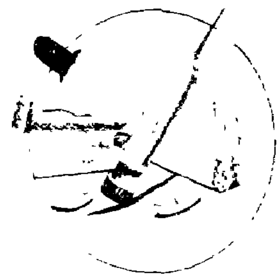
मादक औषधियों का विस्तृत वर्गीकरण

बाजार में कई किस्म की मादक औषधियां उपलब्ध हैं। इनके अध्ययन को आगे बढ़ाने से पहले उपलब्ध मादक औषधियों की पूरी शृंखला पर एक नजर डाल लेना उचित होगा। इससे हम संबंधित औषधि को ठीक संदर्भ में रख सकेंगे।

निद्राजनक (हिप्नोटिक्स) औषधियां सुला देती हैं पर शरीर को सुन्न नहीं करतीं। इनका प्रभाव अफीम के मुकाबले काफी कम होता है। इसीलिए इन्हें मादक औषधियों से अलग रखा गया है। उत्तेजक औषधियां थकान कम कर


मादक (कानूनी शब्दावली में) या मनोत्तेजक औषधियां
मादक औषधियां
(चिकित्सकीय अर्थ; कठोर औषधियां के नाम से भी जानी जाती हैं)
गैर-मादक औषधियां
(चिकित्सकीय अर्थ; मृदु औषधियां नाम से भी ज्ञात ताकि कठोर से फर्क किया जा सके)
अफीम व इसके उत्पादक
(मार्फीन, कोडीन, हेरोइन)
निद्राजनक
(बार्बीच्यूरेट्स, अल्कोहल)
उत्तेजक
(एम्फीटामीन, कोकीन)
गैर-मादक पीड़ानाशक
(प्रोपाक्सीफीन)
शामक
(डाएजिपाम)
भ्रांतिजनक या मनोविकारी
(एल. एस. डी.)

नींद भगाती हैं। कई छात्र इम्तहान की तैयारी के लिए एम्फीटामीन का सेवन करते हैं ताकि रात में देर तक पढ़ सकें। पर यह खतरनाक प्रवृत्ति है। ठीक वैसे जैसे थके हुए घोड़े को चाबुक मारकर चलाया जाए। एम्फीटामीन का असर खत्म होने पर उन्हें दुबारा नींद आने लगती है। प्रोपाक्सीफीन तेज असर, गैर-मादक औषधि है। हड्डी टूटने पर होने वाले दर्द के लिए यह उपयोगी है। डाएजिपाम (कामपोज) शामक औषधि है और मरीजों को शांत रहने के लिए दी जाती है। भ्रांतिजनक औषधियों का कोई भी चिकित्सकीय उपयोग ज्ञात नहीं है।



2

अफीम की कहानी

अफीम को सचमुच में 'मादक औषधि जगत का राजा' कहा जा सकता है। शायद ही कोई अन्य मादक औषधि अफीम जितनी विख्यात हो। हेरोइन जैसी लत लगाने वाली तेज औषधियां इससे बनायी जाती हैं। अफीम का आदी व्यक्ति इसे प्राप्त करने के लिए किसी हद तक जा सकता है। अफीम खरीदने के लिए पैसे जुटाने हेतु वह चोरी, डाका या हत्या तक करने को तैयार हो जाएगा। इस व इस जैसे अन्य कारणों से बहुत से देशों में अफीम व संबंधित औषधियों का गैर-चिकित्सकीय उपयोग प्रतिबंधित है।

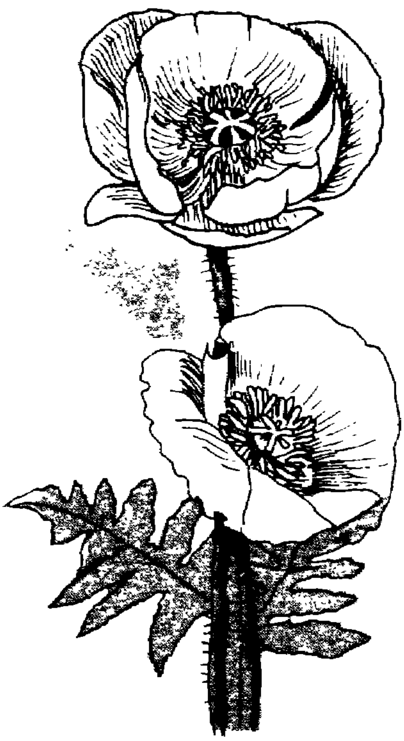
कच्ची अफीम गहरे-भूरे रंग की चिपचिपी होती है। इसमें एक विशेष प्रकार की गंध होती है और इसका स्वाद कड़वा होता है। सेवन करने पर आनंद की अनुभूति होती है। कम मात्रा, 50 मि. ग्रा. तक, लेने पर अत्यधिक खुशी महसूस होती है। मात्रा बढ़ाने पर नींद आती है। और अधिक मात्रा, अर्थात् 2 ग्राम लेने पर मौत भी हो सकती है।

अफीम का पौधा

अफीम पोस्त के पौधे से प्राप्त की जाती है। वनस्पति विज्ञान की भाषा में इसे पैपेवर सोम्नीफेरम के नाम से जाना जाता है। यह पैपेवरेसी कुल का सदस्य है। दरअसल यह कुल चिरपरिचित सरसों और गोभी के कुल—क्रूसीफेरी का निकट संबंधी है। पैपेवर 'पोस्त' के लिए यूनानी भाषा का शब्द है। सोम्नीफेरम लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'मैं सुलाता है' और चूंकि अफीम वस्तुतः व्यक्ति को सुला देती है, अतः उसका यह नाम उचित है।

एक दिलचस्प आख्यान में अफीम के पौधे के उद्गम और पुराने

अफीमचियों पर इसके प्रभाव की जानकारी दी गयी है। प्राचीन काल में गंगा नदी के किनारे एक ऋषि रहते थे। उनकी झोंपड़ी में एक चूहा भी रहता था। चूंकि चूहा बिल्लियों से हमेशा भयभीत रहता था, इसलिए एक दिन उसने ऋषि से प्रार्थना की कि वे उसे भी बिल्ली बना दें। अब बिल्ली के रूप में वह कुत्तों से परेशान रहने लगा, इसलिए उसने कुत्ता बनने की इच्छा जाहिर की। उसकी यह इच्छा भी पूरी हुई। पर अब भी उसकी परेशानियां कम नहीं हुईं। वह फिर सुअर, बंदर, रीछ, हाथी और अन्त में एक सुंदर कन्या के रूप में परिवर्तित हुआ। इस कन्या का नाम ऋषि ने पोस्तमणि रखा। इसका विवाह एक राजा से हुआ। पर जल्दी ही यह एक कुएं में गिरकर मर गयी। दुखी होकर राजा सांत्वना के लिए ऋषि के पास पहुंचा। ऋषि ने उससे वादा किया कि वह उसकी पत्नी को अमर कर देगा और उसने रानी के मृत शरीर को पोस्त के पौधे में बदल दिया। ऋषि ने कहा, "इस पौधे के फलों से अफीम निकलेगी। लोग उसे लालच के साथ खाएंगे। जो भी इसका सेवन करेगा उसमें उन सभी जानवरों के गुण उत्पन्न होंगे जिन-जिन रूपों में पोस्तमणि रही थी। दूसरे शब्दों में, जो भी इसके फल खाएगा वह चूहे जैसा शरारती, बिल्ली जैसा दूध का शौकीन, कुत्ते जैसा झगड़ालू, बंदर जैसा गंदा, सुअर जैसा जंगली, हाथी जैसा बलशाली और रानी जैसा उत्साही हो जाएगा।"



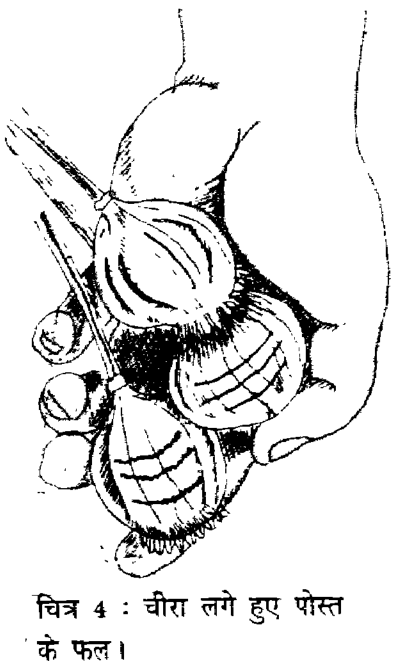
चित्र 3 : एक अफीम के पौधे के फूल।

अफीम मैदानों और घाटियों की छोटी-छोटी क्यारियों में चमकदार धूप में उगायी जाती है। यूनान, तुर्की, चीन, भारत, ईरान, यूगोस्लाविया और बुल्गारिया आदि अफीम उत्पादक देश हैं। सुदूर-पूर्व से लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका आदि में यह जंगली रूप में उगती है। पर अफीम की सर्वाधिक मात्रा संसार के तीन क्षेत्रों से आती है : 'सुनहरा त्रिकोण' (लाओस, बर्मा, थाईलैंड), 'सुनहरे चांद' (अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ईरान) और मेक्सिको। अफीम की फसल मक्का, तंबाकू और अन्य फसलों के साथ

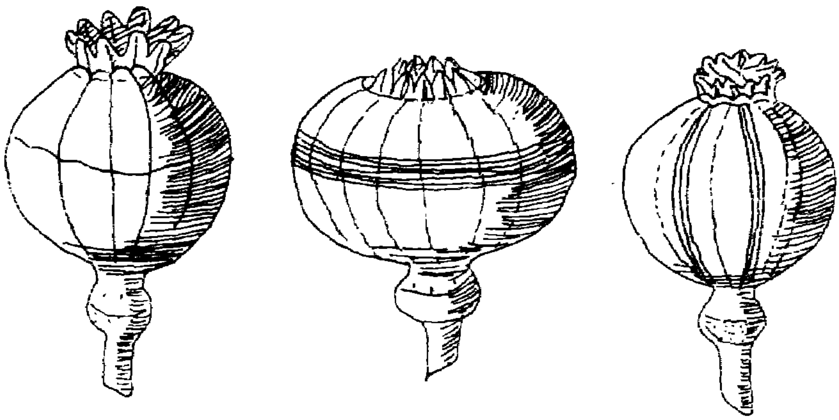
एकांतरित (अदली-बदली) की जाती है। सितंबर से अप्रैल तक बीजों की बुआई की जाती है ताकि पाले, सूखे या अन्य विपदाओं से पूरी फसल ही नष्ट न हो जाए। पौधों को छंटाई व रोपण आदि विधियों से 25-25 सें. मी. की दूरी पर रखा जाता है। उगने के तुरंत बाद, जमीन के पास ही, पौधों से शाखाएं निकलनी शुरू हो जाती हैं और एक पौधा करीब 60 सें. मी. से लेकर 150 सें. मी. तक बढ़ता है (यह रबी की फसल है)। (मैदानों में इसकी खेती सर्दियों में और पहाड़ों पर गर्मियों में की जाती है।) मई के अंत या जून के शुरू में पौधों में फूल लगने शुरू होते हैं। इसके फूल बहुत सुंदर होते हैं और उनका रंग सफेद, संतरी, लाल और जामुनी होता है। पंखड़ियां करीब 10 सें. मी. के घेरे में फैली होती हैं और उनकी संख्या चार होती है। ये दो बाह्य पर्णों (सेपल) से ढकी होती हैं। शुरू-शुरू में कली लटकी हुई होती है पर फूल खिलने पर सीधी हो जाती है। इस समय बाह्य दल पुंज (कैलिक्स) भी झड़ जाते हैं। परागण (पालिनेशन) और निशेचन (फर्टिलाइजेशन) के बाद पंखड़ियां भी झड़ जाती हैं और फल जो कि पोस्त बीज कोष (कैप्सूल) के रूप में जाना जाता है, देखा जा सकता है। बढ़कर यह अनार के आकार-प्रकार का हो जाता है। पोस्त का एक पौधा पांच से आठ कैप्सुल उत्पन्न करता है।

अफीम का संग्रहण

इन कैप्सूलों से अफीम का संग्रहण एक अनोखे तरीके से होता है। कच्चे फलों (हरे या हल्के पीले रंग) के छिलकों पर सतही चीरे लगाए जाते हैं। इस विधि को चीरा लगाना (लेंसिंग) कहते हैं क्योंकि शुरू-शुरू में चीरा लगाने के नश्तर छोटे भाले की शक्ल के होते थे। अंदर से फल खोखले होते हैं और उनमें कई कक्ष या खाने (लाक्यूली) होते हैं। इनमें छोटे-छोटे, गुर्दो की शक्ल के हजारों बीज मौजूद होते हैं। ये बीज खस-खस के नाम से जाने जाते हैं। फलों पर चीरा इस तरह से लगाया जाता है कि वह नीचे इन खानों तक न पहुंचे। चीरों से फलों की क्षीर कणिकाएं (लैटिसीफेरस वेसल्स) कट जाती हैं और उनमें मौजूद दूधिया



चित्र 4 : चीरा लगे हुए पोस्त के फल।



चित्र 5 : फलों पर चीरा किसी भी दिशा में लगाया जा सकता है।

पदार्थ (लेटेक्स) सतह पर दिखना शुरू हो जाता है। वस्तुतः अफीम का अंग्रेजी शब्द ओपियम यूनानी भाषा के ओपॉस से निकला है जिसका अर्थ है 'पादप रस'। इसके जैसा ही एक शब्द और है ओपियान जिससे 'पोस्त रस' का अभिप्राय प्रकट होता है। शाम के वक्त नश्तर या खास औजारों की सहायता से चीरे लगाए जाते हैं और अगले दिन सूर्योदय से पहले ही जमा हुए रस को खुरचकर इकट्ठा कर लिया जाता है। संग्रहण के समय मौसम का खास ध्यान रखा जाता है ताकि बारिश, तेज हवा या पाले आदि से दूध का रिसाव खराब न हो। फल की सतह पर जमा हुआ दूध 'पोस्त अश्रु' (पॉपी टियर्स) के रूप में जाना जाना है। भारत में चीरा लगाने के खास नश्तर प्रयुक्त होते हैं जिनमें एक साथ तीन-चार फल लगे होते हैं। इससे एक साथ तीन-चार चीरे लगाए जा सकते हैं। चीरा लगाते समय नश्तर नीचे से ऊपर की ओर चलाया जाता है। एक ही फल पर दो-तीन दिन के अंतर पर तीन-चार बार चीरा लगाया जा सकता है। इस तरीके से 5,000 वर्ग मी. के खेत से औसतन 4 से 6 किलोग्राम कच्ची अफीम प्राप्त की जा सकती है।

अफीम के रसायन (अल्कलायड)

कच्ची अफीम में बहुत सारे खाद्य रसायन होते हैं जो क्षारोद या अल्कलायड के रूप में जाने जाते हैं। इनका स्वाद बहुत कड़वा होता है। इनके साथ एक खास बात यह है कि सभी अल्कलायड के अणु चक्राकार होते हैं और उनमें नाइट्रोजन

का कम-से-कम एक परमाणु मौजूद होता है। ये सभी विषैले होते हैं पर बेहद कम मात्रा में लेने पर जीवनरक्षक औषधि का कार्य करते हैं। सिर्फ पोस्त का पौधा ही अल्कलायड उत्पन्न नहीं करता है। बहुत सारे अन्य पौधे भी अल्कलायड से भरपूर होते हैं। सभी अल्कलायड के नाम के अंत में 'ईन' होता है जिससे उन्हें अन्य रसायनों से अलग पहचाना जा सकता है। तंबाकू से प्राप्त निकोटीन के बारे में हम सभी जानते हैं। कुचिला (नक्सवोमिका) से प्राप्त स्ट्रिक्नीन; धतूरे से ऐट्रोपीन और मोहरी (ऐकोनाइट) से प्राप्त ऐकोनिटीन कुछ अन्य अल्कलायड हैं। ऐसा ही एक दिलचस्प अल्कलायड कोकीन है जो कि एक मादक औषधि है। इसके बारे में हम आगे अध्ययन करेंगे। यह स्पष्ट नहीं है कि क्यों प्रकृति ने कुछ पौधों को ऐसे कड़वे अल्कलायड से भरपूर कर दिया है। हो सकता है कि कड़वे स्वाद के कारण वे चरने वाले जानवरों से बचे रहते हों। इस प्रकार ये अल्कलायड पौधों की रक्षा का कार्य करते हैं।

कच्ची अफीम में करीब 25 अल्कलायड मौजूद रहते हैं जो इसके वजन का करीब एक चौथाई होते हैं। इनमें सबसे प्रमुख अल्कलायड मार्फीन है जिसकी कच्ची अफीम में 10 से 20% तक मात्रा हो सकती है।

मार्फीन एक प्रभावशाली दर्दनिवारक और दिल के दौरे के समय उठने वाली पीड़ा से राहत के लिए एक उपयोगी औषधि है। यह तुरंत ही रोगी को सुला भी देती है। वस्तुतः मार्फीन मार्फीयस से उत्पन्न है जो कि यूनानी लोगों का स्वप्नों का देवता है। यह अजीब संयोग है कि मार्फीयस स्वयं हिप्नास का पुत्र है जो कि यूनानी लोगों का 'निद्रा का देवता' है। आजकल प्रयुक्त शब्द 'हिप्नासिस' हिप्नास से निकला है। हिप्नास 'मौत के देवता' थैनेटास का भाई था। मृत्यु और इससे जुड़े सभी पहलुओं का वैज्ञानिक अध्ययन थैनेटास के नाम पर 'थैनेटोलाजी' के नाम से जाना जाता है। मार्फीन न सिर्फ नींद और स्वप्न लाती है बल्कि अधिक मात्रा में मृत्यु का कारण भी बन सकती है। करीब 200 मि. ग्रा. मार्फीन मृत्यु के लिए काफी है। इस प्रकार एक तरह से मार्फीन इन तीनों देवताओं से संबंधित है जो कि आपस में निकट के रिश्तेदार हैं।

मार्फीन का पृथक्करण

कच्ची अफीम से मार्फीन सबसे पहले 1805 में जर्मन औषधविज्ञानी प्रो. फ्रेडरिक विल्हेम ऐडम सर्टनर (1783-1841) ने बनायी थी। यह कच्ची अफीम से ही नहीं बल्कि किसी भी पौधे से निकाला गया सर्वप्रथम अल्कलायड था। सर हम्फ्री डेवी जिन्होंने अपनी खोज नाइट्रस आक्साइड का खुद पर प्रयोग किया था, की भांति ही सर्टनर ने भी कच्ची अफीम से प्राप्त मार्फीन को सबसे पहले खुद खाकर देखा। उसने अनाजघर में चूहों और गलियों में आवारा कुत्तों से छुटकारा पाने के लिए उनके भोजन में मार्फीन का प्रयोग किया। उसने यह गौर किया कि मार्फीन इन जन्तुओं को सुलाकर मारने में समक्ष है।



चित्र 6 . जर्मन औषधविज्ञानी प्रो. फ्रेडरिक सर्टनर, जिन्होंने सबसे पहले कच्ची अफीम से मार्फीन अलग किया।

सर्टनर को अपनी इस खोज मार्फीन के लिए कई प्रसिद्ध विश्व-विद्यालयों से मानद आचार्य (डाक्टर) की उपाधि मिली और 'मानवता के सेवक' के रूप में 2000 फ्रैंक का पुरस्कार भी मिला। पर यह बड़ी अजीब बात है कि बाद में उनकी आलोचना भी हुई। शायद इसलिए कि उन्होंने अपनी खोज किसी विश्वविद्यालय में न कर एक छोटी-सी दवा की दुकान पर की थी। इन सब बातों से सर्टनर बहुत दुखी हुए और उन्होंने अपने उर्वर मस्तिष्क को बंदूकों के विकास में लगाया। इस क्षेत्र में भी उन्होंने काफी सुधार किये। बुढ़ापे में गठिया रोग से पीड़ित होने पर सर्टनर ने अपनी पीड़ा कम करने के लिए अपनी खोज मार्फीन का सहारा लिया।

मार्फीन की खोज के सिर्फ 18 वर्ष बाद ही इसका प्रयोग मनुष्य की जान लेने के लिए किया गया। 1823 में एक 27 वर्षीय फ्रांसिसी चिकित्सक एडम कास्टेंग ने अपने मित्र आगस्ट दैले को मारने के लिए मदिरा में मार्फीन मिला दी। आगस्ट जल्दी ही गंभीर रूप से बीमार पड़ गया और उसे पेरिस स्कूल आफ मेडिसन के प्रोफेसर डा. पेलैटां के पास भेजा गया। डा. पेलैटां ने गौर किया

कि आगस्ट की आंख की पुतलियां बिंदु के आकार तक सिकुड़ गयी हैं। यह मार्फीन विष का सुस्पष्ट लक्षण था। आगस्ट की मौत के बाद डा. पेलैटां ने उसकी शव परीक्षा करायी। इसमें शव के अंदर मार्फीन मिली। जांच करने पर डा. कास्टेंग अपराधी पाया गया और उसका सिर काट दिया गया। तब से मार्फीन का आपराधिक उपयोग चिकित्सा जगत तक ही सीमित है। इसका एक साधारण कारण यह है कि चिकित्सकों की इस औषधि तक आसान पहुंच है।

मार्फीन ठंडे पानी में मुश्किल से घुलती है पर खौलते पानी में आसानी से घुल जाती है—500 भाग खौलते पानी में करीब एक भाग मार्फीन घुल जाती है। वास्तव में आजकल मार्फीन उबलते पानी में कच्ची अफीम डालकर ही निकाली जाती है। बिना घुले अफीम के गोंद को छानकर अलग कर दिया जाता है और फिर इसे ठंडा कर विलयन से शुद्ध मार्फीन अलग कर ली जाती है। आधिकारिक रूप से मार्फीन 7.5 सें. मी. × 10 सें. मी. × 2.5 सें. मी. आकार के पिंडों के रूप में बनायी जाती है, जिनका वजन 300 से 350 ग्राम तक होता है। कभी-कभी इन्हें '999' या 'एएए' के व्यापारिक चिह्नों से भी चिह्नित किया जाता है। एक कि. ग्रा. मार्फीन बनाने के लिए करीब 10 कि. ग्रा. कच्ची अफीम की जरूरत होती है। यह भी एक विरोधाभास है कि पोस्त के फल पकने पर उसमें मार्फीन की मात्रा छटने लगती है। हम पहले भी देख चुके हैं कि अफीम पोस्त के कच्चे फलों से ही निकाली जाती है। पके और सूखे पोस्त फलों में बहुत कम (करीब 0.01%) मार्फीन होती है। हालांकि इन पके फलों का काढ़ा कभी-कभी ग्रामीणों द्वारा मादक, सिंकाई या पुल्टिस के रूप में प्रयोग किया जाता है।

दूसरा सर्वाधिक प्रचुर अल्कलायड नारकोटीन है जिसकी कच्ची अफीम में मात्रा करीब 2 से 8 प्रतिशत होती है। इसका यह नाम यूनानी के नार्के से निकला है जिसका अर्थ है संवेदनहीन या निश्चेष्ट। इसके बाद कोडीन है जो करीब 0.3 से 4 प्रतिशत तक होती है। इसका नाम यूनानी के कोडिया से बना है जो कि पोस्त के फलों के लिए प्रयुक्त होता है। इसमें कफ को शमन करने का गुण होता है, इसलिए इसका उपयोग कफ मिक्सचरों में होता है। पैपेवरीन की मात्रा करीब एक प्रतिशत है और इसका नाम सीधे यूनानी पैपेवर से निकला है जो कि पोस्त के लिए यूनानी शब्द है और संयोग से पौधे का वैज्ञानिक नाम भी है। थीबेइन का भाग लगभग 0.2 से 0.5 प्रतिशत होता है। यह नाम मिस्र की प्राचीन राजधानी के नाम थेबिस से निकला है जहां कच्ची अफीम का प्रचलन

बेरोक-टोक था। ये पांचों अल्कलायड मिलकर कच्ची अफीम का लगभग 24 प्रतिशत बनाते हैं। बाकी 1 प्रतिशत 20 अन्य अल्कलायड से बना है जो कि बहुत ही कम मात्रा में मौजूद हैं।

यह भी आश्चर्यजनक है कि पोस्त के बीज जो हमारे यहां खस-खस के नाम से जाने जाते हैं, बिल्कुल हानिरहित होते हैं और उनमें कोई भी अल्कलायड नहीं होता। सिर्फ बीज ही पोस्त के पौधे के वह भाग हैं जिसमें कोई अल्कलायड नहीं होता है। बीज न सिर्फ बिषहीन होते हैं बल्कि उनका उपयोग भोजन का स्वाद और खुशबू बढ़ाने में भी होता है। बीज सफेद रंग के होते हैं और उनका मेवों जैसा स्वाद होता है। उन्हें भारत में मिठाइयों आदि को सजाने के काम में भी लाते हैं। उनमें प्रोटीन की मात्रा भी काफी होती है। अफीम के बीजों से एक बहुत ही हल्का तेल निकाला जाता है जो खस-खस का तेल के नाम से विख्यात है। इसका खाना पकाने में और जलाने में उपयोग होता है। इसके अलावा पोस्त के बीज व्यापक रूप से वस्तुओं में सुगंध डालने के लिए भी होता है। आज हम ऐसे साबुनों, शैंपुओं और इत्रों से परिचित हैं जो खस की सुगंध का दावा करते हैं।

युगों पुरानी अफीम की दास्तान

अफीम के उपयोग की दास्तान युगों पुरानी है और साथ ही बेहद दिलचस्प भी। अफीम का जिक्र न केवल इतिहास में बल्कि प्रेमप्रसंगों और अपराध में भी विद्यमान है। अफीम को समाज में संपत्ति और रुतबे के साथ और चारित्रिक व नैतिक पतन के साथ जोड़ा गया है। अफीम कत्ल का, युद्ध का, संबंधों में कटुता का और दंड का कारण रही है। जहां तक एक ओर इसने मनुष्यों को असह्य वेदना से राहत दी वहीं दूसरी ओर उनका नैतिक पतन कर उन्हें पशुवत भी बना दिया।

अफीम की खेती और उसके निर्माण का प्राचीनतम विवरण 5000 ई. पू. सुमेर सभ्यता की पट्टिकाओं पर मिलता है। उनके द्वारा छोड़े गये चित्रों में पोस्त का हुलगिल (खुशी का पौधा) के रूप में जिक्र है। असीरियन लोगों की औषधि संबंधी पट्टिकाओं में अफीम को अराट पा-पा कहा गया है। [इस बात के भी संकेत हैं कि इसी दौरान अफीम यूरोप में भी प्रचलन में थी।] स्विस झीलों में भी, जहां संसार की सबसे पुरानी मानव बस्ती थी, पोस्त के फल बरामद हुए हैं। जांच-पड़ताल से पता चला है कि ये पोस्त की आदिम किस्म पैपेवर सेटिजेरम

के नहीं थे बल्कि उनकी वहां बाकायदा खेती होती थी हालांकि यह तय नहीं है कि वहां पोस्त की खेती अफीम के लिए होती थी या खस-खस और तेल के लिए।

2000 ई. पू. में मिस्र में अफीम का उपयोग बच्चों को सुलाने और उन्हें दांत निकलते वक्त दर्द से राहत दिलाने के लिए भी होता था। रोम के लेखक प्रौस्पर अल्पाइनस के अनुसार मिस्र के लोग अफीम के आदी थे और इसके न मिलने पर वे कमजोर और निरुत्साहित हो जाते थे। वे इससे बनी 'क्रेटिक मदिरा' के भी शौकीन थे और इसमें काली मिर्च और अन्य सुगंधित मसालों का भी उपयोग करते थे। ओल्ड टेस्टामेंट के कुछ खंडों से भी यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन हेब्रू लोगों को भी अफीम की जानकारी थी। ऐसा यकीन किया जाता है कि हेब्रू के शब्द राश (सिर) का अभिप्राय पोस्त के फलों से था और मेराश का पोस्त के दूध से।

अफीम का उल्लेख चिकित्सकीय औषधि संबंधी प्राचीन अभिलेख एबर्स पैपिरस में भी है। यह दस्तावेज नील नदी के पूर्वी तट पर स्थित शहर लक्सर के नजदीक एक मकबरे में पायी गयी ममी (संरक्षित शव) के पैरों के बीच दबा पाया गया था। इसका काल करीब 1550 ई. पू. निर्धारित किया गया है। सन् 1872 में एक प्रोफेसर एबर्स ने इसे एक कबाड़ी की दुकान से खरीदा था। इसलिए इसका नाम 'एबर्स पैपिरस' रख दिया गया। इस पेपर के अनुसार अफीम का एक अन्य दवा के साथ मिश्रण रोते बच्चों को चुप कराने के लिए प्रभावी था। अभी कुछ समय पहले तक मिस्र, भारत और यूरोप में भी बच्चों को अफीम देकर चुप कराया जाता था। दूध पिलाने वाली माताएं अपने स्तनाग्रों पर पोस्त का दूध मल लेती थीं जिससे कि बच्चा माता के 'औषधियुक्त' दूध को पी तुरंत गहरी नींद में सो जाता था।

हशिश एक अन्य मादक औषधि है जो एक बिल्कुल ही अलग पौधे (कैनाबिस) से प्राप्त होती है। इसके बारे में हम अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा करेंगे। प्राचीन संस्कृत साहित्य में इस बात का जिक्र है कि एक समय अफीम और हशिश शब्दों में काफी भ्रम था। कभी-कभी खस-खस (पोस्त के बीज) का उच्चारण खश-खश भी किया जाता है। ऐसा विश्वास है कि इसी खश-खश से आधुनिक शब्द हशिश निकला है।

ईसा पूर्व नौंवी सदी में यूनानी कवि होमर अफीम से परिचित था और उसने अपने महाकाव्यों इलियड और ओडिसी में इसका जिक्र भी किया है। उसके

समय में एक अनूठी दवा नेपेंथिस (भुलावे की दवा) यूनान में काफी लोकप्रिय थी। अफीम इस दवा की मुख्य संघटक थी। जब ट्रोजन युद्ध के नायकों में से एक टेलमैकास स्पार्टा में मेनेलास से मिलने गया तो वह अपने पिता ओडिसियस के भाग्य के बारे में काफी चिंतित था। वहां मेनेलास की पत्नी हेलेन ने उसे नेपेंथिस सेवन करने को दी जिससे टेलमैकास अपनी चिंताओं को भूल सके।

ऐसा प्रतीत होता है कि यूनानी योद्धा युद्ध में जाने से पूर्व नेपेंथिस का सेवन करते होंगे ताकि युद्ध के खतरों से उनका ध्यान हट जाये और अवश्य ही हेलेन पहले भी नेपेंथिस का काढ़ा बनाती होगी। उपलब्ध साक्ष्य इस बात का संकेत करते हैं कि हेलेन ने यह नुस्खा थास की मिस्री रानी पोलीडेम्ना से सीखा होगा क्योंकि उस समय मिस्र में पोस्त की खेती बड़े पैमाने पर होती थी। दरअसल मिस्र का एक शहर साइक्योन पोस्त की विस्तृत खेती के कारण मेकोन के नाम से विख्यात हो गया। मेकोन का अर्थ ही है पोस्त का शहर। यूनान में पोस्त को मेकोन कहते हैं। संयोगवश मेकोन शब्द एक बिल्कुल ही अलग शब्द मेकोनियम में भी देखने में आता है। किसी नवजात शिशु के सबसे पहले पाखाने को मेकोनियम कहते हैं। चूंकि यह पोस्त के गाढ़े रस से मिलता-जुलता है, शायद इसलिए इसका यह नाम दिया गया है। मेकोन शब्द मेकानिक एसिड में भी है जो कि कच्ची अफीम में मौजूद होता है (करीब 5 प्रतिशत)।

प्राचीन इटली की अन्न की देवी सेरिस भी (जिससे अनाज के लिए अंग्रेजी शब्द सीरिल निकला है) अपनी पीड़ा शांत करने के लिए अफीम का सेवन करती थी। इसी कारण कभी-कभी सेरिस की मूर्ति को हाथ में पोस्त के फल पकड़े हुए दिखाया जाता है। प्राचीन चित्रकला विधान में भी हम पोस्त को नींद के पौराणिक प्रतीक या नींद के देवता हिप्नास के मानवीकृत रूप में देखते हैं जिसमें वह एक दाढ़ीवाले व्यक्ति के रूप में सोते हुए आदमी के ऊपर झुका उसकी आंखों की पलकों पर अपने सींग से बने बर्तन से पोस्त का रस डालता हुआ चित्रित है। ईसा के बाद सन् 40 में स्क्रिबोनियस लार्गस ने अफीम बनाने की विधि का वर्णन किया है। उसने यह भी बताया है कि अफीम पोस्त के फलों से निकाली जाती है न कि उसकी पत्तियों से। बाद के रोमन सिक्कों के ऊपर पोस्त और उसके प्रतीकों को उकेरा भी जाने लगा। रोम के इतिहास में 135-106 ई. पू. हुए मक्काबीज़ कबीलों के अभिजात पुरोहित और शासक हाइकैनस के काल में कांसे के सिक्कों पर भी पोस्त के प्रतीक देखने में आते हैं।

संभवतः अफीम का उद्गम एशिया माइनर (वर्तमान तुर्की) में कहीं पर



चित्र 7 : यूनानी चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स ने मेकोन का जिक्र किया जो कि शायद पोस्त रस था।

था। इस स्थान से अफीम अन्य स्थानों पर फैली। हेब्रू में इसे ओफियान कहते थे और अरबी अफ-यून—दोनों ही नाम स्पष्टतः ओपियम से निकले हैं। अफीम के लिए चीनी शब्द ओ-फूयुंग अरबी शब्द अफ-यून से निकला है।

चिकित्साशास्त्र के जनक के रूप में विख्यात यूनानी चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स (460-377 ई. पू.) भी शायद पोस्त रस से परिचित था, क्योंकि उसने मेकोन नामक दवाई का जिक्र किया है जो अविरेचक (दस्त रोकने वाली दवा) और मादक दोनों थी। फिर भी पोस्त का पहला प्रामाणिक जिक्र मेकोनियान को माना जाता है जो कि यूनान वनस्पतिविज्ञानी थियोफ्रेस्ट्स (372-287 ई. पू.) द्वारा किया गया था।

गैलेन सन् 169 से 192 तक रोम का एक प्रमुख चिकित्सक था। यह गैलेन ही था जिसने अफीम के गुणों का बढ़ा-चढ़ाकर बखान किया जिससे दूसरी सदी के अंत तक अफीम एक जादुई दवा के रूप में विख्यात हो गयी। रोम के सम्राट सेवेरस द्वारा इसके प्रयोग की खुली छूट देने के बाद अफीम दुकानदारों और भ्रमणशील नीम-हकीमों द्वारा बड़े पैमाने पर बांटी जाने लगी।

अरबी चिकित्सक भी बड़े पैमाने पर अफीक का उपयोग करते थे, इनमें सबसे प्रमुख था एविसेन्ना (सन् 980-1037)। एविसेन्ना दस्त लगने पर और आंखों की बीमारियों में अफीम लेने की हिदायत देता था। ऐसा कहा जाता है कि एविसेन्ना खुद ज्यादा अफीम खाने से मर गया था। लगभग इसी समय के अरबी व्यापारी अफीम को पूर्वी देशों में लाए। कुरान द्वारा सुरा पर पाबन्दी के कारण मुस्लिम लोग नशे के लिए अफीम के शिकार बने। मुगल बादशाह बाबर



चित्र 8. रोमन चिकित्सक गैलेन ने अफीम के गुणों का बढ़-चढ़ाकर बखान किया।

और हुमायूं भी अफीम के बहुत शौकीन थे।

अरबी व्यापारियों द्वारा नौवीं शताब्दी में अफीम चीन और पूर्व के अन्य देशों में लायी गयी। बहुत-से यात्रियों ने भी अपने यात्रा वृत्तान्तों में अफीम का वर्णन किया है। सन् 1511 में बारबोसा ने अपनी भारत यात्रा के दौरान पश्चिमी घाट (मालाबार तट) के वर्णन में अफीम का एक भारतीय उत्पाद के रूप में जिक्र किया है। सन् 1546 में फ्रांसिसी प्रकृतिविज्ञानी बेलों ने एशिया माइनर और मिस्र की यात्रा की थी। उसने पाया कि तुर्की के लोग अफीम के इतने दीवाने हैं कि वे इसके लिए अपना घरबार तक बेचने को तैयार रहते हैं।



चित्र 9. अरबी चिकित्सक एविसेन्ना (जमीन पर बैठा हुआ) राजा अद्दौला के दरबार में। एविसेन्ना ने कई बीमारियों के लिए अफीम को लेने की सलाह दी थी।

अफीम के प्रचारक

पुनर्जागरण काल के बाद बहुत-से महत्वपूर्ण लोग अफीम के मोहजाल में फंस गये। डाक्टरों ने इसके प्रशंसा-गीत गाये तो साहित्य में इसका एक 'विचारोत्तेजक' औषधि के रूप में बखान किया गया। अफीम के अल्कलायडों का मनुष्य के शरीर पर विशेष प्रभाव पड़ता है जिससे कि पुनर्जागरण काल के बाद यह एक रामबाण दवा बन गयी। एक तेज पीड़ानिवारक होने के साथ-साथ अफीम कफ का दमन कर कब्ज पैदा करती है और इस तरह से कफ और दस्त में उपयोगी है। दरअसल अफीम में तैयार एक दवा 'लाउडैनम' (लैटिन लाउडेयर से निकला शब्द जिसका अर्थ है—प्रशंसा करना) पेचिश के रोग के लिए सत्रहवीं सदी में काफी लोकप्रिय थी। 'इंग्लिश हिप्पोक्रेट्स' के रूप में विख्यात ब्रिटिश चिकित्सक थामस सिडेनहैम (1624-1689) ने एक तरह से पेचिश और ऐसी अन्य बीमारियों के लिए अफीम की वकालत करके इसके उपयोग को अधिकाधिक सहमति दिला दी। 'अफीम के टिंक्चर' के रूप में ज्ञात लाउडैनम और कुछ नहीं सिर्फ अल्कोहल में अफीम का घोल है (10 प्रतिशत अफीम या 1 ग्रा. मार्फीन 100 सी. सी. अल्कोहल में)। सिडेनहैम ने इस टिंक्चर को केसर, दालचीनी और क्लोवर (बनमेथी) से सुगंधित भी कर दिया था। यह मोहक सम्पाक 'सिडेनहैम का लाउडैनम' के नाम से जाना गया और यूरोप में एक औषधि के रूप में लोकप्रिय हुआ। अफीम के प्रति अपने इस पागलपन की हद तक के उत्साह के कारण सिडेनहैम 'ओपिफिलस' (अफीम प्रेमी) उपनाम से भी विख्यात हुआ। सन् 1680 में सिडेनहैम ने लिखा है : "सर्वशक्तिमान ईश्वर द्वारा इंसान को बख्शी गयी सभी औषधियों में कोई भी



चित्र 10 : ब्रिटिश चिकित्सक थामस सिडेनहैम जिसने पेचिश में अफीम के प्रयोग को सहमति दी।

अफीम जैसी व्यापक और प्रभावशाली नहीं है जो उसे कष्टों से मुक्ति दिलाती है।"

सिडेनहैम के शिष्य डा. थामस डोवर (1660-1742) ने प्रसिद्ध 'डोवर पाउडर' का आविष्कार किया जिसमें 10 प्रतिशत अफीम होती थी। डोवर पाउडर भी दर्द और कफ से मुक्ति के लिए एक लोकप्रिय औषधि बन गया।



चित्र 11 : स्विस चिकित्सक पैरासेल्सस जिसने अफीम का जिक्र 'अमरता के नगीने' के रूप में किया।

सिडेनहैम से लगभग एक शताब्दी पहले स्विस चिकित्सक पैरासेल्सस (1493-1541) जो कि 'चिकित्सा का लूथर' के रूप में भी जाना जाता था, ने अफीम का जिक्र 'अमरता के नगीने' के रूप में किया था। वह खुद भी अफीम खाता था। उसने एक बार शेखी बघारते हुए कहा था, "मेरे पास एक गुप्त औषधि है जिसे मैं लाउडेनम कहूंगा और जो किसी भी बलवर्द्धक औषधि से उत्तम है।"

तीन शताब्दियों बाद प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक और चिकित्सक ओलिवर बेन्डेल होम्स (1809-1894) अभी भी अफीम के गुण गाए जा रहा था, "अफीम...लगता है इसे रचयिता ने खुद बनाया है, क्योंकि हम खुद मकई के खेत में लाल रंग के पोस्त के फूल देखते हैं। ऐसा लगता है कि यह पहले तय था कि जहां भूख को शांत करना होगा, वहीं पीड़ा को भी कम करना होगा।" प्रसिद्ध ऐंग्लो-कनाडियाई चिकित्सक सर विलियम ओस्लर (1849-1919) ने तो अफीम को 'भगवान की औषधि' तक कह दिया था।

अफीम के मोह में गिरफ्तार साहित्यकारों में प्रसिद्ध ब्रिटिश कवि सैम्युएल टेलर कोलरिज (1772-1834) भी था जो अपनी कविता कुबलाई खान (1816) के लिए सर्वाधिक विख्यात है। यह कविता जिसने उसे प्रसिद्धि दी, अफीम के नशे में लिखी गयी थी। अफीम के लती काफी अनोखा व्यवहार करते हैं। अफीम



चित्र 12 : प्रसिद्ध अमेरिकी चिकित्सक ओलिवर वेन्डेल होम्स अफीम को एक बहुत ही लाभदायक औषधि समझता था।

न मिलने पर वे निष्क्रिय, बेजान दिखते हैं, पर इसे पाते ही तुरंत सक्रिय हो जाते हैं और साधारण मनुष्यों से अधिक चुस्ती-फुर्ती से काम करने लगते हैं। अफीम खाने और मादक औषधियों की लत उन्नीसवीं सदी में ही बदनाम हो सकी क्योंकि इससे पहले इन आदतों के खतरे अज्ञात थे। इसलिए अफीम खाने के साथ बदनामी कुछ या बिल्कुल ही नहीं जुड़ी हुई थी। सन् 1797 की गर्मियों में कोलरिज बीमार पड़ा और स्वास्थ्य लाभ के लिए अपने गांव विश्राम करने गया। उसके डाक्टर द्वारा बतायी गयी दवा अफीमयुक्त थी जिसके प्रभाव में वह कुर्सी पर बैठे-बैठे ही सो जाता। एक बार ऐसी ही करीब तीन घंटों की नींद में उसने कुबलाई खान कविता का सपना देखा। जागकर वह तुरंत कागज-कलम ले कविता लिखने लगा। दुर्भाग्यवश इसी समय एक व्यक्ति उससे मिलने आ गया और करीब एक घंटे से भी ज्यादा देर तक उसका दिमाग चाटता रहा। उसके बाद वह कविता ही कोलरिज के दिमाग से उतर गयी। उसके खुद के शब्दों में, "कविता पानी पर पत्थर मारने से जैसे परछाई गायब होती है वैसे ही गायब हो गयी, पर अफसोस पानी पर परछाई दुबारा बन जाती है पर कविता दुबारा नहीं बन पायी।" अपने बाद के जीवन में कोलरिज नियंत्रित रूप से अफीम खाने लगा। एक बार उसने चिल्लाकर कहा भी था, "लाउडेनम मुझे शांति देता है, नींद नहीं। मेरा विश्वास है आप जानते हैं कि यह शांति कितनी दिव्य है; कितना खुशियों भरा संसार है—रेत के विस्तार के बीचोबीच हरियाली, फल और फौवारा।" ब्रिटिश समीक्षक सर लेजली स्टीफन (1832-1904) ने लिखा था, "कोलरिज की कहानी बिना अफीम के ऐसी है जैसे बिना भूतों के हैमलेट का वर्णन।"

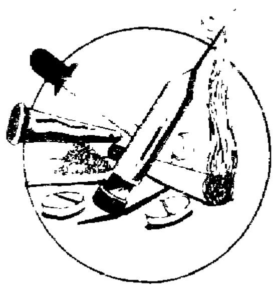
यशस्वी ब्रिटिश निबंधकार थामस डि क्विंसी (1785-1859) ने पहली बार अफीम तब चखी जब वह 19 वर्ष का था। उसने तंत्रिका शूल की पीड़ा को कम करने के लिए अफीम का टिंक्चर लेना शुरू किया। उसने अफीम से अपने परिचय और लत लगने की कथा का वर्णन अपनी पुस्तक 'कनफेशंस आफ एन इंग्लिश ओपियम ईटर' (1822) में किया है। उसने लिखा है कि अफीम लेने के एक घंटे के भीतर ही उसकी पीड़ा गायब हो जाती थी और वह कल्पना-लोक की सुखद सैर पर रवाना हो जाता था। यह सिलसिला कई वर्षों तक चला। अपनी पुस्तक में उसने अपनी खुशी कुछ इस तरह व्यक्त की है, "ओह, यह छोटी-सी और शक्तिशाली अफीम, सबके लिए स्वर्ग के द्वार की चाबी है।" उसने यह भी दावा किया कि औषधि की कितनी भी खुराक उसे मदहोश नहीं कर सकती और उसने इसकी तुलना अंगूर की शराब से कुछ इस प्रकार से की, "अंगूरी शराब का नशा तुरंत सिर चढ़कर बोलने लगता है और दुखों से राहत देता है, पर जल्दी ही उतर जाता है। अफीम लगातार आठ-दस घंटे तक शांति प्रदान करती है। अंगूरी शराब आग है तो अफीम शोला।" अंततः डि क्विंसी इस बात को महसूस करने लगा कि अफीम उसको नुकसान पहुंचा रही है। उसने अपनी पुस्तक के तीसरे खंड का शीर्षक 'द पेंस आफ ओपियम' रखा। (पुस्तक के दूसरे खंड का जिसमें उपरोक्त कथन लिए गये हैं, शीर्षक था 'द प्लेजर्स आफ ओपियम'।) पुस्तक के तीसरे खंड में उसने अफीम के टिंक्चर के प्रभाव का एक भयानक दुःस्वप्न की तरह वर्णन किया है। अपनी इस लत को छोड़ने के प्रयासों का भी उसने जिक्र किया है। औषधि की मात्रा में धीरे-धीरे कमी अपने में ही एक यंत्रणा थी। पर अंततः वह अपने को अफीम के पंजों से छुड़ाने से कामयाब रहा।

कुछ अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति, जिन्हें अफीम की लत थी, वे हैं—अंग्रेजी राजकवि थामस शैडवेल (1642-1692), अंग्रेजी कवि जार्ज क्रैब (1754-1832), फ्रांसिस थामसन (1859-1907) और आर्थर सिमान्स (1865-1945), फ्रांसिसी संगीतकार हेक्टर बर्लियोज़ (1803-1869), अमेरिकी कथाकार एडगर ऐलन पो (1809-1849) और अमेरिकी अभिनेत्री बारबरा ला मार्र (1896-1926)। अफीम के धूम्रपान के आनंद पर टिप्पणी करते हुए फ्रांसिसी नौसेना अधिकारी क्लाड फेयरर (1876-1957) ने एक बार लिखा, "निस्संदेह कोई भी दिल का दौरा या अस्थिमज्जा की ऐंठन अफीम के काले धुएं द्वारा फेफड़ों के बलात्कार की बराबरी नहीं कर सकता।" फ्रांसिसी लेखक और फिल्म निर्माता ज्यां काक्ता

(1889-1962) अफीम का इतना लती था कि बिना इसके न तो वह लिख सकता था और न ही फिल्मों का निर्देशन कर सकता था। एक बार वह काफी बीमार पड़ा और कई दिनों तक अफीम का सेवन नहीं कर सका। उसका गला बैठ गया। अंत में किसी ने उसके मुंह में अफीम का धुआं फूंका। नतीजा ! जैसे किसी ने मुर्दे में जान फूंक दी हो। वह जोर लगाकर बिस्तर से उठा और विचारों, बुद्धिमत्ता व काव्य से परिपूर्ण कलात्मक प्रदर्शन किया।

अद्‌भुत विशेषताएं

ऐसा विश्वास किया जाता है कि अफीम सहवास की अवधि को बढ़ा देती है। इसलिए युवा लोग अक्सर इसका सेवन सहवास के वक्त करते हैं और धीरे-धीरे इस औषधि के आदी हो जाते हैं। दुस्साहसिक कार्यों को करने के लिए भी, जिनमें अदम्य साहस की आवश्यकता हो, इसका उपयोग किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इतिहास में सती होने वाली औरतों को पति की चिता में बैठाते समय अफीम की भारी मात्रा दी जाती थी। राजपूत लोग भी युद्ध में जाने से पहले इसे लेते थे। फ्रांसिसी प्रकृतिविज्ञानी बेलों ने 1546 में लिखा, "तुर्क लोग अफीम खाते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि इस तरह से वे और अधिक साहसी हो जाएंगे और युद्ध के खतरों से कम भयभीत होंगे। युद्ध के समय अफीम की इतनी मात्रा में खरीद होती थी कि बाजार में यह ढूंढ़े से नहीं मिलती थी।"



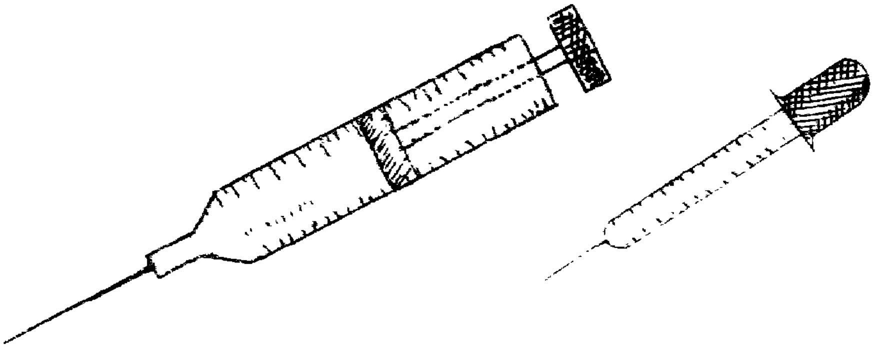
3

अफीम : औषधि जगत की सरताज

अफीम का सेवन करने के अनेक तरीके हैं। पिछली शताब्दी तक लोग सिर्फ उसे खाते थे। सर्टनर द्वारा इसके सक्रिय संघटक मार्फीन की खोज के साथ ही इसके सेवन का नया तरीका निकला जिसमें कच्ची अफीम की बजाय सक्रिय संघटक का सीधे उपयोग होने लगा। बाद में अफीम में और भी अल्कलायड खोजे गये। सन् 1817 में फ्रांसिसी रसायनज्ञ पियरे ज्यां रबीक (1780-1840) ने अफीम से नार्कोपीन नामक अल्कलायड अलग किया। सन् 1832 में उसने एक अन्य अल्कलायड कोडीन को भी निकाला।

सन् 1835 में एक अन्य फ्रांसिसी रसायनशास्त्री पियरे जोसेफ पेलेटियर (1788-1842) ने अफीम से थीबेइन को अलग किया। वस्तुतः अफीम के सक्रिय संघटक के रूप में मार्फीन की खोज के साथ ही अल्कलायडों में वैज्ञानिकों की दिलचस्पी जाग उठी और होशियार व मेहनती रसायनज्ञ पौधों से अल्कायड ही निकाल रहे थे। यह महज संयोग नहीं था कि अल्कलायड लाभदायक औषधियां सिद्ध हो रहे थे और बीमारी में पूरे पौधे को देने की बजाय अल्कलायड देना अधिक प्रभावकारी हो रहा था। पेलेटियर ने एक अन्य फ्रांसिसी औषधिविज्ञानी जोसेफ शैवेन्तो (1795-1878) के साथ मिलकर कार्य करना शुरू किया। सन् 1818 से 1820 तक उन्होंने मिलकर विभिन्न पौधों से कई अल्कलायडों को अलग किया। इनमें सिंकोना से कुनीन; कुचिला से स्ट्रिक्नीन और काफी से कैफीन शामिल थे। सन् 1848 में जर्मन रसायनशास्त्री जार्ज मर्क (1815-1888) ने कच्ची अफीम से पैपेवरीन को अलग किया।

सन् 1853 में एक और महत्वपूर्ण खोज हुई। एक फ्रांसिसी चिकित्सक चार्ल्स गैब्रिएल प्रैवेज (1791-1853) ने धातु से बनी पहली कामचलाऊ सिरिंज



चित्र 13 : फ्रांसिसी चिकित्सक प्रैवेज ने पहली कामचलाऊ धातु सिरिंज का आविष्कार किया।

का आविष्कार किया। इसमें एक खोखली सुई भी लगी हुई थी। अधस्त्वचीय (हाइपोडर्मिक) सिरिंज के रूप में ज्ञात इस आविष्कार से चिकित्सक और नशेड़ी दोनों मार्फीन को सीधे त्वचा के नीचे या रक्तशिराओं में पहुंचाने में कामयाब हुए। इससे कच्ची अफीम के इस्तेमाल की अपेक्षा बेहतर और जल्द नतीजे मिले। हालांकि इससे पहले सन् 1656 में एक अंग्रेज वैज्ञानिक सर क्रिस्टोफर रेन (1632-1723) साही के कांटे की सहायता से, जिनके पीछे एक छोटी-सी खाल जैसी थैली लगी थी, नसों में सीधे दवा पहुंचाने में सफल रहा था, पर उसका यह तरीका लोकप्रिय नहीं हो पाया। धातु की बनी हाइपोडर्मिक सिरिंज की मदद से सीधे नसों में मार्फीन पहुंचाने वाला पहला व्यक्ति एक स्वीडिश चिकित्सक अलेक्सैंडर वुड (1817-1884) था। यह करिश्मा उसने सिरिंज बनने के वर्ष ही अपनी पत्नी पर कर दिखाया था जो कि इस प्रकार सुई से नशा करने



चित्र 14 : अंग्रेज वैज्ञानिक सर क्रिस्टोफर रेन सिरिंज से मिलते-जुलते आदिम यंत्र को प्रयोग करने वाला पहला व्यक्ति था।

वाला पहली नशेड़ी बनी। एलेक्जेंडर वुड की खोजें सन् 1855 में प्रकाशित हुई और जल्दी ही संपूर्ण चिकित्सा जगत इसे जान गया। इस घटना के तुरंत बाद सन् 1861 में अमेरिकी गृहयुद्ध के दौरान सैनिकों को पीड़ा, पेचिश, अतिसार आदि से बचाने के लिए व्यापक स्तर पर मार्फीन के इंजेक्शन दिये गये। परिणामस्वरूप गृहयुद्ध के बाद भारी संख्या में सैनिक नशे की लत के साथ नागरिक जीवन में लौटे, एक ऐसी अवस्था जिसे व्यंग्यात्मक सम्मान के साथ सैन्य व्याधि या सैनिक की बीमारी कहा गया।

हेरोइन : बीसवीं सदी का अभिशाप

इस समय तक दो बातें साफ-साफ साबित हो चुकी थीं—एक कि मार्फीन निस्संदेह एक शक्तिशाली अनकार्बनिक (औषधि) जो पीड़ा व अन्य शारीरिक परेशानियों को कम करती है यानी दर्दनाशक है और दूसरे यह कि इसके लगातार सेवन से इसकी लत पड़ जाती है। इस प्रकार जहां कहीं भी मार्फीन का इस्तेमाल यदि एक सप्ताह तक भी दर्दनाशक के रूप में किया गया वहां रोगी बिना अपवाद के इसके आदी बन गए। कहा जाए तो लत एक आवश्यक बुराई बन गई। अब वैज्ञानिकों ने मार्फीन की बनावट में बदलाव लाने की कोशिश शुरू की। उनका मानना था कि हो सकता है मार्फीन का एक हिस्सा दर्द कम करता हो और दूसरा लत लगाता हो। क्या वे इस लत लगाने वाले हिस्से को हटा, सुधार या बदल नहीं सकते हैं? सन् 1898 में अपने एक ऐसे ही प्रयास में जर्मन रसायनज्ञ हेनरिक ड्रेसर ने मार्फीन को एक सस्ते व आसानी से उपलब्ध रसायन एसिटिक एनहाइड्राइड (जलविहीन एसिटिक अम्ल या सिरका) के साथ मिलाया। इस अभिक्रिया से एक शक्तिशाली रसायन डाइएसिटिक मार्फीन बना। इस औषधि का सेवन करने पर विशालता का भ्रम होता था और व्यक्ति अपने को बहुत बहादुर (बिल्कुल फिल्मी नायक-नायिका की तरह) समझने लगता। इसी कारण से ड्रेसर ने अपनी खोज को हेरोइन नाम दिया। आजकल अधिकांश नशेड़ी हेरोइन लेते हैं।

पर उस समय चिकित्सकीय कारणों से लत लगने के बचाव के रूप में हेरोइन की जयजयकार की गयी। ड्रेसर के समकालीन प्रमुख वैज्ञानिकों ने इस बात को माना कि हेरोइन प्रभावकारी व अव्यसनी दर्दनाशक हो सकती है। कुछ लोगों ने मार्फीन की लत छुड़ाने के लिए हेरोइन का इस्तेमाल भी किया। लेकिन यह लत लगाने में मार्फीन से भी ज्यादा खतरनाक साबित हुई। इससे और भी

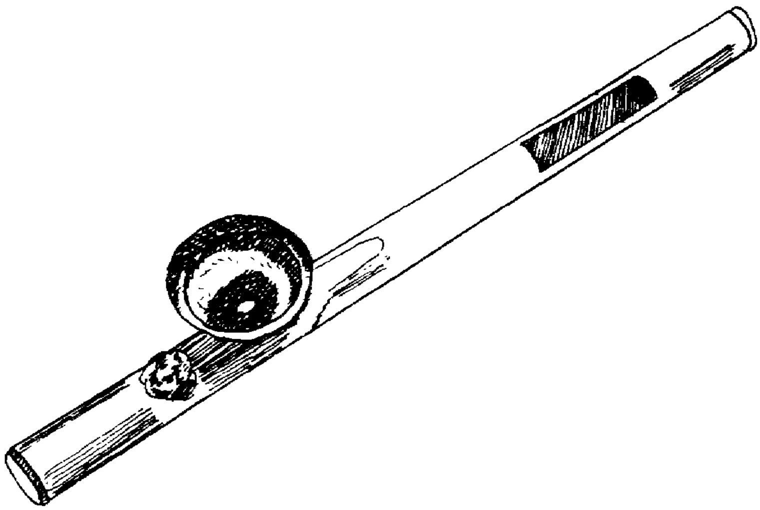
गहरी लत लगती थी। हेरोइन न मिलने तक लती व्यक्ति मुरझाया रहता है पर जैसे ही उसकी नसों में हेरोइन इंजेक्ट की जाती है वह सक्रिय हो उठता है। ऐसा लगता है जैसे मुर्दे में जान फूंक दी गयी हो। कुछ लती व्यक्ति हेरोइन की सनसनी की तुलना लैंगिक सहवास की चरमोत्तेजना से करते हैं। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि हेरोइन कोई 'बलवर्द्धक' औषधि नहीं है। एक सही सलामत, स्वस्थ व्यक्ति हेरोइन का इंजेक्शन देने पर ज्यादा या बढ़िया काम नहीं करेगा। लती व्यक्ति हेरोइन का इंजेक्शन लेकर सिर्फ इसलिए अच्छा कार्य करता है क्योंकि लत के कारण उसकी शारीरिक क्षमताएं औषधि पर निर्भर हो जाती हैं। लेकिन कुल मिलाकर साधारण व्यक्ति से उसकी क्षमताएं कम ही होती हैं।

अफीम का धूम्रपान

अधस्त्वचीय सुई (हाइपोडर्मिक नीडल) के बनने से पहले अफीम का धूम्रपान होता था। अभी भी दूर-दराज के क्षेत्रों में यह प्रथा जारी है। धूम्रपान की अफीम को चंडू या मद्दक कहा जाता था और इसे हमारे गांवों-देहातों में बड़े ही अनूठे तरीके से बनाया जाता था। एक बर्तन में कच्ची अफीम लेकर उसमें सिर्फ इतना पानी मिलाया जाता है कि वह बस डूब जाए। इसे अफीम घुलने तक उबाला जाता है। फिर घोल को बारीक छलनी से छाना जाता कि अवांछनीय तत्व अलग हो जाएं। इस छनी हुई गंदगी को फिर बची-खुची अफीम निकालने के काम में लाया जाता है। इस प्रकार जब सारी कच्ची अफीम गंदगी से अलग हो घोल में आ जाती है तो घोल को धीमी आंच पर उबाला जाता है। पानी सूख जाने पर एक गाढ़ी लेई बचती है। इसे 'तैयार अफीम', 'धूम्रपान की अफीम', 'पकाई हुई अफीम', 'चंडू या मद्दक' कहते हैं। करीब 100 ग्राम कच्ची अफीम से 75 ग्राम 'तैयार अफीम' मिलती है।

शानदार विधि-विधान

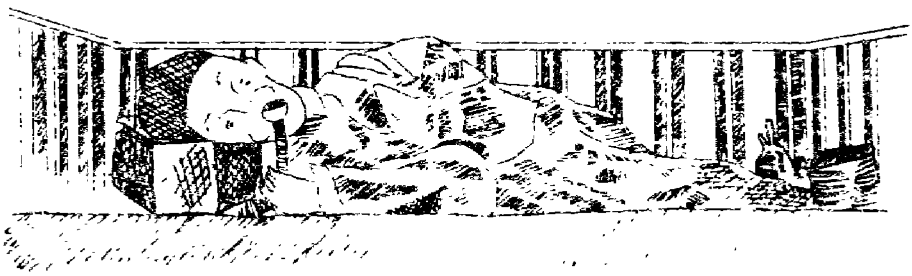
चंडू खास तरह की लकड़ी से बनी नलिकाओं में बड़ी फुर्सत के साथ पी जाती है (यहां पीने से अर्थ है धूम्रपान)। नली के ऊपर एक छेदयुक्त कटोरी जुड़ी रहती है जिसमें अफीम सुलगती रहती है। इसका धुआं बड़ी तत्परता से खींचा जाता है। शुरुआती कुछ कशों से ही अजीब सुख की अनुभूति होती है। चीन, नेपाल सहित विश्व के कई भागों में चंडूखाने पाए जाते हैं जहां लोग समूह में अफीम का धूम्रपान करते हैं। ये चंडूखाने काफी कुछ मदिरालयों जैसे होते हैं, सिवा इसके



चित्र 15 : चंडू के धूम्रपान के लिए लकड़ी से बनी खास नलिका।

कि यहां शराब नहीं परोसी जाती। इन अड्डों पर सिर्फ अफीम का राज चलता है। आधुनिक युग में भी जब लकड़ी की नली की जगह हेरोइन और सुई ने ले ली है, अफीम पीने वाले अपने व्यसन को सुई से नशा करने की अपेक्षा अच्छा मानते हैं। नली से चंडू के धूम्रपान के दौर बहुत विधि-विधान से चलते हैं। समूह में शामिल लोगों को निर्धारित तौर-तरीकों का पालन करना होता है। ऐसे अनुष्ठान एक 'शेफ' की देख-रेख में चलते हैं जो कि चंडू से गोलियां बनाने और पकाने में माहिर होता है। वह कटोरी को अच्छी तरह सुलगाना भी जानता है।

विधिपूर्वक चंडू पीने के इन दौरों का चीन में अधिक कड़ाई से पालन किया जाता है। चंडू के शौकीन लोग नंगे फर्श पर एक करवट लेट जाते हैं और चंडू नलिका का अपने बीच फेरा लगाते हैं। उनके लेटने का सही ढंग इस प्रकार होता है कि एक व्यक्ति का सर अगले के पेट पर टिका रहता है। अफीम की एक गोली (येन पौक) तीस सैकेंड से तीन मिनट तक चलती है और एक औसत चंडू पीने वाले को संतुष्ट करने के लिए छह से दस गोलियों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे जमावड़ों में काफी जोरदार बहसें होती हैं, वीरता के झूठे-सच्चे किस्से सुनाए जाते हैं और आमतौर पर गुमसुम रहने वाले लोग भी बड़े-बड़े आख्यान सुनाते देखे जा सकते हैं। जलती हुई अफीम का धुआं कटोरी पर, नली के अंदर और 'जी रंग' अर्थात् वह कपड़ा जो कटोरी आदि को नली पर टिकाए



चित्र 16 अफीम पीने का एक चीनी तरीका।

रहता है, पर जम जाता है। इस प्रकार जमे हुए काजल जैसे मैल में अफीम के रूप में भी एल्कलायड की काफी मात्रा होती है। धूम्रपान का मज़ा पूरा होने पर इस मैल को खुरचकर आपातकाल के लिए रख लिया जाता है। अफीम का मैल को ताजी अफीम के साथ मिलाया जा सकता है या शराब या अन्य मादक द्रव्यों में घोला जा सकता है। इस तरह यह पी जा सकती है और शरीर में इंजेक्ट भी की जा सकती है। इस घोल को 'चेन शी' कहा जाता है। हालांकि यह पकी हुई अफीम का दुर्बल विकल्प है, पर असली माल न मिलने की दशा में आदी व्यक्ति को जिंदा रखने के लिए काफी है।

अफीम के धूम्रपान पर नियंत्रण

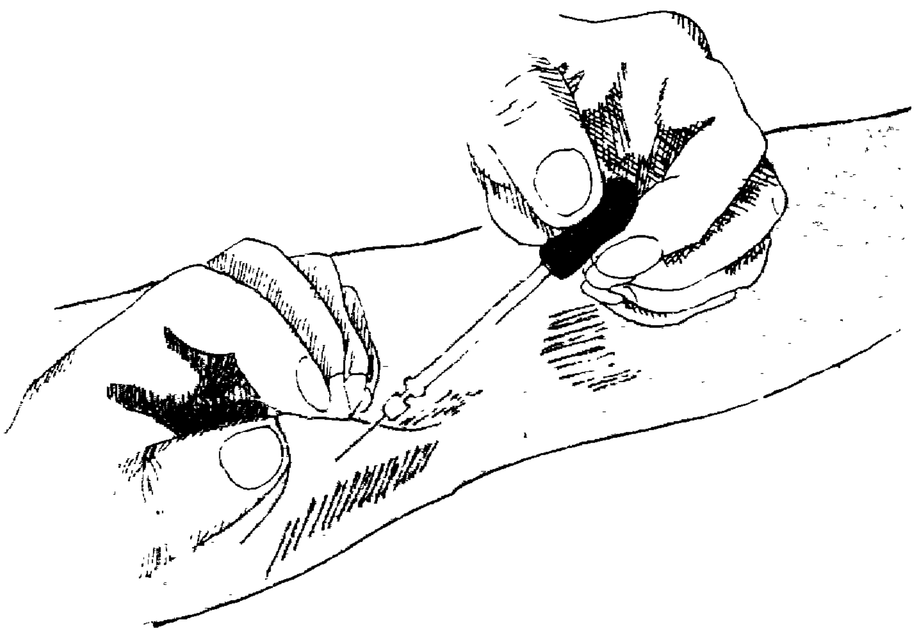
हमारे देश में अफीम के धूम्रपान ने इतना विकराल रूप ले लिया था कि इसे रोकने के लिए बंगाल सरकार को जून, 1933 में बंगाल अफीम धूम्रपान अधिनियम पास करना पड़ा। इसके अनुसार मौजूदा अफीम पीने वालों को पंजीकरण कराना जरूरी हो गया और उन्हें आबकारी विभाग से भी अनुमति लेना आवश्यक था। कोई भी बिना पंजीकरण व अनुमति के अगर अफीम पीता हुआ पकड़ा जाता तो उस पर मुकदमा चलता और दोषी साबित होने पर छह महीने की कैद और जुर्माने की सजा मिलती। बंगाल में अफीम जांच कमेटी की सिफारिशों के अनुसार किसी के द्वारा अफीम रखने की मात्रा भी 11 ग्राम से घटाकर 3-4 ग्राम कर दी गई। इससे बढ़कर यहां तक कि 5 ग्राम तक अफीम खरीदने के लिए आबकारी विभाग की अनुमति आवश्यक थी। यह अनुमति किसी चिकित्सक के प्रमाण पत्रों के आधार पर मिलती कि अमुक व्यक्ति को चिकित्सा कारणों से अफीम की जरूरत है। पर किसी भी हालत में किसी को भी 5 ग्राम

से अधिक अफीम खरीदने की अनुमति नहीं थी। इसी तरह के अधिनियम बिहार और उत्तर प्रदेश में भी लागू किए गये, पर अब ये सभी अधिनियम 1985 में केंद्र सरकार द्वारा पारित एक व्यापक अधिनियम-मादक औषधि एवं लत लगाने वाले पदार्थों का (नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रॉपिक सब्सटेंसेस) अधिनियम द्वारा बदल दिए गए हैं। यह अधिनियम न सिर्फ अफीम के बल्कि अन्य मादक औषधियों के दुरुपयोग पर भी रोक लगाता है।

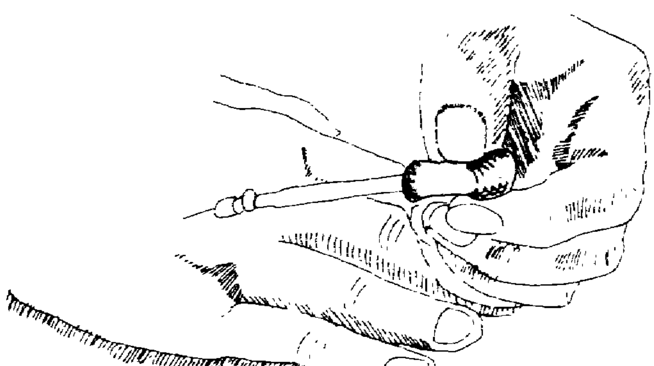
अब आदी व्यक्ति को कच्ची अफीम आमतौर पर उपलब्ध नहीं होती। लती लोग इसलिए छद्म व्यापारियों से 100-100 मि. ग्रा. के हेरोइन के पैकेट खरीदते हैं। हेरोइन मोटे सोडे की तरह सफेद रवेदार पदार्थ है पर इसका स्वाद कड़वा होता है। अवैध प्रयोगशालाओं से लगभग 100 प्रतिशत शुद्ध हेरोइन निकलती है पर 'उपभोक्ता' तक पहुंचने से पहले यह कई दलालों के हाथों से गुजरती है। मुनाफा कमाने के लिए वे इसमें मिलती-जुलती चीजें मिला देते हैं। साधारणतः इसमें लेक्टोज (दुग्ध शर्करा), टैल्कम पाउडर या कुनैन की मिलावट की जाती है। कुनैन मिलाने के पीछे यह तर्क है कि यह न सिर्फ हेरोइन जैसी दिखती है बल्कि इसका स्वाद भी कड़वा होता है। अनुभवी खरीदार माल की शुद्धता की जांच इसे चखकर करते हैं। इसमें अगर दूध शर्करा या टैल्कम पाउडर मिला हो तो मिलावट आसानी से पकड़ में आ जाती है। पर अधिकांश लती इस बात की परवाह नहीं करते कि उन्हें जो हेरोइन मिली है वह मिलावटी है या शुद्ध। कुछ दलाल हेरोइन में शुद्ध गुड़ मिला देते हैं जिससे यह भूरे रंग की हो जाती है और जिससे स्ट्रीट हेरोइन को व्यापार की भाषा में ब्राउन शुगर भी कहा जाता है। स्ट्रीट हेरोइन वह मिलावटी हेरोइन है जो अंततः व्यसनी व्यक्ति को मिलती है। इस नाम का उद्गम स्वतः स्पष्ट है। सड़क पर चोरी-छिपे बिकने से पहले ही इसमें हेरोइन की मात्रा 3 से 5 प्रतिशत से अधिक नहीं रह जाती। बीच में हरेक दलाल जितना माल प्राप्त करता है उतनी ही मिलावट उसमें करता है। यह प्रक्रिया कुछ इस प्रकार चलती है: पहला दलाल 100 प्रतिशत शुद्ध हेरोइन प्राप्त करता है। इसकी करीब 28 ग्राम मात्रा में वह 28 ग्राम दूध शर्करा (या अन्य मिलावटी सामान) मिलाकर इसे 56 ग्राम कर लेगा, जिसमें हेरोइन 50 प्रतिशत ही होगी। अगला दलाल इसमें 56 ग्राम शर्करा मिलाकर इसे 25% हेरोइन कर 112 ग्राम कर लेगा। इस प्रकार सिर्फ 5 बिचौलियों के पास से गुजरने पर इसकी मात्रा 896 ग्राम हो जाएगी जिसमें शुद्ध हेरोइन सिर्फ 3 प्रतिशत ही होगी।

हेरोइन सेवन की विधियां

लती व्यक्ति हेरोइन का सेवन कई तरीकों से कर सकता है। वह इसे जीभ पर रख सकता है, सूंघ सकता है, अपनी त्वचा में इसकी सुई लगा सकता है (जिसे



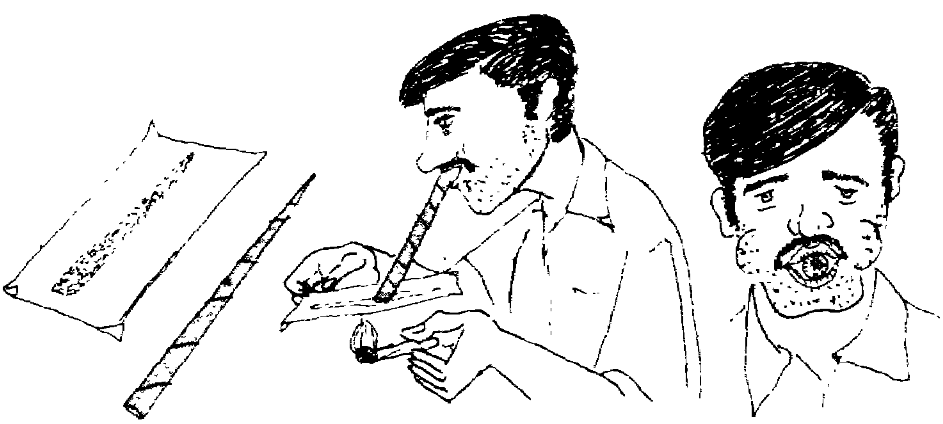
चित्र 17 अ : स्किन पोपिंग—त्वचा को खींचकर उसके नीचे औषधि को इंजेक्ट किया जाता है।



चित्र 17 ब : मेन लाइनिंग—औषधि सीधे नस में इंजेक्ट की जाती है।

'स्किन पोपिंग' (त्वचाछेदन) कहते हैं क्योंकि त्वचा खींचकर उसमें हेरोइन का इंजेक्शन लगाते हैं) या इसे सीधे अपनी नस में इंजेक्ट कर सकता है (इसे मेनलाइनिंग कहते हैं, क्योंकि औषधि को सीधे 'लाइन' पर डाल दिया गया)। हमारे देश में भी बहुत से गरीब लोग हेरोइन का धूम्रपान के रूप में प्रयोग करते हैं, यह 'ड्रेगन का पीछा करना' के रूप में विख्यात है। इसमें सिगरेट की चमकीली पन्नी पर सफेद पाउडर फैला लिया जाता है। एक कागज की नली लती व्यक्ति अपने मुंह में थामे रहता है। नली का दूसरा सिरा पाउडर को लगभग छूता रहता है। पन्नी के नीचे मोमबत्ती या माचिस की तीली की लपट जलाई जाती है जिससे हेरोइन धुआं बनकर उड़ने लगती है। इससे लती व्यक्ति जल्दी-जल्दी कश भरने की कोशिश करता है। पन्नी के नीचे लपट आगे-पीछे फिराई जाती है और ऊपर लती व्यक्ति अपनी नली को भी आगे-पीछे घुमाता है और साथ ही जोर-जोर से कश भी भरता है। इस तरीके से वह हेरोइन के धुएं का पीछा करता है जब तक कि सारा पाउडर खत्म न हो जाय। इस अनोखे तरीके को ड्रेगन का पीछा करना उचित ही कहा गया है क्योंकि इस दौरान लती व्यक्ति एक बार भी सांस बाहर नहीं छोड़ता है। कुछ लोग इस दौरान अपने होटों और दांतों के बीच एक सिक्का भी रख लेते हैं। ऐसा माना जाता है कि इससे गंदगी इस पर जमा हो जाती है। जब लती को ताजी औषधि नहीं मिलती तो वह इसी सिक्के पर जमे धुएं को खुरचकर उससे काम चला लेता है।

फिर भी हेरोइन सेवन का सबसे लोकप्रिय तरीका इसे सुई द्वारा इंजेक्ट

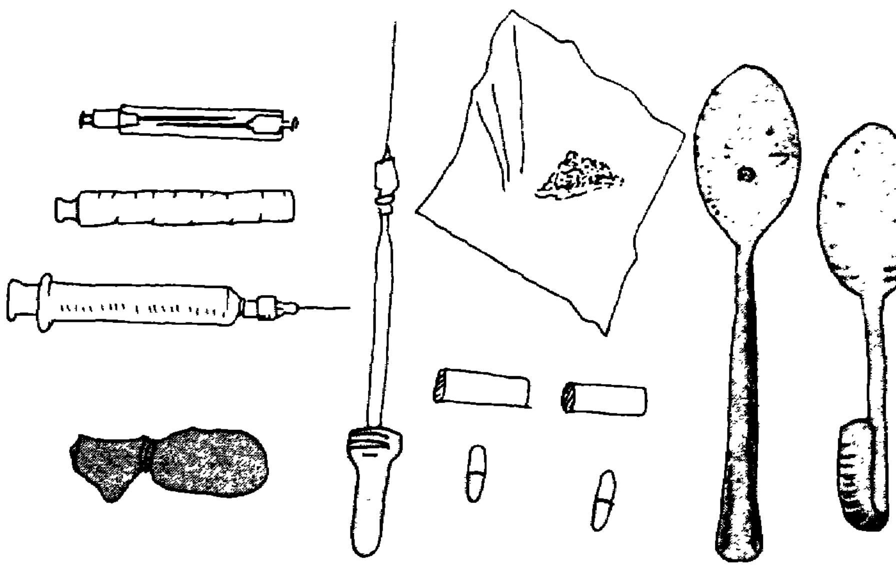


चित्र 18 : भारत में हेरोइन धूम्रपान का ठेठ देसी तरीका।

करने का ही है। हेरोइन खाने या सूंघने पर इतनी जल्दी तीव्र आनन्द नहीं देती जितनी जल्दी नस में सुई द्वारा इंजेक्ट करने पर देती है। आमाशय में पाचक रसों द्वारा यह औषधि विखंडित हो जाती है। फिर पेट से नसें इसे जिगर (लीवर) में पहुंचाती हैं जहां यह और विखंडित हो जाती है। इसी कारण से जब चिकित्सक भी रोगी को चिकित्सकीय कारणों से हेरोइन देना चाहते हैं तो वे भी इसे इंजेक्शन द्वारा ही देते हैं। शुरुआती लती जो सुई से डरते हैं इसे खाते या सूंघते हैं, पर उनमें से अधिकांश बाद में सुई का उपयोग करने लगते हैं।

मेन लाइनिंग के यंत्र

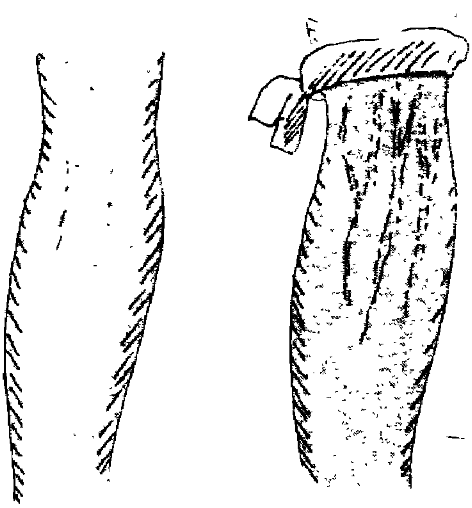
मादक औषधियों के नशेड़ियों की अंधेरी व गंदी दुनिया में मेन लाइनिंग के यंत्र सबसे अनोखे हैं। लती व्यक्ति का निजी सामान, जिसे कभी-कभी आउट फिट्स (उपस्कर), वर्क्स (यंत्र) या टायज़ (खिलौने) कहा जाता है, किस्म-किस्म के औजारों से बना होता है। चम्मच, शराब की बोतल का ढक्कन या ऐसी ही कोई चीज (कुकर) जिसमें हेरोइन में पानी मिलाकर गर्म किया जा सके। कभी-कभी चम्मच का हत्था मोड़कर दोहरा किया जाता है ताकि चम्मच को मेज पर सीधा रखा जा सके। सिरिंज (पिचकारी) या स्पाइक (कांटा) या तो बाजार से खरीद



चित्र 19 : उपकरण—हेरोइन के लती व्यक्ति का निजी सामान।

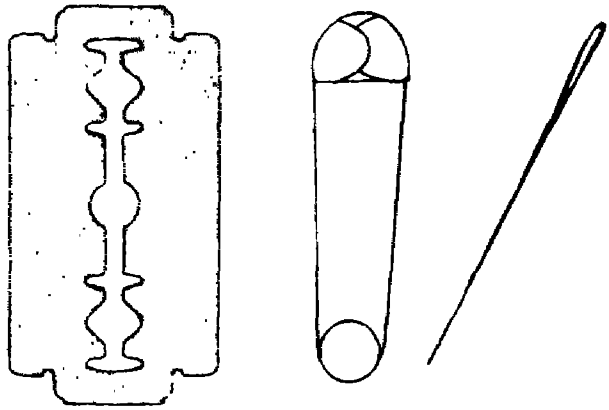
लिया जाता है या फिर घर में ही ड्रापर और रबड़ की थैली से बना लिया जाता है। सुई को ड्रापर पर लगाया जाता है पर तब इसे अच्छी तरह से फिट करने के लिए 'गास्केट' की जरूरत पड़ती है। यह गास्केट कॉलर या गाफ के नाम से भी जाना जाता है। यह बेढब पच्चर होता है जिससे सुई ड्रापर पर अच्छी तरह खोंस दी जाती है। गास्केट बनाने में कागज का टुकड़ा, धागा, रबड़ या टेप इस्तेमाल हो सकता है पर अधिकतर कागज के नोट का चलन होता है, जिसे सुई के आधार पर कसकर लपेट दिया जाता है। कागज के नोट का प्रयोग इसकी आंशिक जलरोधी प्रकृति के कारण किया जाता है। प्रयोग में न होने पर सुई को माचिस की डिब्बी के कागज में लपेटकर, रबड़ के छल्ले से बांधकर रख दिया जाता है। इस सुरक्षात्मक कवच को म्यान या गिलाफ कहा जाता है।

इस किट में रुई का एक छोटा गोला भी होता है। इसे चम्मच में रखकर इसके जरिए ही हेरोइन को सिरिंज में खींचा जाता है। ऐसा माना जाता है कि उस रुई से विषैले पदार्थ छन जाएंगे। पर दुर्भाग्यवश यही रुई पहले से गंदे घोल में और धूल-मिट्टी मिला देती है। इसके अलावा कभी-कभी रुई के रेशे भी सुई में अटक जाते हैं और अनजाने में नसों में इंजेक्ट हो जाते हैं। यह बहुत खतरनाक है क्योंकि ये रेशे फेफड़ों में जाकर जम जाते हैं जिससे कई गंभीर समस्याएं पैदा हो जाती हैं। यह गंदी रुई बार-बार प्रयुक्त होती है और हैरानी की बात यह है कि लती लोग मानते हैं कि यह विषैले तत्वों को छानती है। ताजी हेरोइन न मिलने पर निराशा में पुराना लती व्यक्ति इसी रुई को पानी में निचोड़कर पानी को अपनी नस में इंजेक्ट कर लेता है। चूंकि रुई हेरोइन से पगी हुई होती है, उसका निचोड़ लती को कुछ न कुछ राहत देता है। यह आदत 'शूटिंग द काटन' के रूप में जानी जाती है।



चित्र 20 : रक्तबंध—रक्तबंध के नीचे नसें स्पष्ट रूप से उभरकर आती हैं।

रक्तबंध (टारनीक) टाई, तौलिया या बेल्ट या कोई भी ऐसी वस्तु होती

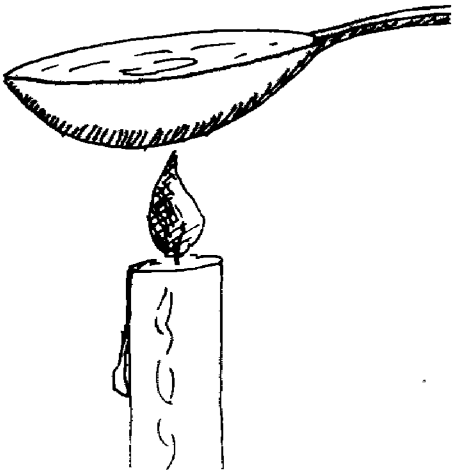


चित्र 21 : सनकी लती व्यक्ति नस में छेद करने के लिए कुछ भी काम में ला सकता है।

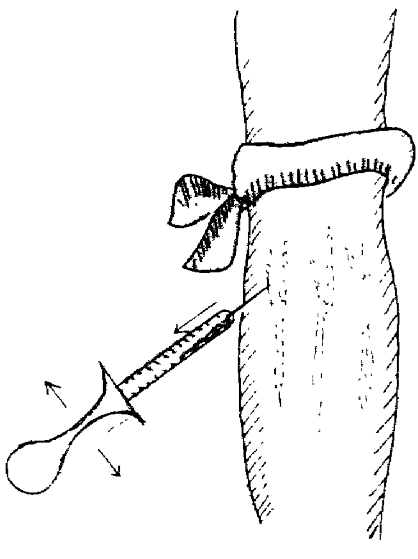
है जो कि कोहनी के ऊपर बांह या टांग पर कसकर बांधी जाती है ताकि नसें उभर जाएं। चिकित्सक भी नसों में इंजेक्शन लगाने के लिए इसी तरीके का इस्तेमाल करते हैं। रक्तबंध कोहनी के जरा-सा ऊपर कसके बांधा जाता है ताकि कोहनी के आगे की तरफ की नसें उभर आएं। फूली हुई नसों में सुई घुसाना आसान हो जाता है। जो लोग सिरिंज और सुई को ठीक तरह से नहीं पकड़ पाते वे सेफ्टी पिन, सिलाई की सुई और यहां तक कि दाढ़ी बनाने के ब्लेड तक का प्रयोग कर नस में छेद करते हैं और ड्रापर की नली को सीधे ही छेद में नस में घुसा देते हैं। कुछ अवसरों पर लती व्यक्ति अपने सामान को चमड़े या टिन के डिब्बे में बहुत एहतियात के साथ रखता है पर अधिकतर माम्लों में यह किट सिगरेट के खाली पैकेट में लैपेटकर, रबड़ के छल्लों से बांधकर घर के सबसे गंदे कोने में छिपा दी जाती है। उसका कारण शायद इस बात का फायदा उठाने की मनोवृत्ति है कि अधिकांश जांचकर्ता तलाशी के दौरान अपने हाथ गंदे नहीं करना चाहते।

असाधारण प्रक्रिया

लती व्यक्ति खुद को इंजेक्शन लगाने की तैयारी में अपनी पुड़िया (बंडल या गुब्बारा) की औषधि को 'कुकर' (जिसके लिए चम्मच या बोतल के ढक्कन का इस्तेमाल हो सकता है) में डालता है। इसमें जरूरत भर पानी मिलाकर इसे



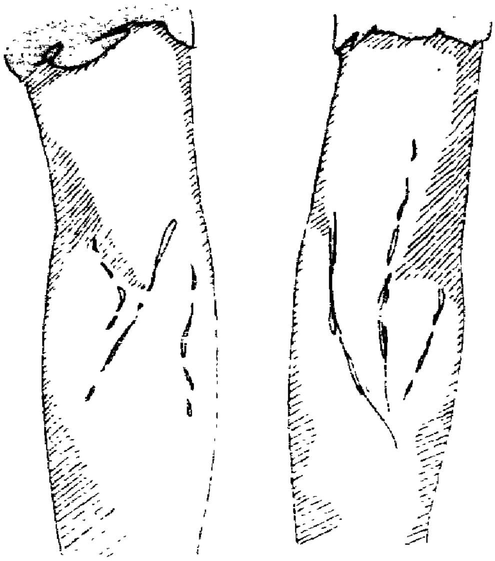
चित्र 22 : कुकर



चित्र 23 : बूटिंग—रक्त को तीन-चार बार ड्रापर में खींचकर वापस नस में ही धकेल दिया जाता है।

मोमबत्ती की लौ पर गरम किया जाता है। उस घोल पर कड़ी नजर रखी जाती है जब तक कि पहला बुलबुला नहीं प्रकट होता है। इसका उद्देश्य यह होता है कि शरीर को सह्य तापमान तक ही घोल गरम हो। फिर इस घोल को रुई के जरिए सिरिंज में खींच लिया जाता है। इसी दौरान कोहनी के ऊपर रक्तबंध बांध दिया जाता है। अब धीरे-धीरे सुई को नस में घुसाया जाता है जब तक कि ड्रापर या सिरिंज में रक्त न दिखाई देने लगे। ड्रापर में रक्त आने से पता चलता है कि नस सही ढंग से छिद्रित हो गयी है। अब औषधि को नस में डाल दिया जाता है। कुछ लती लोग रक्त से ड्रापर को तीन-चार बार खंगालते हैं ताकि जरा-सा भी औषधि ड्रापर में शेष न रहे। इस प्रक्रिया को 'बूटिंग' कहते हैं।

इंजेक्शन का प्रभाव तुरंत और तीव्र होता है। लती इसका वर्णन कई प्रकार से करते हैं। इसमें हाथ-पैरों में ऊपर-नीचे दौड़ने वाली सुखद झुनझुनी जो अंततः पेट के आस-पास आकर ठहर जाती है, से लेकर लैंगिक सहवास की चरम उत्तेजना तक शामिल है, जो धीरे-धीरे सुखद निष्क्रियता पर ठहर जाती है। इसके बाद चिंताओं और जिम्मेदारी की भावना से मुक्ति का अहसास होता है। यह लती व्यक्ति की मनचाही अवस्था है, और यह इंजेक्शन के बाद कई घंटे तक रहती है।



चित्र 24 : लती व्यक्ति की विकृत नसें।

लती जीवन की शुरुआत कोहनी की नसों में इंजेक्शन देने से होती है। लेकिन बार-बार गोदने से नसें दुर्बल और विकृत हो जाती हैं जिसे लती व्यक्ति पहले कलाई, पंजों और फिर बांह के पार्श्व की नसों को छेदने को मजबूर हो जाता है। और विकृति होने पर लती व्यक्ति पैर की तरफ बढ़ जाता है, फिर ऊपर की तरफ टांगों से होते हुए जांघों और पेडू क्षेत्र की तरफ बढ़ना है। अंततः ये सभी नसें भी जब विकृत हो जाती हैं तो लती व्यक्ति गर्दन की नसों की ओर बढ़ता है। हेरोइन के कुछ लती जीभ के नीचे तो कुछ शिश्न की पार्श्व भाग की नस में इंजेक्शन लगाने लगते हैं। लती औरतें अपने स्तनों के नीचे सुई लगाती हैं। शरीर की सभी नसें विक्षत होने पर लती व्यक्ति निराशा में अपनी छाती, पेट, चूतड़, जांघ और यहां तक कि अपने हाथ-पैरों की उंगलियों के बीच जालिकाओं को भी सुई से गोदने लगता है।

हॉट-शॉट

कभी-कभी लती व्यक्ति को हेरोइन का ऐसा नमूना मिलता है जिसमें एक खतरनाक स्ट्रिक्नीन मिला होता है। इसके इंजेक्शन को हॉट-शॉट कहते हैं और इससे तुरंत मौत हो सकती है। हॉट-शॉट तब भी हो सकता है जब एक 3 से 5% शुद्धता की हेरोइन के लती को इससे अधिक शुद्धता की औषधि मिल जाए। इस मामले में मृत्यु इसलिए होती है क्योंकि लती व्यक्ति इस अधिक मात्रा को बर्दाश्त नहीं कर सकता।

अगर लती व्यक्ति पुराना और अनुभवी हुआ तो वह पहले नमूने की बहुत



चित्र 25 : समय के साथ लती व्यक्ति का पूरा शरीर निशानों से भर जाता है।

कम मात्रा का इंजेक्शन लेकर प्रभावों को महसूस करेगा। यह तब काफी महत्वपूर्ण हो जाता है जब हेरोइन किसी नये दलाल से खरीदी गयी हो या अज्ञात मार्का हेरोइन का प्रयोग किया जा रहा हो। पर यदि लती व्यक्ति अपनयन लक्षणों (जो औषधि न मिलने पर प्रकट होते हैं) से पीड़ित हो, तब पुराने लोग भी सारी औषधि को एक साथ इंजेक्ट कर लेते हैं और ऐसे उनकी भी हॉट-शॉट से मौत हो सकती है।

अफीम का काढ़ा

कुछ ग्रामीण चाय की तरह अफीम को पानी में उबालकर इसका काढ़ा तैयार करते हैं। यह काढ़ा कुसुंबा या अमलपानी के नाम से जाना जाता है और इसमें करीब 5 प्रतिशत अफीम होती है। उत्सवों के अवसर पर मेहमानों को कुसुंबा पेश की जाती है। पंजाब के कुछ जिलों और राजस्थान के कुछ भागों, खासकर जयपुर में, पोस्त के फलों से बने पेय पीने का चलन है। कभी-कभी लती ग्रामीण मक्खन, घी में तले हुए पोस्त के फलों की भूजरी खाते हैं। कच्चे हरे पोस्त फलों के रस से बना मीठा हलवा भी खाया जाता है। ये सब संपाक उन ग्रामीणों द्वारा प्रयोग किये जाते हैं जिनकी उन्नत उपकरणों तक पहुंच नहीं है।

कभी-कभी अफीमयुक्त औषधियों का भी दुरुपयोग लत लगाने के लिए

होता था। अठारहवीं सदी में 'ब्लैकड्राप' और 'पैरेगोरिक' दो अफीमयुक्त लोकप्रिय औषधियां थीं। 'ब्लैकड्राप' आकलैंड के एडवर्ड रन्स्टाल द्वारा और 'पैरेगोरिक' लीडेन विश्वविद्यालय के ली मार्ट द्वारा बनायी गयी थी। अठारहवीं सदी के इंग्लैंड में एक ऐसी औषधि क्लोरोडाइन लोकप्रिय थी। इसमें क्लोरोफार्म, ईथर, मार्फिया और भारतीय गांजा मिला रहता था। इन सभी औषधियों का उपयोग पीड़ा को कम करने और पेचिश के इलाज में किया जाता था। पर ये सभी औषधियां रोगियों को नशे की लत लगा देती थीं। इन औषधियों के लती 'मार्फीनिस्ट' (मार्फीन के लती) की तरह व्यवहार करते थे। जहां तक ज्ञात है औरतें इन औषधियों को प्राप्त करने के लिए अपने पति की सारी संपत्ति तक बेच देती थीं और पड़ोसियों के घरों में चोरी भी करने लगती थीं। बीसवीं सदी के काफी पहले ही ये औषधियां बाजार से हटा ली गयी थीं।

मार्फीन के प्रभाव

मार्फीन भावात्मक सुख शांति या संतुष्टि का अहसास उत्पन्न करती है जिसे 'यूफोरिया' (सुख का भ्रम) कहा जाता है। यह सुख का भ्रम उत्पन्न करने की क्षमता ही है जिसके कारण मार्फीन (और उससे संबंधित औषधियों) लत लगाने की औषधि बन जाती है। मार्फीन से विरले ही चिंता या भय का अहसास उत्पन्न होता है जिसे 'डाइफोरिया' कहा जाता है। मार्फीन पीड़ा और कफ की शक्तिशाली शामक है। यह गुदा अवरोधनी में शक्तिशाली संकुचन भी पैदा करती है जिससे कब्ज हो जाती है। मार्फीन श्वसन में दबाव पैदा करती है। अफीम की अधिक मात्रा लेने पर लती व्यक्ति की श्वास दर बहुत कम हो जाती है। दो या तीन स्पंदन प्रति मिनट, जबकि साधारण श्वास दर 18 स्पंदन प्रति मिनट है। यह मनुष्य में चेतना का ह्रास करती है (पर बिल्ली व घोड़े में उत्तेजना पैदा करती है)। यह रक्तचाप घटाकर एक मूत्र विरोधी हारमोन पैदा करती है जो कि मूत्र के बनने को रोकता है। मनुष्य पर इन सब नाना प्रकार के प्रभावों के कारण चिकित्सक मार्फीन को एक अच्छी और उपयोगी औषधि के रूप में देखते हैं।

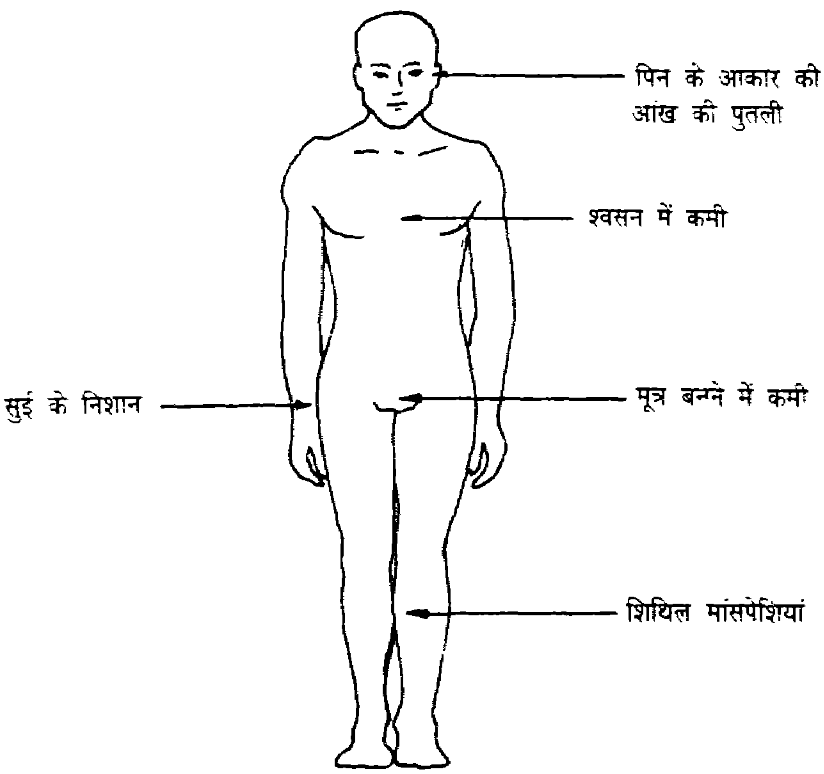
अफीम (या मार्फीन या हेरोइन या अन्य संबंधित औषधि) न मिलने पर लती व्यक्ति अपनयन लक्षणों का अनुभव करता है जो कि काफी निराशाजनक होते हैं। अपनयन लक्षण आमतौर पर तीन अलग-अलग अवस्थाओं में होते हैं–

अवस्था-1 चार से छह घंटे के भीतर शुरू होती है। शुरू में तकलीफ शारीरिक की बजाए मानसिक या मनोवैज्ञानिक होती है। 8 से 14 घंटे के भीतर

बेचैनी, पसीना आना, आंख व नाक बहना, जम्हाई और छींके आने का अनुभव होता है। ये सभी सर्दी, जुकाम के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं। 14 से 24 घंटों के भीतर लक्षण तीव्र होते जाते हैं। लती व्यक्ति की भूख मर जाती है। शरीर में हल्का कंपन होने लगता है और त्वचा में सिकुड़न पड़ जाती है जिसे 'गूज़ फ्लेश' (चर्माकुरण) कहा जाता है। इससे त्वचा नुची हुई जलमुर्गी जैसी हो जाती है जिससे यह मुहावरा निकला है 'गोइंग कोल्ड टर्की'। यह मुहावरा उन लती व्यक्तियों की हालत बताता है जो अपनयन लक्षणों की पहली अवस्था से पीड़ित हैं।

अवस्था-2 24 से 36 घंटे के बाद शुरू होती है। लती व्यक्ति अनिद्रा, उल्टी, दस्त, कमजोरी और निराशा से पीड़ित होता है। पहले से उपस्थित लक्षण और तीव्र हो जाते हैं।

अवस्था-3 48 से 78 घंटों के बाद शुरू होती है। सारे लक्षण मिलकर



चित्र 26 : मार्फीन–चिह्न व लक्षण।

मांसपेशियों और पेट की तीव्र ऐंठन और शरीर की कंपकंपी और झटकों में बदल जाते हैं। शरीर के तापमान और श्वसन दर में वृद्धि होती है तथा उल्टी-दस्त की स्थिति और खराब हो जाती है। शरीर के अनियंत्रित झटके और बिगड़ जाते हैं। इससे शब्द निकला है 'किकिंग द हेबिट'। इन सब अवस्थाओं से गुजरकर लती व्यक्ति महसूस करता है, जैसे वह जीते-जी नरक की यातना भोग कर आया है। इस हालत से बचने के लिए ही लती व्यक्ति बार-बार मार्फीन लेना जारी रखता है।

मार्फीन संग्राहक (रिसेप्टर्स)

अभी हाल ही तक इस बात का पता नहीं था कि शरीर पर मार्फीन का प्रभाव किस प्रकार पड़ता है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि हमारे मस्तिष्क में कुछ खास स्थल होते हैं जिन्हें संग्राहक (रिसेप्टर्स) कहा जाता है, जिनसे जुड़कर मार्फीन अपना प्रभाव उत्पन्न करती है। इन संग्राहकों की तुलना तालों से की जा सकती है जो सिर्फ अपनी ही चाबी से खुलते हैं। जब ताले में सही चाबी लगती है तो ताला खुल जाता है (प्रभाव प्रकट होता है)। अब तक मस्तिष्क में तीन तरह के संग्राहकों की पहचान की गयी है। वैज्ञानिक परंपराओं का पालन करते हुए इन संग्राहकों को यूनानी वर्णमाला के अक्षरों के नाम दिये गये हैं। इन्हें 'म्यू' संग्राहक, 'कापा' संग्राहक और 'डेल्टा' संग्राहक कहा गया है। ये नाम कुछ समझने में कठिन हो सकते हैं पर इनके उद्‌गम की कहानी काफी दिलचस्प है। यह ज्ञात है कि कुछ खास औषधियां इन संग्राहकों के साथ विशेष रूप से जुड़ जाती हैं। इनमें से जिस औषधि के बारे में वैज्ञानिकों को सबसे पहले पता चला उसी के नाम के पहले अक्षर पर संग्राहक का नाम रख दिया गया। इस प्रकार सबसे पहले मार्फीन के बारे में पता चला कि यह म्यू संग्राहक के साथ जुड़ती है। मार्फीन में पहला अक्षर 'एम' है। इस प्रकार इसे 'एम' या 'म' संग्राहक का नाम दिया जा सकता था। पर विज्ञान में सभी चीजों का नाम यूनानी अक्षरों में रखने की प्रथा है (शायद महान यूनानी संस्कृति के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए जिन्होंने सर्वप्रथम वैज्ञानिक सोच विकसित की थी। यूनानी में 'एम' व 'म' अक्षर का समतुल्य u (म्यू) है, अतः इस संग्राहक का, जिसके साथ मार्फीन जुड़ जाती है, नाम u संग्राहक रखा गया। इसी तरह एक अन्य औषधि कीटोसाइक्लैजोसाइन सर्वप्रथम कापा संग्राहक के साथ जुड़ने वाली औषधि पाई गयी। अंग्रेजी अक्षर 'के' का यूनानी समतुल्य 'कापा' है। इस प्रकार से संग्राहक

कापा संग्राहक के नाम से जाने गये।

ये सभी संग्राहक सामूहिक रूप से 'ओपियाएड रिसेप्टर्स' के रूप में ज्ञात हैं। 'ओपियाएड' भी यूनानी शब्द है जिसका अर्थ है अफीम जैसा। इन्हें यह नाम इसलिए दिया गया क्योंकि मार्फीन के अलावा अफीम से निकाली गयी अन्य औषधियां भी इनके साथ जुड़ जाती हैं।

विभिन्न संग्राहकों के उद्दीपन से (यानी विभिन्न तालों के खुलने से) अलग-अलग तरह से लक्षण प्रकट होते हैं। मार्फीन के अणु इन सभी संग्राहकों के साथ जुड़ सकते हैं, या दूसरे शब्दों में इसके पास सभी तालों की चाबी है। इन तीनों संग्राहकों में से किसी के साथ भी मार्फीन के जुड़ने (और इस प्रकार संग्राहक के उद्दीपन) से पीड़ा का नाश होता है और सांस लेने में आसानी होती है। मार्फीन व मार्फीन जैसे यौगिकों के विशेष संग्राहक से जुड़ने पर कुछ और निश्चित एवं विशेष लक्षण प्रकट होते हैं, जैसे कि म्यू संग्राहकों से मार्फीन के जुड़ने पर उल्लास और सुखभ्रांति का अहसास होता है और इसी में लत लगने की प्रवृत्ति है। इसी प्रकार कापा संग्राहकों से मार्फीन के जुड़ने पर आंख की पुतलियों के सिकुड़ने और अवचेतना के अतिरिक्त लक्षण प्रकट होते हैं। डेल्टा संग्राहकों से जुड़ने पर आंतों की गतिशीलता में कमी आती है जिससे कब्ज हो जाती है।

हाल के वर्षों में वैज्ञानिकों को यह पता चला है कि संग्राहक वस्तुतः पूरी इकाई नहीं है बल्कि अलग-अलग खंडों से मिलकर बने हैं। दूसरे शब्दों में संग्राहकों के दो अन्य उपप्रकार भी होते हैं, ये u_1 और u_2 संग्राहक कहे जाते हैं। u_1 संग्राहकों के उद्दीपन से दर्द का नाश होता है जबकि u_2 संग्राहकों के उद्दीपन से श्वसन प्रयासों और आंतों की गतिशीलता में कमी आती है। विभिन्न संग्राहकों के उद्दीपन और उनके लक्षणों को तालिका में संक्षेप से लिखा जा सकता है।

तालिका 1 : विभिन्न प्रकार के 'ओपियाएड' संग्राहकों के उद्दीपन से उत्पन्न लक्षण

क्रम सं.	*म्यू*	*कापा*	*डेल्टा*
1.	पीड़ा में कमी	पीड़ा में कमी	पीड़ा में कमी
2.	श्वसन प्रयासों में कमी	श्वसन प्रयासों में कमी	श्वसन प्रयासों में कमी

3.	उल्लास व सुख भ्रांति (यूफोरिया)	चिंता व भय का दुखद अहसास (डाइफोरिया)। अप्राकृतिक व काल्पनिक चीजों को देखना (मतिभ्रम व दृष्टिभ्रम)	भावात्मक व्यवहार (तकनीकी रूप से प्रभावी व्यवहार के रूप में ज्ञात)
4.	आंख की पुतलियों की सिकुड़न (तकनीकी रूप से मायोसिस के रूप में ज्ञात)	मायोसिस	
5.	आंतों की गतिशीलता में कमी (कब्ज के लिए उत्तरदायी)	–	आंतों की गतिशीलता में कमी
6.	लत लगना (औषधि पर शारीरिक निर्भरता)	लत लगना	–

अब इस जगह पर एक दिलचस्प बात जोड़ी जा सकती है। हमने देखा है कि मार्फीन और इस जैसी अन्य औषधियां इन संग्राहकों के साथ जुड़कर विशेष लक्षण पैदा करती हैं। कुछ ऐसी भी औषधियां हैं जो इन संग्राहकों के साथ जुड़ तो जाती हैं, पर कोई लक्षण पैदा नहीं करती हैं। इनको भी अगर ताले चाबी की उपमा दी जाये तो हम यह देखेंगे कि इन औषधियों के पास भी इन तालों की चाबी है, जो कि ताले में फिट बैठती है, पर ताले को खोल नहीं पाती। परिणामस्वरूप ऐसी औषधियां खुद तो कोई लक्षण पैदा नहीं करती हैं, पर संग्राहकों को इस प्रकार बंद कर देती हैं कि लक्षण पैदा करने वाली औषधियां भी संग्राहकों से नहीं जुड़ पाती हैं। यह एक दिलचस्प स्थिति है जिसका फायदा चिकित्सक अफीम विषाक्तता का इलाज करने में उठाते हैं। पर पहले हमें इन औषधियों के नाम से परिचित हो जाना चाहिए। लक्षण उत्पन्न करने वाली औषधियों के समूह को एगोनिस्ट (उत्प्रेरक) कहा जाता है जो कि यूनानी शब्द है, जिसका अर्थ है–"मैं संघर्ष करता हूं।" इन औषधियों को लक्षण उत्पन्न

करने के लिए संघर्ष करते हुए देखने की कल्पना की जा सकती है। औषधियों के इस समूह को जो कि संग्राहकों से जुड़ तो जाते हैं पर कोई लक्षण पैदा नहीं करते हैं ऐंटागोनिस्ट (अवरोधक) कहा जाता है। यूनानी में इसका अर्थ है, "मैं रोकता हूं।" इन औषधियों को लक्षण उत्पन्न करने वाली औषधियों को रोकते हुए देखने की कल्पना की जा सकती है।

अवरोधकों का उत्प्रेरकों के प्रभाव को काटने में किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है ? कल्पना कीजिए कि एक आदमी ने ढेर सारी मार्फीन ले ली है और उसकी सांसों की गति बहुत कम हो गयी है। इस कारण उसका जीवन खतरे में है। पर सचमुच में उसके शरीर में क्या हो रहा है ? यदि कोई उसके मस्तिष्क के संग्राहकों को देख सकता तो वह यह पाता कि मार्फीन के अणु संग्राहकों से चिपके हुए हैं और व्यक्ति की सांसों को कम करने का प्रभाव उत्पन्न कर रहे हैं। शरीर में मार्फीन धीरे-धीरे टूटती है पर जैसे ही इसके कुछ अणु नष्ट होते हैं नये अणु आकर इन संग्राहकों के साथ जुड़ जाते हैं। यदि ऐसे में रोगी को कोई अवरोधक औषधि, जैसे कि नेलोक्जोन दे दी जाए तो इससे युक्त संग्राहक मार्फीन के लिए भी उपलब्ध नहीं होंगे और इस प्रकार कुछ समय बाद रोगी अच्छा हो जाएगा।

कुछ अन्य औषधियां भी हैं जिन्हें 'आंशिक उत्प्रेरक' कहा जाता है। ये औषधियां क्षीण प्रकार के लक्षण उत्पन्न करती हैं। यह भी रोचक बात है कि कोई एक औषधि एक संग्राहक के लिए उत्प्रेरक, दूसरे के लिए अवरोधक और तीसरे प्रकार के संग्राहक के लिए आंशिक उत्प्रेरक का काम करती है। ऐसी ही एक औषधि पेंटाजोसाइन है जो कि शल्यक्रिया, जलने और हड्डी टूटने पर होने वाले दर्द को कम करने के लिए दी जाती है। यह म्यू संग्राहकों पर अवरोधक, कापा संग्राहकों पर उत्प्रेरक और डेल्टा संग्राहकों पर आंशिक उत्प्रेरक का काम करती है। इसका अर्थ यह है कि पेंटाजोसाइन सभी संग्राहकों से जुड़ जाएगी पर म्यू संग्राहकों के विशेष कोई भी लक्षण उत्पन्न नहीं करेगी, लेकिन डेल्टा संग्राहकों के विशेष लक्षण को आंशिक या क्षीण रूप से उत्पन्न करेगी। इस प्रकार का व्यवहार करने वाली औषधियों को उत्प्रेरक-अवरोधक औषधियां कहा जाता है (क्योंकि ये कुछ संग्राहकों पर उत्प्रेरक और कुछ पर अवरोधक का कार्य करती हैं)। विभिन्न मार्फीन जैसी औषधियों के प्रभावों को दर्शाने वाली तालिका से यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा।

तालिका 2 : मार्फीन जैसी कुछ औषधियों का विभिन्न ओपियाएड संग्राहकों के संबंध में व्यवहार

क्रम सं.	*मार्फीन जैसी औषधि*	*म्यू संग्राहक पर व्यवहार*	*कापा संग्राहक पर व्यवहार*	*डेल्टा संग्राहक पर व्यवहार*
1.	मार्फीन	उत्प्रेरक	उत्प्रेरक	उत्प्रेरक
2.	नैलार्फीन	अवरोधक	आंशिक उत्प्रेरक	आंशिक उत्प्रेरक
3.	पेंटाजोसाइन	अवरोधक	उत्प्रेरक	आंशिक उत्प्रेरक
4.	नालब्यूफीन	अवरोधक	उत्प्रेरक	उत्प्रेरक
5.	ब्यूप्रिनार्फीन	आंशिक उत्प्रेरक	अवरोधक	(?)
6.	ब्यूटारफैनाल	अवरोधक	उत्प्रेरक	उत्प्रेरक
7.	नैलोक्सोन	अवरोधक	अवरोधक	अवरोधक

यह ध्यान देने योग्य बात है कि केवल एक ही औषधि मार्फीन सभी तीनों संग्राहकों पर उत्प्रेरक का काम करती है और केवल एक ही औषधि नैलोक्सोन तीनों संग्राहकों पर अवरोधक का कार्य करती है। इस प्रकार नैलोक्सोन सचमुच में मार्फीन अवरोधक भी है और मार्फीन विषाक्तता में भी उपयोगी है।

शोधकर्ताओं ने मस्तिष्क में एक चौथे प्रकार के संग्राहक का पता लगाया है। इसके साथ सर्वप्रथम एस के एफ 10,047 नामक औषधि (औषधि के रूप में एस के एफ कंपनी द्वारा विकसित एवं परीक्षित 10,047वां यौगिक) जुड़ती पाई गयी थी। औषधि के नाम के पहले अक्षर एस या 'स' के यूनानी समतुल्य सिग्मा से इसका नामकरण सिग्मा संग्राहक किया गया। इस संग्राहक केंद्र के उद्दीपन से अरुचिकर अहसास (डिस्फोरिया) और मतिभ्रम (हेल्यूसिनेशन) उत्पन्न होता है। हैल्यूसिनेशन शब्द लैटिन ऐल्यूसिनैरी से निकला है जिसका अर्थ है 'मन में भ्रमण'। मतिभ्रम में अस्तित्वहीन वस्तुएं दिखाई देती हैं और अस्तित्वहीन आवाजें सुनाई देती हैं। व्यक्ति महसूस करता है कि उसके शरीर पर कीड़े रेंग रहे हैं, हालांकि वस्तुतः ऐसा कुछ नहीं होता है।

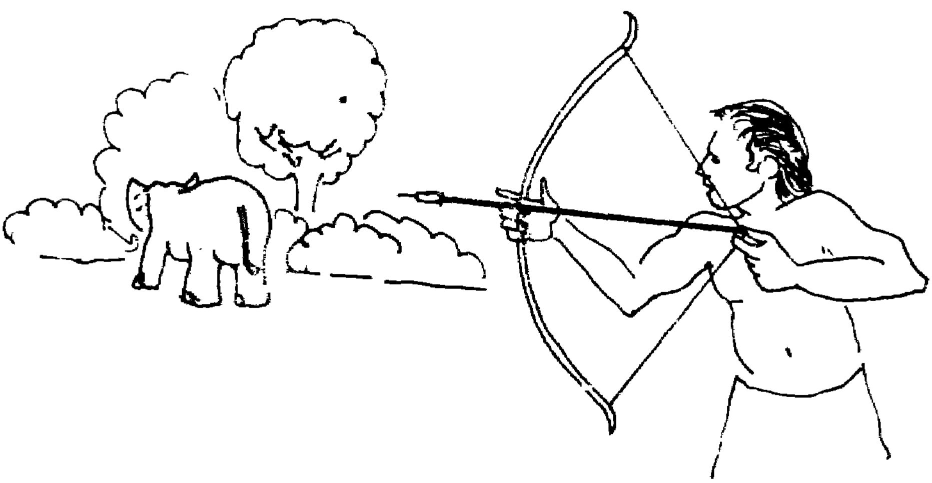
लेकिन सिग्मा संग्राहक को सही अर्थों में ओपियाएड संग्राहक नहीं माना जाता है क्योंकि न तो मार्फीन और न ही नैलोक्सोन इससे जुड़ती है। यह एक ऐसा ताला है जिसकी चाबी न मार्फीन के पास और न नैलोक्सोन के पास। असली ओपियाएड संग्राहक होने के लिए इसके साथ मार्फीन या नैलोक्सोन जुड़ने

चाहिए। फिर भी कई मार्फीन जैसी औषधियां जैसे कि पेंटाजोसाइन व ब्यूटारफैनाल इस संग्राहक से जुड़कर अरुचिकर लक्षण उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार इस संग्राहक के अस्तित्व का ठोस प्रमाण मिलता है। इसके अलावा कुछ अन्य औषधियां जैसे पी सी पी भी इस संग्राहक के जरिए अपना प्रभाव उत्पन्न करती हैं जैसा कि हम बाद में देखेंगे।

अब यह भी ज्ञात है कि मनुष्य का शरीर भी मार्फीन जैसे रसायनों का निर्माण करता है। इनके बारे में 1970 के दशक के मध्य में पता चला था। इनके तीन अलग-अलग वर्गों का पता चला है—एनकेफलिंस, एंडार्फिंस और डाइनार्फिंस। गंभीर रूप से चोट लगने पर ये रसायन शरीर में बनने लगते हैं और प्राकृतिक दर्दनाशक का काम करते हैं। कुछ अर्सा पहले तक यह ज्ञात था कि युद्ध में गंभीर रूप से घायल सैनिकों को घाव की तुलना में उतनी पीड़ा या दर्द महसूस नहीं होता—यह हमेशा ही कुछ रहस्यमय रहा है। पर अब इसे आसानी से समझाया जा सकता है। आपको भी अनुभव होगा कि गंभीर चोट के बाद दर्द अपने आप कुछ समय बाद काफी कम होता है और आराम मिलने लगता है। यह इन्हीं मार्फीन जैसे रसायनों के कारण होता है।

मार्फीन के संबंधी

अभी तक हम मार्फीन से संबंधित औषधियों, जैसे—कोडीन, पैपेवरीन और हेरोइन से परिचित हो चुके हैं। अब एटार्फीन का विशेष रूप से वर्णन किया जाना



चित्र 27 : तीर के सिरे पर एटार्फीन का इंजेक्शन लगाकर खतरनाक जानवरों पर छोड़ा जाता है।

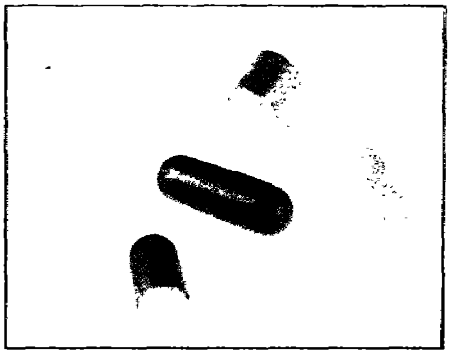
चाहिए। इस औषधि का जिक्र एक बार 'गिनीज बुक आफ वर्ल्ड रिकाड्र्स' में सबसे शक्तिशाली 'दर्दनाशक औषधि' के रूप में किया जा चुका है। इसकी दर्दनाशक क्षमता मार्फीन से 10,000 गुना अधिक है। मूल रूप से इसे 1960 में ओरिपैवीन से बनाया गया था जोकि पोस्त (अफीम) सत में नहीं पाया जाता। यह अन्य संबंधित पौधों पैपेवर ओरिएंटल व पैपेवर ब्रैक्टीएटम में पाया जाता है। चिड़ियाघरों में बड़े जानवरों को शांत करने में इसका उपयोग होता है। यह या तो अंतःशिरा इंजेक्शनों द्वारा दिया जाता है या फिर अगर जानवर खतरनाक हो तो सिरिंज को तीर के सिरे पर लगाकर धनुष से दिया जाता है। यह आमतौर पर पशुचिकित्सा में घोड़ों और दुधारू पशुओं के इलाज में काम आता है।

ऐसी ही एक अन्य औषधि मीथेडोन है जो द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मन लोगों द्वारा मार्फीन न मिलने पर बनाई गई थी। इसका नाम एडोल्फ हिटलर के नाम पर डोलोफीन रखा गया। इस प्रकार किसी व्यक्ति के नाम पर यह पहली और एकमात्र औषधि है। इसी नाम के बाद में इसका खास नाम 'डालीस' निकला। बाद के वर्षों में इसका उपयोग हेरोइन छोड़ देने पर होने वाली तकलीफों को कम करने में होने लगा। इसे इस दौरान दस दिनों तक बहुत ही कम मात्रा में विषहरण (डी-टाक्सीफिकेशन) नामक प्रक्रिया हेतु दिया जाता था। संयुक्त राज्य अमेरिका में हेरोइन के बाद मीथेडोन-कृत्रिम ओपिएट लत लगाने की सर्वाधिक उत्तरदायी हैं। पटरी बाजारों में इसकी आसान उपलब्धता से स्थिति और विकट हो गयी है। साधारणतया मीथेडोन का उपयोग लती लोगों के इलाज के दौरान अपनयन लक्षणों की तीव्रता को कम करने में हेरोइन के विकल्प के रूप में होता है।

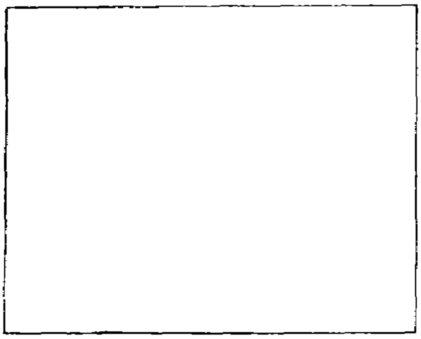




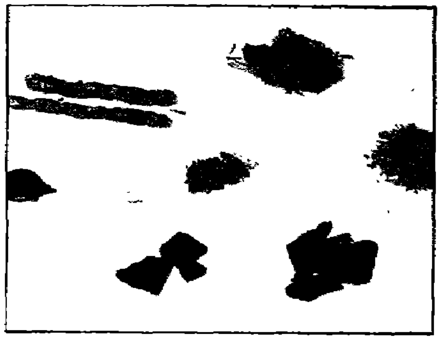
प्लेट-1 हेरोइन जो ब्राउन शुगर के नाम से विख्यात है।



प्लेट-2 बार्बिच्यूरेट्स



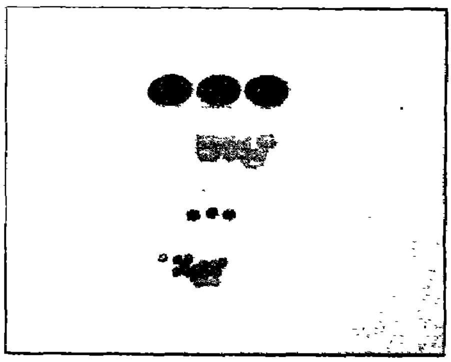
प्लेट-3 कोकीन



प्लेट-4 विभिन्न रूपों में कैनाबिस।



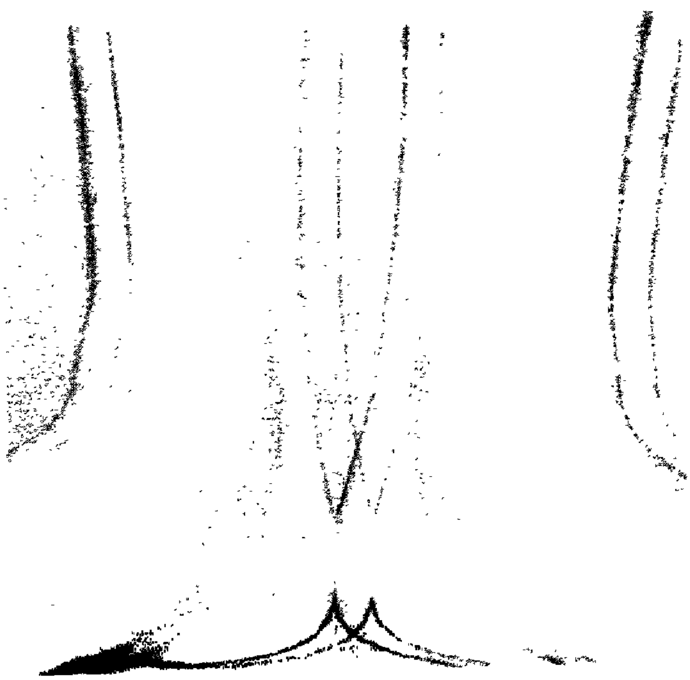
प्लेट-5 एम्फीटामीन



प्लेट-6 एल. एस. डी.



प्लेट-7 हेरोइन के लती की बांहों पर सुई के निशान।



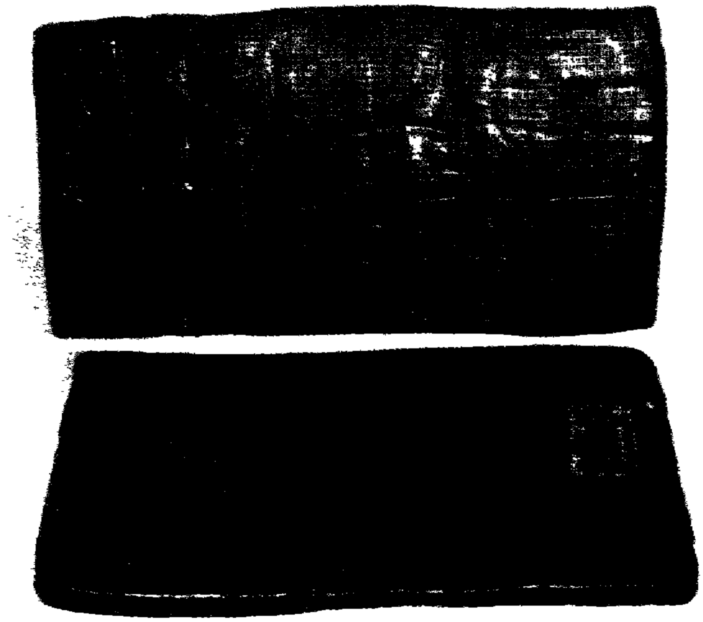
प्लेट-8 टांगों पर सुई के निशान।



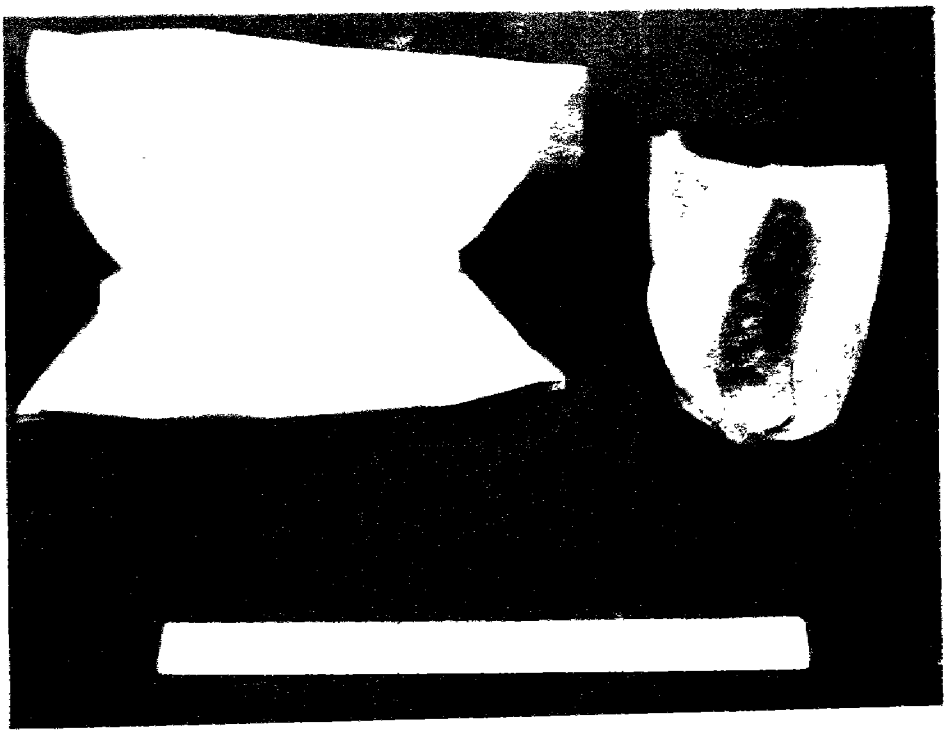
प्लेट-9 पाकिस्तान से आई हेरोइन कस्टम विभाग द्वारा जब्त।



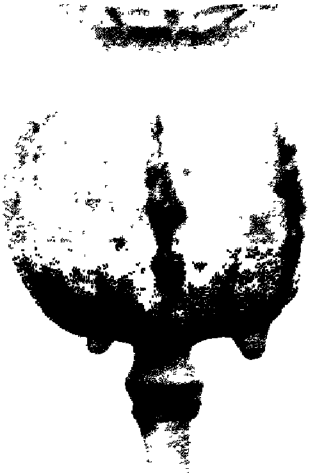
प्लेट-10 पश्चिमी अफ्रीका से पादप कैनाबिस की ईटें।



प्लेट-11 पाकिस्तान से कैनाबिस की राल।



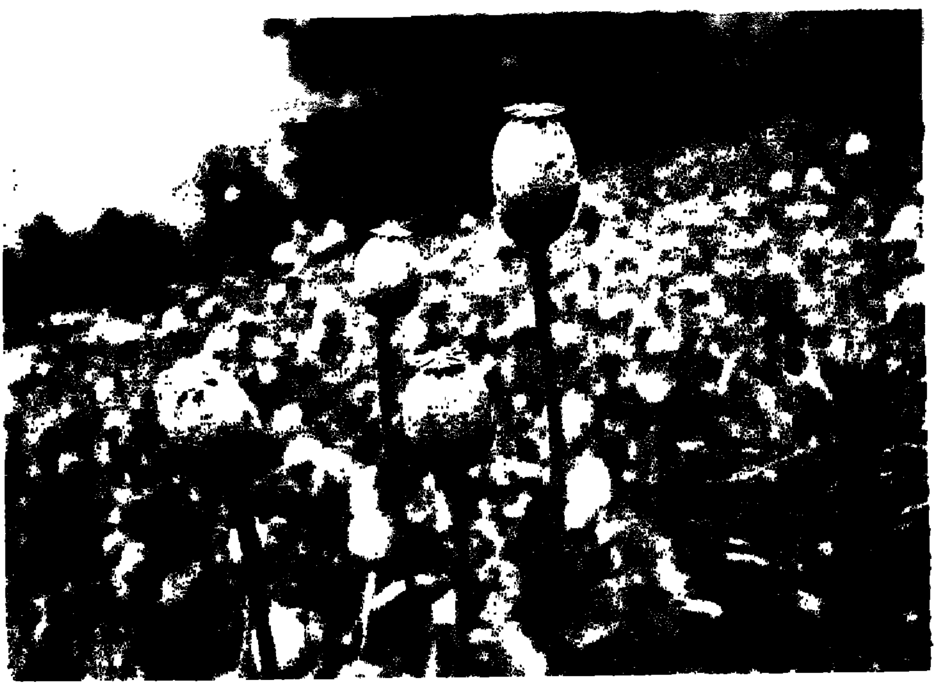
प्लेट-12 कोलम्बिया (दक्षिणी अमेरिका) से कोकीन।



प्लेट-13 पोस्त के फल से टपकती कच्ची अफीम जिससे हेरोइन बनती है।



प्लेट-14 पोस्त के फूलों की छटा।



प्लेट-15 उत्तर भारत के एक खेत में लहलहाती पोस्त की फसल।



...16 हेरोइन धूम्रपान का ठेठ ... तरीका।



...-17 मेन लाइनिंग—हेरोइन ... नसों में इंजेक्ट की जाती है।



प्लेट-18 नशों के बढ़ते दुरुपयोग से लोगों को अवगत करने के लिए कई देशों में डाक टिकट जारी किए गए। पोस्त का फल मादक औषधि के प्रतीक के रूप में कई टिकटों पर देखा जा सकता है।



प्लेट-19 प्लेट 18 की तरह यहां भी कई टिकटों पर नशों के दुरुपयोग को खोपड़ी के निशान से दर्शाया है—मौत और विनाश का प्रतीक।

4

कोकीन : देवताओं का उपहार

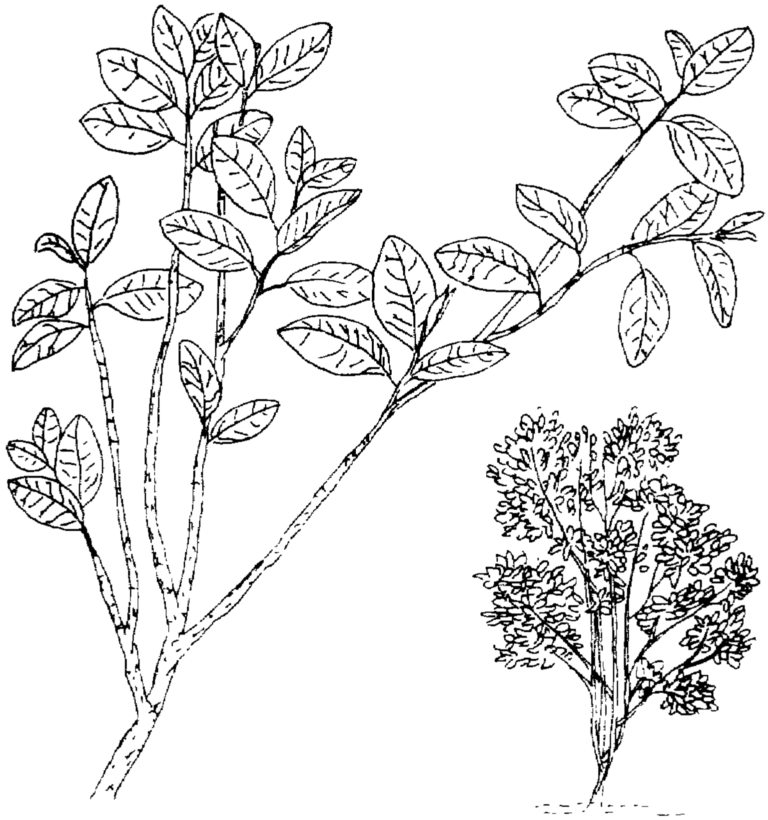
"कोकीन लत नहीं लगाती। मैं जानती हूं। मैं वर्षों से इसे ले रही हूं।" ये शब्द लोकप्रिय अमेरिकन अभिनेत्री तलुला बैंकहीड (1903-1968) के हैं। यह विरोधाभासपूर्ण वाक्य यह दर्शाने के लिए काफी है कि कोकीन किस तरह से मनुष्यों को अपना गुलाम बना लेती है।

कोकीन की लत की तुलना अजगर की कुंडली में फंसे मनुष्य से की गयी है जो धीरे-धीरे कसाव बढ़ने के साथ मौत की ओर बढ़ता है। इस कुंडली के एक बार शुरू होने के बाद पूरी तरह से टूटने के बहुत कम अवसर होते हैं।

आजकल खासकर अमेरिका में मनोरंजन के लिए कोकीन पहली पसंद बन गयी है। कोकीन का उपयोग समाज के शक्तिशाली और प्रभावशाली वर्गों में बढ़ गया है। आज अमेरिका में कोकीन मादक औषधि व्यापार में अवैध कमाई का सबसे बड़ा स्रोत बन गयी है।

कोका का पौधा

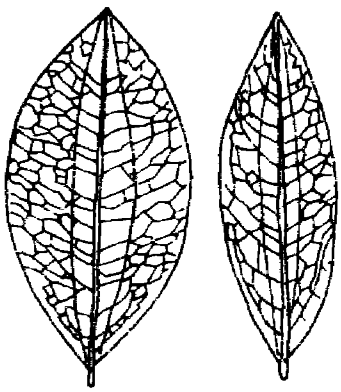
कोकीन (जो रसायनशास्त्र में बेंजाइलमिथ्राइल इक्गोनीन जैसे भयावह नाम से जानी जाती है) एक सफेद रवेदार अल्कलायड है जो कोका की झाड़ी (एरिथ्रो-जाइलोन कोका) की पत्तियों में पाया जाता है। कोका दक्षिण अमेरिका के देशों, विशेष रूप से पेरू, बोलीविया, ब्राजील, चिली और कोलम्बिया का मूल निवासी सदाबहार पौधा है और अपने से मिलते-जुलते नाम वाले कोको पौधे से बिल्कुल अलग है, जिससे चाकलेट बनाई जाती है। पौधे का वैज्ञानिक नाम यूनानी शब्द ऐरिथ्रोस (लाल) और जाईलोन (लकड़ी) से निकला है। पौधे की छाल का भीतरी भाग गोश्त के समान लाल रंग का होता है, जिस पर यह नाम आधारित है।



चित्र 28 : कोका का पौधा।

लकड़ी में भी लाल या पीला रंग छाया होता है। हालांकि कोका का प्राकृतिक आवास दक्षिण अमेरिका है, पर इसकी खेती जावा, वेस्ट इंडीज, आस्ट्रेलिया और भारत में सफलतापूर्वक हो रही है।

एरिथ्रोजाइलोन कोका बोलचाल की भाषा में 'बोलीवियाई कोका' के नाम से जाना जाता है। इसकी एक और प्रजाति भी है जो कि कोकीन से भरपूर है। यह है ऐरिथ्रोजाइलोन ट्रक्सीलेंस जो कि 'पेरूवियाई कोका' के नाम से भी विख्यात है। आमतौर पर बोलीवियाई पौधे में पेरूवियाई पौधे की अपेक्षा अधिक कोकीन होती है। कोका झाड़ीदार पौधा है जो कि 1.5 मीटर से 3 मीटर तक बढ़ता है। इसकी शाखाएं बहुत घनी होती हैं और पत्तियां शाखाओं के सिरे पर गुच्छे के रूप में होती हैं। हरी सपाट किनारी वाली पत्तियां दो से आठ सें. मी. तक लंबी होती हैं और चाय की पत्ती की तरह महकती हैं।



एरिथ्रोजाइलोन कोका — एरिथ्रोजाइलोन ट्रक्सीलेंस

चित्र 29 : कोका की पत्तियां।

पेरू और बोलीविया में कोका की खेती इतने लंबे समय से हो रही है कि इसे अब जंगली रूप में नहीं देखा जा सकता। पर्वतीय ढलानों और सीढ़ीदार खेतों में उष्णकटिबंधी या उप-उष्टकटिबंधी जलवायु में इसकी खेती होती है। पौधे को ह्यूमस और लौहयुक्त चिकनी मिट्टी की आवश्यकता होती है। दक्षिण अमेरिकी पर्वतीय क्षेत्रों की ऊंचाई समुद्र तल से 300 से 1800 मीटर तक है और यहां तापमान 68 से 86 फार्नहीट (20-30 से.) तक होता है। लगातार वर्षा और नमीदार, ऊंची, चारों ओर से ढकी घाटियों में उगती कोका झाड़ियों की औसत आयु 40 वर्ष है, पर 100 साल पुराने पौधे भी ज्ञात हैं।

कोका की खेती

पौध तैयार करने के लिए तीन साल या उससे अधिक बड़ी झाड़ियों के बीज इस्तेमाल होते हैं। बीजों को छोटे-छोटे गमलों में नमी व छायादार पौधशालाओं में अंकुरित किया जाता है। शुरू में चार-पांच दिन इन्हें पानी में डुबोकर रखते हैं जिससे वे फूल जायें। इसके बाद बीजों को ह्यूमस, रेत और मिट्टी के बराबर मिश्रण में बो दिया जाता है। शुरू में पौधों को धूप से बचाया जाता है और खूब पानी दिया जाता है। एक-डेढ़ हफ्ते बाद अंकुर निकलने शुरू हो जाते हैं। अंकुरित बीजों को दो माह के भीतर अलग-अलग कर लिया जाता है। 15 से 25 सें. मी. ऊंचाई के विरल पत्तियों वाले पौधों को अब खुले में, छोटे-छोटे गढ़ों में लगा दिया जाता है। हरेक गढ़े में एक से चार तक पौधे लगाए जाते हैं।

पौधों का अंतिम पुनर्रोपण सर्दियों के समय होता है। इसके बाद उन्हें अधिक देख-रेख की जरूरत नहीं होती। लगातार वर्षा व नमीदार क्षेत्रों में सिंचाई भी जरूरी नहीं है। इसके बाद एक वर्ष के बाद कोका की झाड़ियों से पहली फसल प्राप्त होती है। कोका की खेती उसकी पत्तियों के लिए होती है। कोका के फूल और फल छोटे, अस्पष्ट और मनुष्य के लिए अनुपयोगी होते हैं।

आमतौर से एक झाड़ी वर्ष में पत्तियों की चार फसलें तक देती है। पर समझदारी से खेती व सावधानीपूर्ण उर्वरक उपयोग से प्रतिवर्ष दस फसलें तक

ली जा सकती हैं। लाभदायक फसल के लिए जरूरी है कि 100 वर्ग मी. के खेत में कम से कम 720 पौधे हों और पौधे 30 या अधिक वर्षों तक चलें। कोका के 100 पौधे एक साल में करीब 7 किलोग्राम पत्तियां उत्पन्न करते हैं। कोका की एक औसत पत्ती में लगभग 12 प्रतिशत कोकीन होती हैं। पत्ती में कोकीन की मात्रा को कई कारक प्रभावित करते हैं। इनमें जलवायु, पौधे की आयु व स्वास्थ्य, मिट्टी की किस्म, उर्वरक, खेती का समय, पत्तियां इकट्ठा करना, सुखाना आदि शामिल हैं। एक आदमी एक दिन में करीब 30 किलोग्राम पत्तियां इकट्ठी कर सकता है।

पत्तियों को सुखाने की प्रक्रिया काफी महत्वपूर्ण है और लगभग दो दिन तक चलती है। दोनों दिन इन्हें कम से कम तीन घंटे तक सुखाना पड़ता है। प्रक्रिया के दौरान पत्तियों को उलटा-पलटा जाता है ताकि वे बराबर रूप से सूखें। अधिक तीव्रता से पत्तियां सूखने पर पत्तियां भंगुर जाती हैं जिससे उनकी व्यापारिक उपयोगिता नष्ट हो जाती है। सुखाने पर कोका पत्तियों का वजन 75 प्रतिशत से अधिक तक कम हो जाता है। सूखने पर पत्तियों को ठूंस-ठूंसकर 30 या 50 कि. ग्रा. के बंडलों में पैक कर लिया जाता है।

इन प्रक्रियाओं के बाद कोका पत्तियों से कई अवैध तरीकों से कोकीन निकाली जाती है। एक प्रक्रिया में कोका पत्तियां गंधक के अम्ल (सल्फ्यूरिक एसिड) के साथ संसाधित की जाती हैं। इससे कोका का लेप (पेस्ट) बनता है जिसमें लगभग 70 प्रतिशत कोकीन होती है। इस लेप को फिर नमक के अम्ल (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) से संसाधित किया जाता है जिससे कोकीन हाइड्रोक्लोराइड बनता है। इसी रूप में कोकीन पटरी बाजारों में आती है। पर यह काफी लंबी प्रक्रिया है और पूरी होने में दो हफ्ते का समय लेती है। एक दूसरे अलग तरीके में कोका पत्तियों को पहले पोटाशियम या सोडियम कार्बोनेट के क्षारीय विलयन से संसाधित करते हैं। इससे भी कोका पेस्ट बनता है जिसे पहली प्रक्रिया की तरह ही नमक के अम्ल के साथ मिलाते हैं। इस प्रक्रिया में कम समय लगता है, इसलिए अवैध कोकीन निर्माता इसे पसंद करते हैं।

युगों-युगों से

कोकीन उपयोग का लंबा व विविधतापूर्ण इतिहास रहा है। इक्वडोर में हाल के वर्षों में किये गये पुरातात्त्विक उत्खननों से पता चलता है कि मनुष्य का कोकीन से 5000 वर्ष पुराना संबंध है। इन्का सभ्यता की कब्रों में कोका पत्तियों की

छोटी-छोटी थैलियां मिली हैं। इन्का लोग रहस्यमय दक्षिण अमेरिका निवासी थे जो दक्षिण अमेरिका में पश्चिमी तट पर एंडीज पर्वतमालाओं की कुज्को घाटियों में रहते थे। यह क्षेत्र वर्तमान पेरू का हिस्सा है। ये उस क्षेत्र के सबसे दबंग लोग थे, पर सन् 1530 में फ्रांसिस्को पिजारो की छोटी-सी स्पेनिश सेना द्वारा जीत लिये गए थे।

इन्हीं इन्का लोगों के साथ कोकीन का अटूट संबंध रहा है। इन लोगों के लिए कोका एक दिव्य पौधा था। उनके लिए कोका पत्तियों का वही स्थान था जो आज अमेरिकी लोगों के लिए हैम्बर्गर या दक्षिण भारतीय लोगों के लिए डोसे का है। जैसे हम भारतीय पान चबाते हैं वैसे ही इन्का लोग आदतन कोका पत्तियां चूने के साथ चबाते थे। पर चबाने का असल तरीका जरा अलग था। करीब 100 ग्राम पत्तियों को गोलकर गेंद की शक्ल दी जाती, फिर कुछ सूखा चूना मिलाकर इसे मसूड़ों और गाल के बीच रख लिया जाता। वहां यह करीब पौना घंटे तक रहता जिसके बाद बची-खुची सीठी को थूक दिया जाता। एक व्यक्ति दिन भर में ऐसे करीब तीन से छह गोले खा सकता था। एक गोले में करीब 25 मि. ग्रा. शुद्ध कोकीन होती थी। कोका पत्तियों का स्वाद कड़वा होने से इन्हें चूने के साथ लेना पड़ता था। इसके अलावा चूना मुंह में पत्तियों का विखंडन भी रोकता और कोकीन अवशोषण को भी आसान करता। सन् 1530

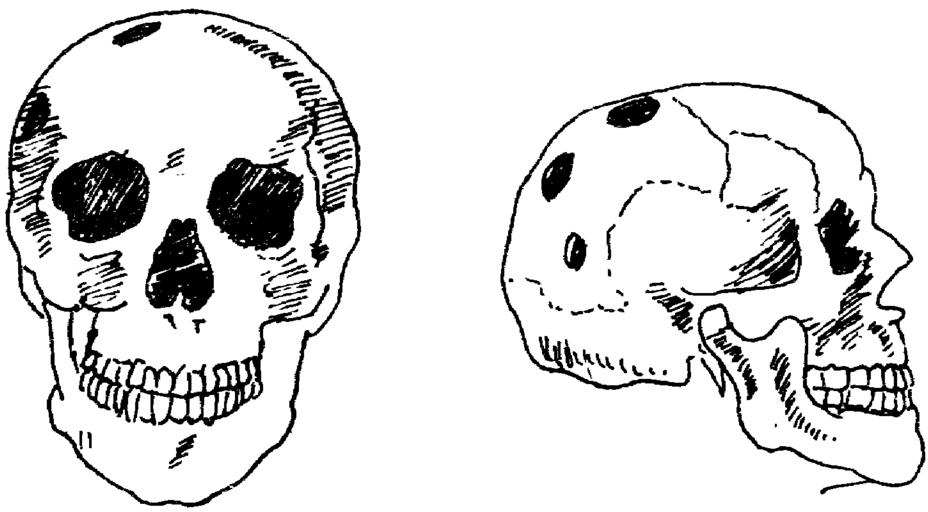


चित्र 30 : इन्का लोगों का कोका पत्तियां चबाने का तरीका उनकी लघु मूर्तियों व बर्तनों में परिलक्षित है।

में स्पेनिश आक्रमण के समय इन्का लोगों में कोका पत्तियां चबाने का बेहद प्रचलन था। इससे लंबी यात्राओं पर भूख व थकान में कमी आती और धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान ध्यान आत्मिक विषयों पर केंद्रित रहता। इन्का लोग कोका को देवताओं का उपहार मानते और इसका वैध उपयोग अभिजात्य वर्गों व पुजारियों तक सीमित था। खास अवसरों पर यह सैनिकों, मजदूरों और धावकों में भी बांटी जाती थी। बेमौके कोका पत्तियों को चबाना धर्म विरोधी समझा जाता था। एक इन्का आख्यान के अनुसार कोकीन सूर्यदेव के राजसी पुत्र मैको संपेक का उपहार थी। एक अन्य आख्यान के अनुसार देवता इंती ने कोका की रचना की ताकि इन्का लोगों को भूख व प्यास से मुक्ति मिल सके (इन्का लोग अपने को इंती व अन्य देवताओं का वंशज मानते थे)। यह भी विश्वास किया जाता है कि इन्का लोगों ने कोका के पवित्र उद्‌गम की कहानी इसलिए गढ़ी ताकि इस पर इन्हीं लोगों का अधिकार कायम रहे।

इन्का लोग अपने राजसी प्रतीकों में भी कोका का प्रयोग करते थे। उनकी रानी अपने को 'मामा कूका' (कोका की रानी) कहती थी। उस समय की देवी मूर्तियों को गाल में कोका पत्तियां भरे हुए दर्शाया जाता था।

कोका पत्तियां चबाने से जीभ, तालु और गाल सुन्न हो जाते थे। इन्का लोगों को इसके निश्चेतक के रूप में उपयोग का पता करते देर नहीं लगी और



चित्र 31 : इन्का लोग खोपड़ी की शल्यक्रिया में कोकीनयुक्त लार का उपयोग करते थे।

बारहवीं सदी में कोकीनयुक्त लार का उपयोग स्थानीय निश्चेतक के रूप में अपने प्रिय लोगों की ट्रेफीनेशन (कपाल छेदन) शल्यक्रिया में करने लगे थे। इसमें खोपड़ी में एक छोटा-सा छेद कर दिया जाता जिससे उनके विश्वास के अनुसार मस्तिष्क में फंसी 'बुरी आत्माएं' बाहर निकल जाती थीं। दरअसल कपालछेदन इसलिए कारगर रहता क्योंकि इससे जमा हुआ रक्त बाहर निकल जाता था।

स्पैनिश विजता अपने साथ कोका को स्पेन ले आये थे और सोलहवीं सदी के दौरान कोकीन एक कामोत्तेजक के रूप में विख्यात हो गयी और अभी भी इस रूप में विख्यात है। आज वेश्यालयों में जाने वाले 'ग्राहक' पटरी पर पान वालों से कोकीन से चुपड़े हुए पान खरीद सकते हैं।

खोज

हालांकि अन्वेषकों व यात्रियों ने कोका पत्तियों को यूरोप पहले से पहुंचा दिया था, पर उन्नीसवीं सदी के दौरान ही इसका सक्रिय संघटक कोकीन अलग किया गया था। इसे सन् 1855 में जर्मन रसायनज्ञ फ्रेडरिक जीडेक ने सबसे पहले अलग किया था। सन् 1859 में गोटिनजन विश्वविद्यालय के अल्बर्ट नीएमैन ने इसके रासायनिक रूप की पहचान की। यह नीएमैन ही था, जिसने उसके कड़वे स्वाद (जैसे कि अल्कलायड होते हैं) का पता लगाया और यह भी कि कुछ समय बाद यह जीभ को सुन्न कर देती है। सन् 1880 में रूसी कुलीन पुरुष व वुर्जुबर्ग विश्वविद्यालय के चिकित्सक वासिली वान एंरेप ने यह गौर किया कि त्वचा के नीचे कोकीन का इंजेक्शन देने से उसे पिन चुभने का पता नहीं चलता। इसी दौरान इसके अन्य औषधियों से, जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (सेंट्रल नर्व्स सिस्टम) को मंद करती हैं, उलट प्रभाव के कारण इसके गुणों का अमेरिकी वैज्ञानिकों द्वारा गहन अध्ययन जारी था। वे इस बात की खोज कर रहे थे कि क्या इसका मार्फीन व अल्कोहल की लत का इलाज करने में उपयोग हो सकता है। प्रसिद्ध आस्ट्रियाई चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषक विज्ञान के संस्थापक सिग्मंड फ्रायड (1856-1939) का पक्का यकीन था कि कोकीन से मार्फीन लत का इलाज हो सकता है।

फ्रायड ने अपने होनहार कायाविज्ञानी एवं भौतिकीविज्ञानी मित्र अर्न्स्ट वान फ्लीश्चल (1846-1891) को भी कोकीन लेने की सलाह दी जिसे मार्फीन की लत थी। पर सच्चाई यह है कि कोकीन किसी भी तरह से मार्फीन की लत का इलाज नहीं करती है। उलटे इससे रोगी को कोकीन की लत और लग जाती है। फ्रायड खुद भी कोकीन का लती बन गया था, पर बार-बार कोकीन की



चित्र 32 : सिग्मंड फ्रायड का मानना था कि कोकीन से मार्फीन की लत का इलाज हो सकता है।

क्षमता से आगाह करने के बावजूद वह अपने को गलत नहीं मानता था। उसने खुद अपने अवसाद को दूर करने के लिए कोकीन का उपयोग किया। वह कोकीन को रामबाण औषधि मानता था। जुलाई, 1884 में उसने कोकीन की सिफारिश पाचन संबंधी गड़बड़ियों के लिए उद्दीपक के रूप में कैचेक्सिया (शारीरिक दुर्बलता व पतलापन), अल्कोहल (मार्फीन के अलावा) की लत, दमा के इलाज, कामोत्तेज और स्थानिक निश्चेतक के रूप में की थी। परंतु आधुनिक चिकित्सा में कोकीन का स्थानिक निश्चेतक के रूप में उपयोग ही कायम रह पाया है। फ्रायड के समकालीन वैज्ञानिक अर्लेनमेयर ने कोकीन को अफीम व अल्कोहल के बाद मानव जाति के लिए तीसरा अभिशाप बताया था। आज हम सभी अर्लेनमेयर के विचारों से सहमत हैं। उस समय फ्रायड ने उसका मजाक उड़ाया था। जब अर्लेनमेयर ने अपने शोधपत्र में कोकीन को अनुपयोगी औषधि बताया तो फ्रायड ने उसका प्रतिकार किया कि अर्लेनमेयर ने अपने प्रयोगों में खिलाने की बजाय कोकीन को त्वचा के नीचे इंजेक्ट किया है। यद्यपि फ्रायड कोकीन के दुष्प्रभावों से वाकिफ था, फिर भी उसने इसकी खूबियों की मृत्युपर्यंत जोरदार वकालत की।

अंग्रेजी में जासूसी कहानियों का लोकप्रिय लेखक सर आर्थर कानन डायल (1859-1930) कोकीन से अंतरंग रूप से जुड़ा एक और प्रसिद्ध व्यक्ति था। न सिर्फ वह खुद कोकीन का लती था बल्कि उसने अपने चरित्र, कहानियों के प्रसिद्ध जासूस शरलाक होम्स को भी कोकीन के लती की तरह ही पेश किया। डायल की अधिकांश कथाओं में शरलाक होम्स को खाली समय में कोकीन का इंजेक्शन लेते हुए दिखाया गया है। प्रसिद्ध पुस्तक 'द साइन आफ द फोर' में



चित्र 33 : कथाओं के नायक भी कोकीन के लती हुए हैं। कल्पित गुप्तचर, शरलाक होम्स उनमें से एक था।

होम्स कहता है कि जब उसके सामने कोई गुत्थी होती है तभी उसका दिमाग सही काम करता है, अन्यथा उसे कोकीन जैसे कृत्रिम उद्दीपक की सख्त जरूरत होती है।

कोकीन सैनिकों पर भी आजमाई गयी थी। सन् 1883 में जर्मन सेना के चिकित्सक ऐश्केनब्रैंट ने बैवेरियन सैनिकों को थकान दूर करने के लिए कोकीन दी थी। उन्नीसवीं सदी के कोर्सिकान रसायनज्ञ ऐंजेलो मैरियानी ने बोर्डोक्स (या बोर्दो) की अंगूरी शराब में कोका पत्तियां मिलाकर एक पेय तैयार किया जिसे उसने नाम दिया—विन मैरियानी या मैरियानी वाइन। मैरियानी वाइन का नशा लोगों पर जादू कर गया और रातोंरात एंजेलो कोका वाइन का अंतर्राष्ट्रीय प्रवर्तक बन गया। उन्नीसवीं सदी में कोकीन के प्रति लोगों का पागलपन इस हद तक बढ़ा कि राजा-रानी, राजकुमार, भद्रजन, वैज्ञानिक, लेखक, अभिनेता, अभिनेत्री और अनगिनत सामान्यजन इसके संरक्षकों व शुभचिंतकों के साथ इसके प्रचार

में जुट गये।

अमेरिका में भी कोकीन का इतिहास विविधतापूर्ण रहा है। अमेरिकी शल्यचिकित्सक विलियम स्टीवर्ड हाल्स्टीड ने (1852-1922) जो कि 'आधुनिक शल्यचिकित्सा का जनक' के रूप में विख्यात है, सन् 1884 में बताया कि शल्य-क्रिया के लिए कोकीन का एक निश्चेतक के रूप में उपयोग किया जा सकता है। उसने ही शरीर के अंगों को सुन्न करने के लिए कोकीन के इंजेक्शन देने की शुरुआत की थी। पर इस प्रक्रिया के दौरान वह खुद इसका लती बन गया। इस घातक लत से छुटकारे के लिए उसे कड़ा संघर्ष करना पड़ा।

एक समय ऐसा भी था जब कोकीन को क्षयरोग का संभावित इलाज समझा जाता था। स्काटिश लेखक, राबर्ट लुइस स्टीवेंसन (1850-1894) अपने 44 वर्षों के जीवन काल में अधिकतर समय क्षयरोग से पीड़ित रहे। 1885 में जब आरोग्यशाला में उनका कोकीन से इलाज चल रहा था तो उन्होंने मात्र तीन दिनों में ही उपन्यास 'डा. जेकिल एंड मि. हाइड' लिख डाला। सन् 1886 में एटलांटा के जान स्टाइथ पेंबरटन ने कोका पत्तियों की कोकीन और अफ्रीकी कोला बीज की कैफीन से तैयार एक अक्सीर को 'कोका-कोला' के व्यापारिक नाम से बेचना शुरू किया। पेंबरटन का यह नुस्खा आसा कैंडलर ने खरीद लिया और इसे एक वातित (एयरेटेड) पेय में बदल दिया। इस प्रकार कोका-कोला कंपनी का जन्म हुआ। सिर दर्द, उदासी व हिस्टीरिया में कोका-कोला पीने की सलाह दी जाने लगी। सन् 1906 में कोका-कोला कंपनी अपने पेय में कोकीन रहित कोका पत्तियां प्रयोग करने को राजी हो गई। कोकीन मुक्त होकर भी कोका-कोला लोकप्रिय वातित पेय बना रहा। आज भी कोका-कोला कंपनी प्रतिवर्ष पेरू से 1200 टन कोका पत्तियां न्यूजर्सी आयात करती है। यहां उनकी कोकीन चिकित्सीय उपयोग के लिए निकाली जाती है। कोकीन मुक्त पत्तियों से जो आसव तैयार होता है, उसी के बल पर कोका-कोला 150 से अधिक देशों में लोकप्रिय है।

अमेरिका में कोकीन लत की बढ़ती विकरालता को रोकने के लिए सन् 1914 में इस पर 'हैरीसन नारकोटिक एक्ट' के तहत भी पाबंदी लगा दी गयी। इससे अफीम, मार्फीन और हेरोइन के प्रयोग पर पाबंदी लग गयी। किंतु कोकीन का दुरुपयोग चोरी-छिपे चलता रहा। सन् 1920 में चेलसी आर्ट्स बाल में इससे एक अभिनेता की मौत से कोकीन एक बार फिर अखबारों की सुर्खियों में आ गयी।

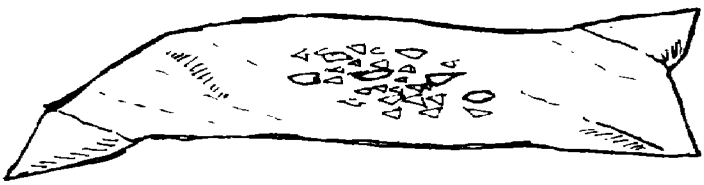
प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच शांति के काल में कोकीन लत में कोई खास बढ़ोतरी नहीं हुई। पर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विशेषकर 1960 के दशक में जब अमेरिकी अपने उन्मुक्त समाज का ढोल पीट रहे थे, कोकीन ने गंभीर चुनौती पेश की (समस्या को शुरू में ही निर्मूल करने के प्रयासों के बावजूद) और जब कोका की खेती पर रोक लगाकर समस्या को जड़ से ही खत्म करने के प्रयास जारी थे, कोकीन के आदी लोगों की संख्या और इसकी मांग बढ़ती ही गयी। आज अकेले अमेरिका में ही कोकीन के माठ लाख से अधिक लती अथवा व्यसनी हैं। सन् 1987 में उस देश में कोकीन 1600 मौतों के लिए उत्तरदायी रही।

आज कोकीन एक प्रमुख व्यापार बन गयी है। आज अकेले दक्षिण अमेरिका में चार लाख एकड़ से अधिक भूमि पर कोका की अवैध खेती होती है। 2.4 लाख एकड़ (60%) भूमि के साथ पेरू पहले नंबर पर है। इसके बाद बोलीविया का स्थान है जहां करीब 90.000 एकड़ (यानी कुल भूमि का 22½%) में कोका के खेत हैं। कोलंबिया में भी 60,000 एकड़ (15 प्रतिशत) पर इसकी खेती होती है। पड़ोसी देश ब्राजील, इक्वेडोर, वेनेजुएला, अर्जेंटीना आदि में कोका के सीमित क्षेत्र हैं। इस क्षेत्र में प्रतिवर्ष 10% की वार्षिक वृद्धि से स्थिति और गंभीर हो रही है।

पर सभी प्रकार की कोका की खेती अवैध नहीं है। कुछ कानूनी रूप से चबाने के लिए व चिकित्सकीय उद्देश्यों के लिए भी की जाती है। पेरू में कोका की सारी पत्तियां 'इनेकौ' नामक सरकारी संस्था को ही बेची जा सकती हैं। पर अधिकांश पत्तियां पेरू, बोलीविया व अन्य देशों से चोरी-छिपे कोलंबिया पहुंचती हैं। यहां पर बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं में इनसे कोकीन निकाली जाती है जो कि फिर तस्करी द्वारा अमेरिका व दूसरे देशों में पहुंचाई जाती है।

अवैध व्यापार

गलियों में अवैध कोकीन तीन रूपों में मिलती है। शुद्ध कोकीन को अमोनिया या खाने के सोडे और पानी में मिलाने से छोटे-छोटे कठोर रवे बनते हैं जिन्हें 'क्रैक' नाम से जाना जाता है। 'क्रैक' कुछ-कुछ सफेद चिप्स जैसा दिखता है और कभी-कभी 'राक्स' नाम से जाना जाता है। आमतौर पर इसका धूम्रपान होता है। एकदम शुद्ध कोकीन को पीसकर फ्लेक (कण) रूप दिया जाता है जो उसके 'उपभोक्ताओं' द्वारा बेहद स्वादिष्ट मानी जाती है। तीसरे



चित्र 34 : 'क्रैक' काफी कुछ सफेद चिप्स जैसा दिखता है।

रूप में 'राक' या 'फ्लेक' कोकीन अन्य पदार्थों जैसे लैक्टोज (दुग्ध शर्करा) या प्रोकेन (कोकीन से मिलता-जुलता कृत्रिम रसायन) में मिलाकर विरल कर ली जाती है।

हेरोइन के समान कोकीन भी गुप्त प्रयोगशालाओं से अंतिम उपभोक्ता (लती) तक पहुंचते-पहुंचते काफी पतली हो जाती है। विरल होने की यह प्रक्रिया या कोकीन 'कटिंग', औषधि अपराध जगत में 'स्टेपिंग आन' (कभी-कभी स्टेपिंग आन कोक) के नाम से जानी जाती है। अधिकांश तस्कर यह भलीभांति जानते हैं कि कोकीन शक्ति (या क्षमता) शीघ्र नष्ट हो जाती है। नमी, गर्मी, हवा और धूप कोकीन की क्षमता घटा देती हैं। यहां तक कि कटिंग या तनुकारक भी कोकीन को नष्ट ही करते हैं। इसलिए तस्कर जल्दी से जल्दी मिलावटी कोकीन को बेच देना चाहते हैं। हेरोइन और कोकीन के बीच एक और अंतर यह है कि जहां हेरोइन को 5 प्रतिशत सांद्रता तक विरल किया जाता है वहीं कोकीन सिर्फ 20 से 40 प्रतिशत तक ही पतली की जाती है। 'कटिंग' या तनुकारक कोई भी घुलनशील पाउडर हो सकते हैं जो शरीर को हानि न पहुंचाता हो जैसे कि बैकिंग सोडा, बूरा (पिसी हुई चीनी), दुग्ध चूर्ण, स्टार्च आदि। चूंकि शुद्ध कोकीन सफेद रवेदार पाउडर है, अतः ये कारक अच्छे तनुकारक साबित होते हैं। दूसरे तनुकारक पदार्थों में लैक्टोज, डेक्स्ट्रोज, इप्सम लवण (मैग्नीशियम सल्फेट) कुनीन या पिसे हुए विटामिन शामिल हैं। कभी-कभी एक खतरनाक मादक औषधि मेथएम्फीटासीन, जो 'स्पीड' नाम से ज्ञात है, भी मिलाई जाती है।

शुद्धता की पहचान

अधिकांश तस्करों को उनके माल में कोकीन की प्रतिशत मात्रा बताई जाती है। इसके आधार पर वे इसमें आगे कटौती करते हैं। पर यह सूचना विश्वसनीय

नहीं हो सकती है। अतः कई कोकीन तस्कर अपने तरीकों से शुद्धता की पहचान करना बेहतर समझते हैं। तस्करों की शैक्षिक योग्यता को देखते हुए उनके द्वारा वर्षों में विकसित शुद्धता की पहचान के जटिल तरीकों व परीक्षणों की अचूकता से सचमुच हैरानी होती है। भूमिगत जगत द्वारा कोकीन परीक्षण के किट भी बनाए जाते हैं (ऐसे कई किट वैध रूप से कानून लागू करने के उद्देश्यों से भी बनाए जाते हैं)। कोकीन की पहचान के लिए कोबाल्ट थीयोसायनेट नामक रसायन का उपयोग होता है। इसके साथ कोकीन (या संबंधित रसायन जैसे प्रोकेन, लिग्नोकेन या टेट्राकेन) गाढ़े नीले रंग का बारीक अवक्षेप (प्रेसिपिटेट) बनाएगा। इस परीक्षण से यह बताया जा सकता है कि दिया गया पाउडर कोकीन है भी या नहीं। हम देख चुके हैं कि कोकीन में प्रोकेन मिलाई जा सकती है और दोनों ही थीयोसायनेट के साथ नीला अवक्षेप बनाते हैं। ऐसे में शुद्ध कोकीन की जांच अवक्षेप में स्टैनस क्लोराइड मिलाकर की जाती है। इससे कोकीन के अवक्षेप को छोड़कर बाकी सभी अवक्षेप घुल जाएंगे।

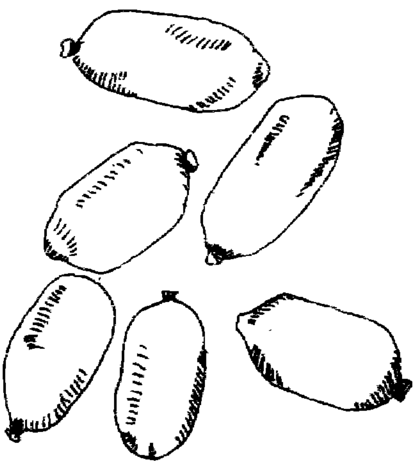
कोकीन की जांच का एक सरल परीक्षण जल परीक्षण है। नमूने को एक गिलास जल में घोला जाता है। कोकीन तुरंत ही जल में घुल जाती है, पर बचे हुए 'कण' धीरे-धीरे घुलते हैं। विरंजक (ब्लीचिंग, सोडियम हाइपोक्लोराइट) के घोल में भी शुद्ध कोकीन पूरी घुल जाएगी, पर प्रोकेन केसरिया लाल रंग का हो जाएगा और अन्य 'कट' तलछट के रूप में नीचे बैठ जाएंगे। यह विरंजक परीक्षण (ब्लीच टैस्ट) कहा जाता है।

अगर कोकीन चूर्ण को अलयुमीनियम की पन्नी पर रखकर नीचे से लौ दिखाई जाए तो वह बिना कोई कालिख छोड़े पूरी जल जाएगी। चीनी का 'कट' जलकर काला या भूरा हो जाएगा, इसलिए अधिक 'कट' का अर्थ है अधिक कालिख ! मेथएम्फीटामीन या 'स्पीड' जलने पर धड़ाके के साथ फूल जाएगा। नमक जलता ही नहीं और गंदगी के रूप में जमा रहेगा। प्रोकेन भी कोकीन की भांति बिना कालिख के जलती है पर जलने से पूर्व इसमें बुलबुले उठने लगते हैं, इस प्रकार इसे भी पहचाना जा सकता है।

बहुत से अनुभवी तस्कर सिर्फ नमूना देखकर ही उसकी शुद्धता बता देते हैं। शुद्ध कोकीन में रवे (क्रिस्टल) चमकदार व लगभग पारदर्शक होते हैं। यह रवेदार चमक कोकीन को पीसने पर भी कायम रहती है। पर मिलावट करने पर यह स्फटिकीय चमक कम हो जाती है। कुछ तस्कर नमूने की शुद्धता इसे चखकर बताते हैं। कोकीन का स्वाद कड़वा होता है और मिलावट करने पर इसमें

बदलाव आ जाता है। लैक्टोज़ (दुग्ध शर्करा) 'कट' इसे मीठा कर देगा। प्रोकेन भी कड़वा होता है पर यह मसूड़ों व जीभ को सुन्न कर देगा जो कोकीन द्वारा उत्पन्न सुन्नता से अधिक समय तक महसूस होती है। नमक का स्वाद बाद में पता चलता है और इप्सम लवण कुछ खट्टा व छूने पर रेत जैसा लगता है। पर अधिकांश दलाल इसकी शुद्धता इसे नाक में चढ़ाकर परखते हैं। अगर नाक में जलन हो और आंखों में पानी आ जाए, तो 'स्पीड' पर शक जाता है। चीनी या नमक 'कट' से नाक तेजी से बहने लगेगी और यह बहाव गले की ओर (पोस्ट-नैसन ड्रिप) जाता लगेगा। सूंघने पर अधिक सुन्नता महसूस करना प्रोकेन की मिलावट का संकेत है।

एक बार कोकीन की शुद्धता परखने के बाद तस्कर 'स्टेपिंग आन' की तैयारी करता है। अधिकांश दलाल कोकीन की कुछ मात्रा का दुबारा परीक्षण करेंगे। चूंकि 'कट' की भी प्रवृत्ति कोकीन के गुणों को नष्ट करने की होती है, दलाल लोग अपने 'माल' को 'कटिंग' के बाद तुरंत बेचना चाहते हैं। अगर कभी 'माल' रखना भी पड़ जाए तो वे इसे फ्रिज की ठंडक में या अच्छी तरह से बंद काली बोतलों में रखते हैं ताकि ताप, हवा या धूप से यह नष्ट न हो।



चित्र 35 : रबड़ के गुब्बारों में कोकीन।

तैयार कोकीन को रबड़ के गुब्बारों में भी पैक करने का अनूठा चलन है। एक रबड़ का गुब्बारा 15 से 90 ग्राम पाउडर रख सकता है। कभी-कभी इसे बड़ी प्लास्टिक की थैलियों में भी पैक किया जाता है जिसमें करीब 175 ग्राम पाउडर तक समा सकता है।

कोकीन के अवैध व्यापार में शरीर के अंदर पैकिंग (बाडी पैकिंग) भी देखने में आई है। कस्टम अधिकारियों को चकमा देने के लिए कोकीन के तस्करों द्वारा ईजाद यह एक विलक्षण तरीका है। वे कोकीन से भरे गुब्बारे निगल जाते हैं। ऐसे तस्करों को बाडी पैकर्स कहते हैं। मंजिल पर पहुंच ये अपना पेट खाली कर गुब्बारे से

कोकीन निकाल लेते हैं। परंतु कई बार पेट के क्षारीय वातावरण में ये गुब्बारे कट जाते हैं और 'बाडी पैकर्स' की तुरंत मौत हो जाती है। यह 'बाडी पैकर्स' सिंड्रोम के नाम से जाना जाता है। कोकीन की प्राणघातक मात्रा 1200 मि. ग्रा. (1.2 ग्रा.) है जबकि गुब्बारों में 90,000 मि. ग्रा. (90 ग्रा.) पाउडर तक हो सकता है जिसमें मिलावट के अनुसार कोकीन की मात्रा घट सकती है। संदिग्ध तस्कर को पूछताछ के लिए देर तक रोके रहने से ऐसी मौतें हो सकती हैं। शाम को संदिग्ध व्यक्ति सही सलामत दिखता है पर सवेरा होने पर मरा पाया जाता है। बाडी पैकर्स में कोकीन भरे गुब्बारों को एक्स किरणों से देखा जा सकता है।

कोकीन के चिकित्सकीय उपयोग

सन् 1870 में एक वैज्ञानिक एक्स्टीन ने आंखों पर कोकीन के निश्चेतक प्रभावों को जग जाहिर किया था। उन्होंने यह राय दी थी कि आंख के जटिल व नाजुक आपरेशन कोकीन का इंजेक्शन देकर आसानी से किए जा सकते हैं। मरीज को कोई पीड़ा भी महसूस नहीं होगी। स्थानिक दर्दनाशक के रूप में इसका उपयोग सर्वप्रथम विएना के कार्ल कोलर ने सन् 1884 में किया था। कोकीन के प्रभाव से रक्त वाहिकाएं भी सिकुड़ जाती थीं जिससे शल्य-क्रिया बिना रक्तस्राव के हो सकती थी। पर शल्य-चिकित्सकों की यह खुशी अल्पकालिक थी, क्योंकि उन्होंने पाया कि रक्त वाहिकाएं सिकुड़ने से आंख खराब भी हो जाती थी। अतः आंख की शल्यक्रिया में कोकीन का उपयोग बंद कर देना पड़ा।

कोकीन से मिलती-जुलती कई कृत्रिम औषधियां (प्रोकेन लिग्नोकेन) बाजार में उपलब्ध हैं जिनका स्थानिक निश्चेतक प्रभाव काफी अच्छा है और जो कोकीन जैसी विषैली भी नहीं है। पर अभी भी कोकीन कुछ विशेष रोगों में प्रयोग की जाती है। यह मुख्यतया कान, नाक, गला विशेषज्ञों, प्लास्टिक सर्जनों और आपातकालीन चिकित्सकों द्वारा उपयोग की जाती है। विशेषज्ञ इसे नाक की शल्य चिकित्सा के समय देते हैं ताकि रक्त स्राव न हो। नाक की बनावट बदलते समय (राइनोप्लास्टी आपरेशन) भी इसका उपयोग होता है। आपातकाल के समय कभी-कभी चिकित्सकों को नाक से श्वासनली तक वातनलिका लगानी पड़ती है ताकि आसानी से सांस आ-जा सके। ऐसे वक्त में कोकीन सहायक होती है क्योंकि यह नाक से रक्तस्राव को रोकती है।

कोकीन का उपयोग श्वास नली के आंतरिक अवलोकन के लिए उसमें ब्रोंकोस्कोप (नली जैसा उपकरण जिससे श्वास नली के अंदर नजर आता है)

डालते समय भी होता है। यूरोप में कोकीन से ब्राम्पटन मिश्रण तैयार होता है जो कैंसर के रोगियों में दर्द कम करने के काम आता है। एक समय कोकीन एक अन्य औषधि एपिनेफ्रिन में मिलाकर स्थानिक निश्चेतक के रूप में प्रयुक्त होती थी। इस मिश्रण को कोकीन 'मड' के नाम से जाना जाता था, पर यह खतरनाक थी। अतः चिकित्सकों ने इसका उपयोग बंद कर दिया। कोकीन के उत्तेजक, कामोत्तेजक और दमा के इलाज में उपयोग भी बंद कर दिए गए हैं।

कोकीन की क्रियाविधि

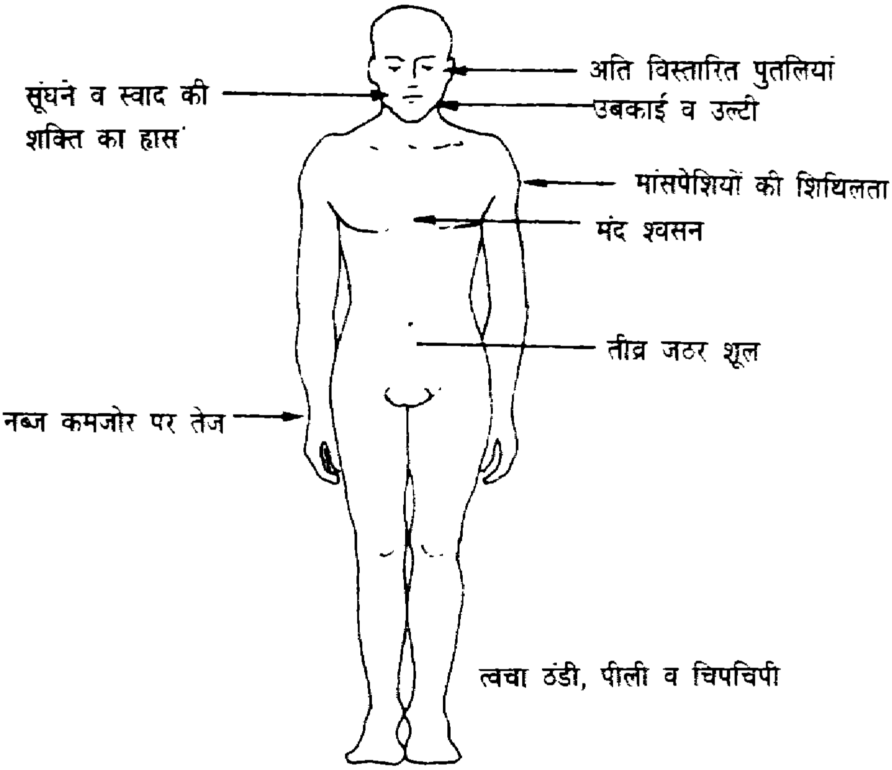
कोकीन किस प्रकार अपना प्रभाव डालती है यह अभी बहुत स्पष्ट नहीं हुआ है। पर कुछ रोचक अनुमान अवश्य लगाए गए हैं जो वैज्ञानिक अनुभवों पर आधारित हैं। हमारे स्नायुतंत्र (नर्व्स सिस्टम) में डोपामीन नामक एक रसायन पाया जाता है। यह रसायनों के स्नायु संचारी (न्यूरोट्रांसमिटर्स) वर्ग से संबंधित है। ये रसायन स्नायु कोशिका के आर-पार संदेश लाते-ले जाते है। एक तरह से ये संदेशवाहक कबूतरों जैसे हैं। अगर हमारे स्नायुतंत्र में ये रसायन न हों तो संदेश (संकेत) पहली स्नायु कोशिका पर ही नष्ट हो जाता और शरीर के आर-पार न पहुंचता। दूसरी ओर यदि इनकी संख्या बढ़ जाए तो असंख्य अनुपयोगी संदेश भी प्रेषित होते और स्नायुतंत्र में तबाही मच जाती। हमारे शरीर में डोपामीन की मात्रा को नियंत्रण में रखने के लिए आंतरिक प्रणाली होती है जिससे न तो इसकी मात्रा बढ़ सकती है और न ही घट सकती है, बल्कि एक उचित स्तर पर स्थिर रहती है। कोकीन इस प्रणाली को इस प्रकार भंग कर देती है कि स्नायुतंत्र में डोपामीन की मात्रा बढ़ने लगती है। यह माना जाता है कि डोपामीन के बढ़ने से ही कोकीन के लक्षण प्रकट होते हैं।

पर यह सिद्धांत सभी कुछ नहीं समझाता है। कई प्रश्न अब भी अनुत्तरित हैं। कुछ अन्य औषधियां भी हमारे स्नायुतंत्र में डोपामीन के स्तर में वृद्धि करती हैं। पर वे कोकीन की भांति सुखभ्रांति (यूफोरिया) उत्पन्न नहीं करती हैं।

स्पष्टतया कोकीन का प्रभाव डालने का तरीका या क्रियाविधि अब तक वैज्ञानिकों को चकमा देती रही है। पर इस विषय में अनुसंधान जारी हैं और निकट भविष्य में इस पहेली के हल होने की संभावना है।

शरीर पर प्रभाव

कोकीन आरंभ में केंद्रीय स्नायुतंत्र को उत्तेजित कर मंद कर देती है। यह शृंखला अभिक्रिया (चेतन रीएक्शन) के रूप में जानी जाती है। प्रारंभिक उत्तेजना के चरण



चित्र 36 : कोकीन—चिह्न और लक्षण।

में उत्साह, भय, सिरदर्द, उबकाई, वमन, चेहरे, उंगलियों, भुजाओं और जांघों की मांसपेशियों में खिंचाव का अनुभव होता है। नाड़ी (नब्ज) की गति, तापमान और रक्तचाप में वृद्धि होती है (कोकीन ज्वर), श्वास की दर और गहराई बढ़ जाती है। मार्फीन के प्रभाव के विपरीत कोकीन के प्रभाव से आंख की पुतलियां फैल जाती हैं। उद्दीपन की विकसित अवस्था में शरीर की ऐंठन, व सांस लेने में कठिनाई होती है। इसके बाद मंदकारक या शामक चरण शुरू होता है जिसमें मांसपेशियों की निष्क्रियता, बेहोशी और यहां तक कि मृत्यु भी हो सकती है।

इन सब भयावह लक्षणों के बावजूद कोकीन का सेवन किया जाता है। शायद इसलिए कि शुरुआत में इससे सुखभरी सनसनी होती है जिसे कई लोग लैंगिक सहवास की चरमोत्तेजना जैसा बताते हैं। इस प्रकार कोकीन काफी कुछ यूनानी पुराणों की सुंदर जलपरियों जैसा बर्ताव करती है, जो लोगों को लुभाकर मौत के मुंह में धकेल देती है।

कभी-कभी कोकीन का लती प्रचंड रूप से उग्र हो उठता है, जिसे कोकीन की छलांग (कोकीन लीप्स) कहते हैं। कभी-कभी कोकीन का चिरकालिक लती व्यक्ति अपनी त्वचा के नीचे कीड़े रेंगने जैसा महसूस करता है और वह लगातार त्वचा पर खुजली करता रहता है जिससे वहां गहरे घाव हो जाते हैं। इन काल्पनिक कीड़ों को 'कोकीन कीट' कहा जाता है। इन लक्षणों को मैगनन लक्षण कहा जाता है। यह लक्षण सर्वप्रथम पेरिस के मनोचिकित्सक बैलंटिन जैक्स जोफेस मैगनान (जन्म 1835) ने परिलक्षित किया था। उन्हीं के सम्मान में इसे मैगनन लक्षण कहते हैं।

हमने इस पुस्तक के पहले अध्याय में सहनशीलता का जिक्र किया है। कोकीन के संदर्भ में एक अनूठी परिघटना होती है जो विपरीत सहनशीलता (रिवर्स टालरेंस) के नाम से ज्ञात है। इसमें कोकीन की विशिष्ट खुराक जो शुरू में हानिरहित होती है, बार-बार प्रयोग के बाद विषाक्तता के लक्षण जैसे कि ऐंठन आदि उत्पन्न करने लगती



चित्र 37 : विस्तारित, सामान्य व सिकुड़ी हुई पुतलियां।

है। इसको 'ज्वलन' परिघटना (किंडलिंग फेनोमेनान) कहा जाता है और यह मस्तिष्क में कोकीन द्वारा लाए गए जटिल परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होता है।

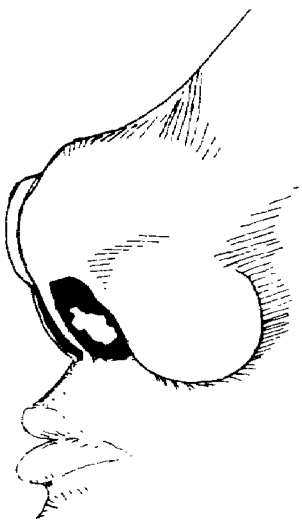
मनोरंजन संबंधी दुरुपयोग

कोकीन के बेहद कीमती होने के कारण इसकी लत काफी महंगी साबित होती है। इसे अक्सर 'राजसी शौक' भी कहा है। पारंपरिक रूप से कोकीन वेश्याओं, भडुओं, संगीतकारों, कल्पना की ऊंची उड़ानें भरने वालों और बिगड़े हुए रईसों के बीच लोकप्रिय रही है। लती लोगों द्वारा कोकीन कई तरीकों से ली जाती है, पर इनमें सबसे लोकप्रिय तरीका इसे नाक में चढ़ाने का है। (स्नोर्टिंग या हार्निंग)। इस तरीके में कोकीन का सुखभ्रांति प्रभाव (यूफोरिया), यहां 'रश' के रूप में ज्ञात, करीब 30 मिनट के भीतर शुरू होने लगता है और उतनी ही देर तक चलता है, जितनी देर इसे नस से लेने पर होने वाला प्रभाव। मुंह द्वारा लेने पर कोकीन का असर पांच मिनटों में शुरू होने लगता है, पर 'रश' स्नोर्टिंग या इंजेक्शन के मुकाबले काफी कम होता है। इसी कारण से लती लोग कोकीन मुंह से लेना पसंद नहीं करते। पर मुंह से सेवन के 'रश' की कमी इसकी लंबी अवधि पूरी कर देती है जो कि अन्य तरीकों के मुकाबले 15-30 मिनट अधिक होती है। इंजेक्शन से लेने पर 'रश' सबसे अधिक तीव्र होता है। स्नोर्टिंग से कमजोर प्रभाव ही होता है पर बार-बार सूई से गोदने से तो अच्छा ही है। अतः यही पसंदीदा तरीका है।

नाक में चढ़ाना (स्नोर्टिंग)

इस तकनीक में लती व्यक्ति कोकीन को एक नासाद्वार तक लाता है और दूसरे नासाद्वार को बंद कर कोकीन को सूंघता हुआ नाक में चढ़ाता है। वह किसी भी नासाद्वार का इस्तेमाल कर सकता है, पर बेहतर रूप से चढ़ाने के लिए वह दूसरे नासाद्वार को बंद कर लेता है। इस तरीके से पहले नाक में जलन होती है फिर ऐसा लगता है कि नाक ठंडी होकर जम गयी है। प्रभाव शुरू होने की अवधि कोकीन की शुद्धता और कटिंग में प्रयुक्त पदार्थों पर निर्भर करती है। अगर इसमें प्रोकेन प्रयुक्त है तो ठंडक और जमाव अधिक महसूस होगा। एक बार में लती व्यक्ति 100 से 500 मि. ग्रा. तक कोकीन सूंघ सकता है। कभी-कभी नाक के बालों में कोकीन के कण अटक जाते हैं जिससे

नाक की सतह में खुजली होती है। कई बार घाव व रक्तस्राव भी होने लगता है। कोकीन के चिरकालिक लती व्यक्तियों की नाक के पट (दोनों नासाद्वारों के बीच उपास्थी का पर्दा जिससे नाक के दो छेद बनते हैं) में छेद हो जाता है। उनमें घ्राण शक्ति भी नष्ट हो जाती है (एनोस्मिया)।



चित्र 38 : बार-बार कोकीन सूंघने से नाक के पट में छेद हो सकता है।

कोकीन की कुछ मात्रा साइनस कोटर में भी अटक जाती है और वहां रक्त संकुलता और परेशानी पैदा करती है। इन सब समस्याओं से बचने के लिए कई लती कोकीन की महीन पिसी हुई किस्म प्रयोग करते हैं। कोकीन को ब्लेड से काटकर खरल में बारीक पीसा जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि जितनी बारीक कोकीन होगी उतनी ही उसकी नाक या साइनस में अटकने की आशंका कम होगी। कुछ लती स्नोर्टिंग के बाद अपनी नाक में पानी की बूंदें डालते हैं ताकि नाक के बाल में अटके कोकीन के कण घुल जाएं। कुछ नासिका फुहारे प्रयोग करते हैं तो कुछ नाक में वेसलीन मल लेते हैं। पर अधिकांश लती ऐसी कोई सावधानी नहीं बरतते कि कहीं उनके 'रश' में खलल न पड़े।

नाक में चढ़ाने के लिए अधिकांश लती कोकीन पाउडर को कागज या चाकू पर रख नाक के पास ले जाकर और एक नाक बंद कर इसे दूसरी ओर से खींच लेते हैं। पर कई लती परिष्कृत तरीकों को अपनाते हैं। उदाहरण के लिए वे 'कोक चम्मच' का प्रयोग करते हैं, जो कि 'मुख्य दुकान' (औषधियों व संबंधित सामान बेचने की अवैध दुकान) से खरीदा जाता है। यह छोटा-सा चम्मच काफी सजावटी होता है और इसमें करीब 50 मि. ग्रा. कोकीन आ जाती है। चम्मच में कोकीन भरकर उसे नाक के पास ले जाकर जोर-जोर से सूंघा



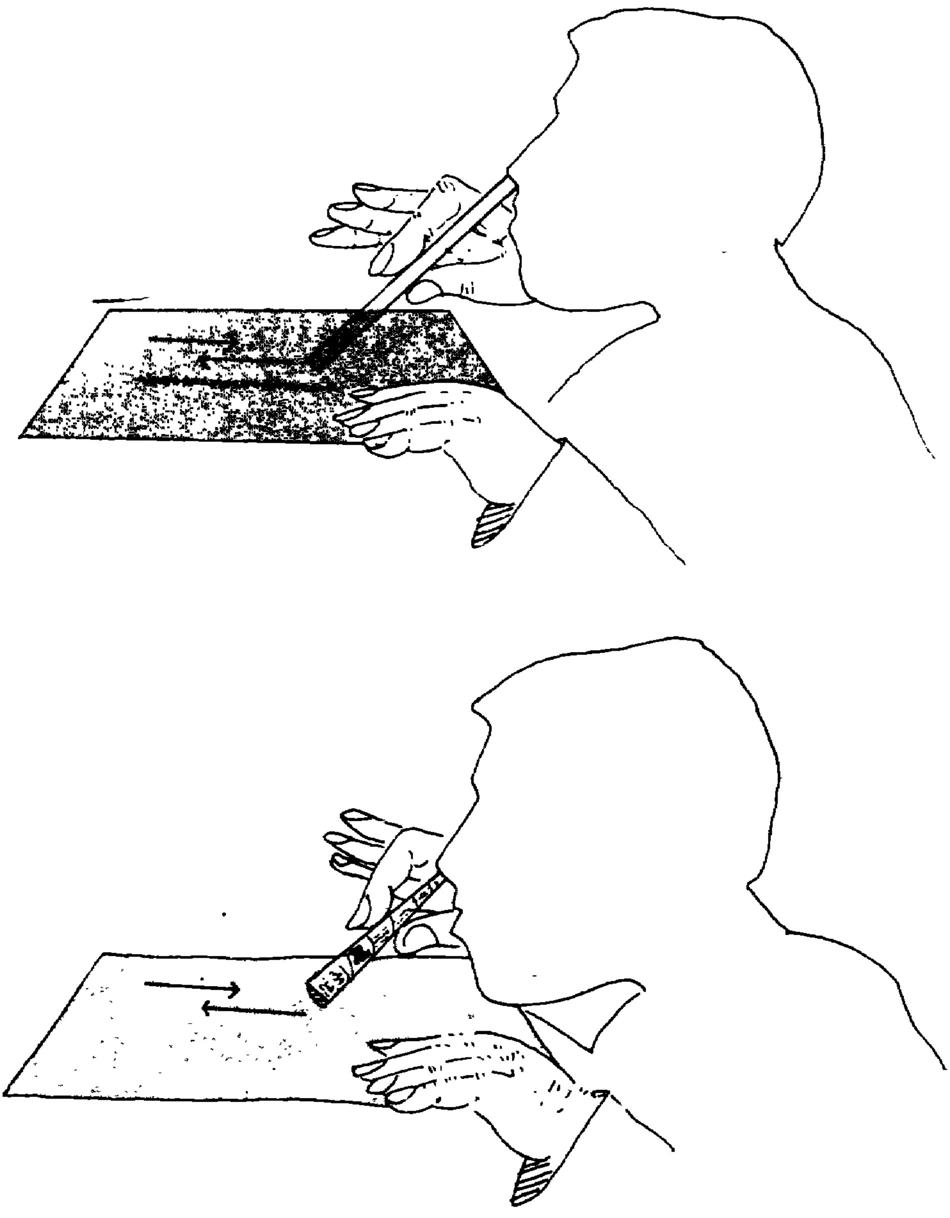
चित्र 39 : कोकीन नाक में चढ़ाना।



चित्र 40 : गले में चेन से लटकते चम्मच से कोकीन के लती व्यक्ति को आसानी से पहचाना जा सकता है।

जाता है। गले में पहनी चेन से लटके छोटे-से चम्मच से कोई भी कोकीन के लती व्यक्ति को पहचान सकता है। कुछ कोक चम्मचों में दो कटोरियां होती है ताकि दोनों ओर से एक साथ ही दोनों नाक में कोकीन चढ़ाई जा सके।

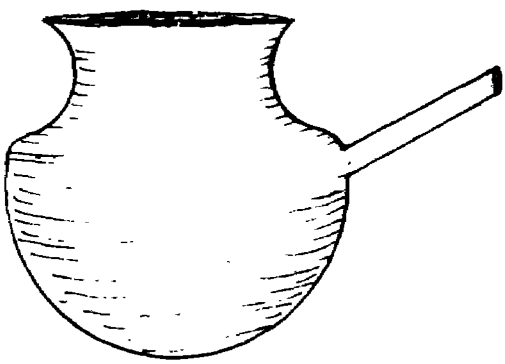
कुछ लती 'स्ट्रापाइप' या ऐसी ही कोई वस्तु स्नोर्टिंग के लिए काम में लाते हैं। वे किसी मेज या चिकनी सतह पर, जैसे कि शीशा आदि, कोकीन पाउडर एक लाइन में फैला लेते हैं जिसकी लंबाई व्यक्ति की पसंद पर निर्भर करती है। पर आमतौर पर यह 5 सें. मी. होती है। इसके बाद लती व्यक्ति नली निकालकर उसका एक सिरा अपनी नाक में डाल लेता है और दूसरे से कोकीन के लाइन के साथ-साथ ऊपर खींचता है। भडुए व अति कल्पनाशील लोग एक रुपए के नोट को नली की शक्ल में मोड़कर इसका प्रयोग करते हैं। जितना बड़ा नोट होगा उतना ही बड़ा रुतबा लती के साथ जोड़ा जाता है। 100 का नोट प्रयोग करने वाले लती का रुतबा 10 के नोट वाले



चित्र 41 अ तथा ब : नली द्वारा कोकीन की 'स्नोर्टिंग'।

से निश्चय ही ऊंचा होगा। एक ग्राम कोकीन में करीब 30-40 लाइनें बन जाती हैं, जिसमें हरेक में करीब 25-30 मि. ग्रा. कोकीन होती है। कभी-कभी कोकीन को एक रुपये के नोट की नली में भर लिया जाता है और दोनों सिरों को मोड़ दिया जाता है। इसे लती व्यक्ति हमेशा अपने पास रखता है और तलब लगने

पर कोई भी सिरा खोलकर कोकीन सूंघ लेता है।



चित्र 42 : नलीदार छोटी बोतल भी कोकीन स्नोर्टिंग के काम आती है।

कोकीन स्नोर्टिंग के और अनूठे तरीके में एक छोटी-सी नलीदार बोतल का प्रयोग होता है। कोकीन इस बोतल में भर कर लती व्यक्ति इसकी नली द्वारा उसे अपनी नाक में खींचता है। चम्मच की तरह ये बोतलें भी चेन से लटकाकर गले में पहनी जाती हैं।

कुछ लती अपनी एक उंगली का नाखून बहुत लंबा कर लेते हैं और इसका इस्तेमाल कोक चम्मच की भांति करते हैं। कुछ और लती काफी जटिल उपकरणों का प्रयोग करते हैं। ऐसा ही एक उपकरण है स्पिनहेलर जो कि दमा के रोगियों द्वारा औषधि सूंघने के उपकरणों के समान है।



चित्र 43 : उंगली का लंबा नाखून लती के लिए चम्मच का काम करता है।

फ्री-बेसिंग

हाल ही में एक अत्यंत खतरनाक धुन चल निकली है। यह है कोकीन की फ्री-बेसिंग, जिसमें गलियों में उपलब्ध कोकीन की हाइड्रोक्लोराइड किस्म को परिष्कृत कर शुद्ध अल्कलायड कोकीन या 'फ्री-बेस' तैयार की जाती है। इसके

लिए पहले कोकीन हाइड्रोक्लोराइड को क्षारीय विलयन में मिलाकर इसमें ईथर जैसा कोई विलायक डाला जाता है। इससे मिश्रण दो तहों में बांटा जाता है जिसमें ऊपरी तह में ईथर में घुली शुद्ध कोकीन होती है। इस ऊपरी तह को निथार कर वाष्पीकृत कर लिया जाता है जिससे शुद्ध कोकीन के कण बच जाते हैं। फ्री-बेस (शुद्ध कोकीन) का धूम्रपान किया जाता है क्योंकि यह भाप बन जाती है, पर जलती नहीं। इसे या तो 'कोकपाइप' में पिया जाता है या फिर सिगरेट में तंबाकू या मैरिजुआना के साथ मिलाकर (मैरिजुआना के बारे में अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा की जाएगी)। शुद्ध कोकीन की एक सिगरेट में लती एक बार में 300 मि. ग्रा. कोकीन का सेवन कर लेता है। फ्री-बेस पटरी कोकीन से अधिक खतरनाक क्यों होती है ? इसका एक कारण यह है कि कोकीन नाक की सतह से रक्त वाहिकाओं को संकुचित करती है। इससे नाक में कोकीन का अवशोषण काफी हद तक नियंत्रित हो जाता है। पर 'फ्री-बेस' के धूम्रपान में यह रक्षा उपलब्ध नहीं है क्योंकि यहां कोकीन का अवशोषण फेफड़ों में हो रहा होता है। 'फ्री-बेस' के लती व्यक्तियों की तुरंत मौत के कई मामले ज्ञात हैं। इन खतरों के बावजूद 'फ्री-बेस' का चलन बढ़ता जा रहा है। आजकल कोई भी 'फ्री-बेस' किट हासिल कर सकता है, जिसमें अवैध रूप से प्राप्त कोकीन से फ्री-बेस बनाने के सभी रसायन होते हैं।

कभी-कभी तस्कर फ्री-बेस बेचने का दावा करते हैं, पर असल में यह सिर्फ कोकीन बेस होती है। इन दो-एक जैसी लगने वाली परिभाषाओं से कुछ भ्रम उत्पन्न हो सकता है। अतः यह उचित होगा कि इनके बीच अंतर स्पष्ट कर दिया जाए। कोकीन-बेस कोका पेस्ट जैसी ही चीज है जिसके बारे में हम इस अध्याय के शुरू में पढ़ चुके हैं। यह कोका की सूखी पत्तियों को गंधक अम्ल (सल्फ्यूरिक एसिड) से संसाधित कर बनाई जाती है। यह 'पास्ता' या 'बजूका' के नाम से भी लोकप्रिय है। कोकीन बेस में मुख्यतया कोकीन सल्फेट होता है, जबकि 'फ्री-बेस' शुद्ध कोकीन है।

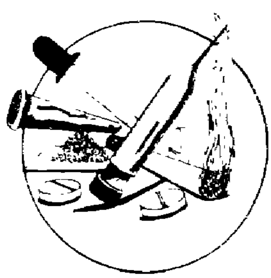
कोकीन के इंजेक्शन

कुछ लती व्यक्ति हेरोइन की भांति कोकीन को सीधे अपनी नसों में इंजेक्ट करते हैं। पर यहां भी कई रोचक अंतर देखने में आते हैं। जब कोकीन को पानी में मिलाते हैं तो इसे गरम नहीं किया जाता क्योंकि कोकीन हाइड्रोक्लोराइड (पटरी कोकीन) पानी में तुरंत घुल जाती है। इसके अलावा उबालने पर कोकीन उड़

जाती है। एक और अंतर यह है कि कोकीन का इंजेक्शन लेने पर नस के ऊपर जहां नस छेदी जाती है, नीला निशान पड़ जाता है। कोकीन को छानने के लिए रूई का भी प्रयोग नहीं किया जाता है। कई लती व्यक्ति ये भी मानते हैं कि कोकीन रक्त को जमा देती है, इसलिए वे नस को छेदने के साथ ही जल्दी से जल्दी कोकीन इंजेक्ट करने की कोशिश करते हैं।

कोकीन को हेरोइन के साथ मिलाकर भी इंजेक्ट करने का अनूठा चलन है। इस मिश्रण को 'स्पीडबाल' या 'कोक जैब' नामों से जाना जाता है और यह कोकीन के अनचाहे प्रभावों को कम कर मनचाही अनुभूति उत्पन्न करता है। कोकीन द्वारा उत्पन्न सुखभ्रांति तीव्र पर अल्पकालिक होती है। इसके बाद भय व चिंता के भाव उत्पन्न होते हैं। हेरोइन लंबी अवधि की सुखभ्रांति पैदा करती है और पीड़ादायक बेचैनी को कम करती है। 'स्पीड बाल' को मुंह से भी ले सकते हैं, हालांकि तब इसका प्रभाव कुछ कम होता है। कुछ लती कोकीन को अल्कोहल में मिलाकर पीते हैं। इस पेय को 'लिक्विड लेडी' कहते हैं। कुछ लती व्यक्ति व्हिस्की में एक खतरनाक मादक औषधि क्लोरल हाइड्रेट मिलाकर पीते हैं। इस पेय को 'मिकी फिन' नाम से जाना जाता है।

इन सब दुरुपयोगों के अलावा कोकीन को शरीर के अंगों पर मलकर भी इसका दुरुपयोग होता है। लती लोग इसे मसूड़ों, जीभ के नीचे या पलकों के किनारों पर मलते हैं। यह भी ज्ञात है कि लैंगिक सहवास के दौरान पुरुष कोकीन को अपने शिश्न और औरतें अपनी योनि पर मल लेती हैं। ऐसा यकीन किया जाता है कि इससे सहवास के आनंद में वृद्धि हो जाती है।



5

गरीब का स्वर्ग : सन

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसने भांग, चरस, हशिश और गांजे का नाम न सुना हो। यह सभी चीजें एक ही पौधे से प्राप्त होती हैं, जिसे सन, पटसन या भारतीय हेम्प कहते हैं। इसका वानस्पतिक नाम कैनाबिस सैटाइवा है और यह पौधों के कैनाबिनेसी परिवार का सदस्य है। इस परिवार के दो भिन्न गण कैनाबिस व ह्यूमुलस हैं। ह्यूमुलस की प्रजातियां ह्यूमुलस ल्यूपुलस एवं ह्यूमुलस अमेरिकानस 'हाप्स' नाम से ज्ञात हैं और जौ के पेय में कड़वाहट डालने के लिए इनका उपयोग होता है।

कैनाबिस शब्द का उद्‌गम भी काफी रोचक है। यह असीरियाई कुआनाबु से निकला है। असीरियाई लोग सन के बीजों का उपयोग अगरबत्ती की तरह करते थे और इसके धुएं को सूंघकर अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिए शोर मचाते थे। शोर के लिए उनका शब्द था 'कुआनाबु' और इस तरह इसका नाम कैनाबिस पड़ गया। सैटाइवा शब्द लैटिन सैटाइवस से निकला है जो कि कोई भी बोई जाने वाली फसल का आशय प्रकट करता है।

कैनाबिस सैटाइवा की तीन किस्में ज्ञात हैं जो कि उनके प्रमुख उत्पादन क्षेत्रों पर निर्भर हैं। ये हैं कैनाबिस इंडिका, कैनाबिस अमेरिकाना और कैनाबिस मैक्सिकाना। वनस्पति विज्ञानियों के अनुसार ये सभी किस्में कैनाबिस सैटाइवा में मामूली परिवर्तन दिखाती हैं। कैनाबिस परिवार में सिर्फ एक ही असल प्रजाति है—कैनाबिस सैटाइवा।

पौधा

कैनाबिस के पौधे से 400 से अधिक रसायन अलग किए जा चुके हैं। पर इसके



चित्र 44 : मैरिजुआना का पौधा फल के साथ।

सुखकारक प्रभाव के लिए जो रसायन सर्वाधिक उत्तरदायी है वह है डेल्टा-9 टेट्राहाइड्रोकैनाबिनाल या टी. एच. सी. जो मुख्यतया पौधे की पत्तियों और फूलों के ऊपरी हिस्सों में पाया जाता है।

कैनाबिस की झाड़ी लंबी, एकवर्षी, काष्ठीय व एकलिंगाश्रयी (डायोएशियस) होती है। इसमें नर और मादा पुष्पवृंत अलग-अलग पौधों पर होते हैं। नर पौधों को पुंकेसरी (स्टैमिनेट) व मादा पौधों को स्त्रीधानी (पिस्टीलेट) कहा जाता है। शताबर (एस्पारागस) व भिंसा (विलो) अन्य एकलिंगाश्रयी पादप हैं। कैनाबिस का पौधा एक मीटर से पांच मीटर तक लंबा हो सकता है। सामान्यतः नर पौधे अधिक लंबे होते हैं। पत्तियां हस्ताकार संयुक्त (कांपाउंड) होती हैं, जिनमें 5 से



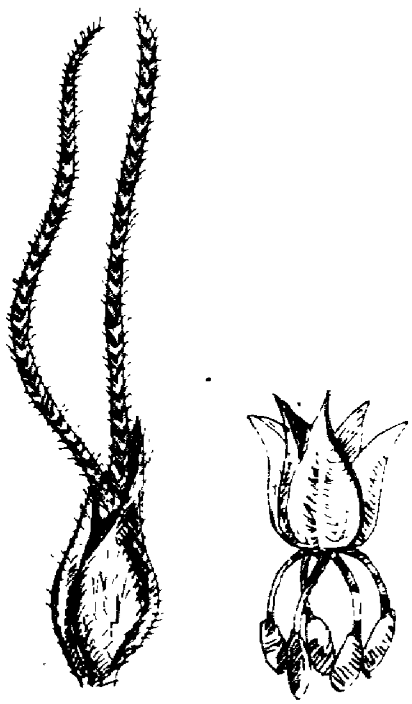
चित्र 45 : मैरिजुआना की पत्तियां।

11 तक पर्णक होते हैं। एक पत्ती में 7 पर्णक सामान्य संख्या है। पर्णक दोनों सिरों पर नुकीले और दांतेदार किनारों वाले होते हैं। फूल, फल व बीज पौधों के शीर्षो पर शाखाओं के अंत में लगते हैं। पौधे के सभी भागों पर चिपचिपे व महीन रोम होते हैं। रोमों में चिपचिपाहट राल (रेसिन) के कारण होती है जो कि रोम की जड़ में ग्रंथि से निकलती है। इसी राल में सभी सुखकारक रसायन (टी. एच. सी.) भी पाये जाते हैं, और इसी कारण उत्तम गुणों व मात्रा की राल वाले पौधों की लालसा बरकरार



चित्र 46 : मैरिजुआना के पौधे 5 मी. तक लंबे हो सकते हैं। इन पौधों के बीच खड़ी लड़की उनके सामने बौनी लगती है।

रहती है । पौधे का तना अंदर से खोखला होता है और अनुप्रस्थ काट में लगभग वर्ग जैसा दिखता है।



चित्र 47 : गांजे के नर व मादा पुष्प।

स्पष्टतः नर पुष्प टहनियों व डंठलों के सिरे पर 15 सें. मी. लंबे पुष्पवृंतों पर लगते हैं। उनका रंग हल्का हरापन लिये पीला होता है। नर पुष्प भारी मात्रा में पराग कण छोड़ते हैं। दूर से नर व मादा पुष्प एक जैसे लगते हैं, पर पास से देखने पर उन्हें अलग पहचाना जा सकता है। एक खेत में नर व मादा पौधों की संख्या लगभग बराबर होती है। मादा पौधों में टी. एच. सी. की मात्रा अधिक होती है।

वयस्क होने पर मादा पौधों पर फल (जिन्हें बोलचाल की भाषा में बीज कहा जाता है) लगते हैं। ये बिना छीले गेहूं के आकार के होते हैं। इनका रंग शुरू में हरा होता है और इनमें चिपचिपाहट भी होती है। पकने पर यह रंग हल्के हरेपन के साथ पीले से भूरा तक हो सकता है। चित्तीदार फल भी देखने में आते हैं। ये फल अंडे की शक्ल में होते हैं। फल के बीचोबीच दीर्घ परिधि में स्पष्ट रूप से उठी हुई लकीर होती है जो इसे दो भागों में बांटती हैं। इस लकीर पर भी चिपचिपाहट होती है। फल के अंदर सारे भाग में सफेद मांसल पदार्थ भरा होता है जो देखने पर नारियल की गरी जैसा लगता है। भांग की पहचान में फल और छिलका महत्त्वपूर्ण सहायक हैं।

बहु-उपयोगी पौधे

कैनाबिस की खेती तीन उद्देश्यों से की जाती है—पहला उद्देश्य मनुष्य की नशे संबंधी जरूरतों की पूर्ति है; (यानी लती लोगों को भांग, चरस, गांजा आदि की आपूर्ति) ऐसे पौधों में टी. एच. सी. मात्रा बहुत अधिक होती है—6% तक। अधिकांशतया मादा पौधों से मादक पदार्थ निकाले जाते हैं। दूसरे नंबर पर रेशे

हैं। नर पौधे अधिकतया रेशा उत्पादन का काम करते हैं। इन रेशों से रस्सी, सुतली, टोप आदि बनते हैं। वस्तुतः केनवास शब्द कैनाबिस से निकला है। नर पौधों में टी. एच. सी. की मात्रा बेहद कम होती है—0.4% से भी कम। वस्तुतः पौधे में रेशों और औषधियों की मात्रा व्युत्क्रमानुपाती होती है। अच्छी मात्रा में रेशा देने वाले पौधों में औषधियों की मात्रा काफी कम होती है।

कैनाबिस की खेती का उद्देश्य इसके बीजों से संबंधित है। बीजों से तेजी से सूखने वाला तेल प्राप्त होता है, जो रंग-रोगन के काम आता है। यह व्यापारिक स्तर पर अलसी के तेल का विकल्प है। बीजों का इस्तेमाल पौल्ट्री फार्म और दड़बों में पक्षियों की खुराक में भी होता है।

टी. एच. सी. युक्त राल पौधे के बहुकोशकीय ग्रंथिक रोमों से होती है। यह राल गाढ़ी व चिपचिपी होती है। हालांकि राल पौधे के सभी भागों पर पाई जाती है, पर प्रजनन अंगों (फूलों व फलों) पर इसकी मात्रा सर्वाधिक होती है। मादक पौधे अधिक राल उत्पन्न करते हैं। स्थान की समुद्र तल से ऊंचाई, नमी, तापमान आदि राल की मात्रा को सीधे प्रभावित करते हैं। गर्म, शुष्क जलवायु में उगाए गए पौधे अधिक मात्रा में राल छोड़ते हैं। यह राल इसकी नमी बचाए रखती है। इसी कारण से भारत, अफ्रीका व दक्षिण अमेरिका की गर्म व शुष्क जलवायु में उगाये गये पौधे छिपी हुई अवैध प्रयोगशालाओं के लिए उपयोगी हैं।

कैनाबिस से बहुत सारे उत्पाद मिलते हैं जिनसे हम सभी अच्छी तरह परिचित हैं। इनमें सबसे लोकप्रिय है भांग, जो इसकी सूखी पत्तियों से बनती है। दरअसल यह नाम इतना प्रचलित है कि इस पौधे को अक्सर भांग का पौधा कहा जाता है। सिद्धी, पट्टी या सब्जी भांग के अन्य नाम हैं। भांग को इसी रूप में या फिर काढ़ा-पेय के रूप में प्रयोग करते हैं। इसे पीने से नशा होता है। इस पेय को बनाने के लिए भांग की सूखी पत्तियों को सिलबट्टे पर चीनी और काली मिर्च के साथ पीसा जाता है। बाद में इसमें थोड़ा पानी मिलाकर इसे मलमल के कपड़े से छान लिया जाता है। इस तरह तैयार पेय ठंडाई के नाम से विख्यात है, और इसका हमारे देश में होली के अवसर पर खूब सेवन किया जाता है।

भांग को चीनी, आटे, दूध और घी में मिलाकर माजून नामक मिठाई भी बनती है। भांग मिली बर्फी भी होली पर खूब चलती है। यह बर्फी सफेद के स्थान पर हरे रंग की होती है। इस प्रकार के मीठे खाद्य पदार्थ माजून कहलाते हैं।

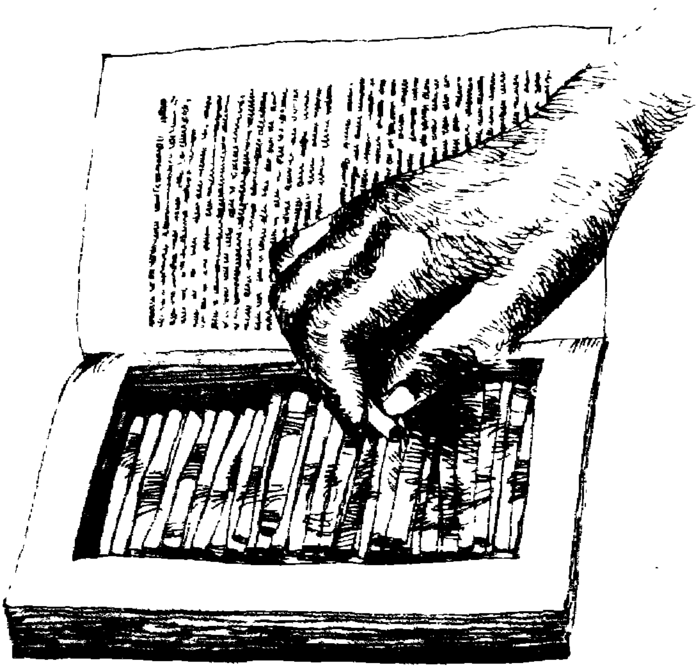


चित्र 48 : भांग, गांजा और माजून मैरिजुआना पौधे से मिलते हैं।

कैनाबिस या सन से गांजा नामक उत्पाद भी मिलता है। इसका मुरचहा हरा रंग होता है और इसमें विशेष तीखी गंध होती है। यह मादा पौधे के शीर्ष पर लगे फूलों से निकलता है, जिसमें टी. एच. सी. की मात्रा बहुत अधिक होती है। गांजे में टी. एच. सी. की मात्रा 5 प्रतिशत होती है, जबकि भांग में इसकी मात्रा मात्र 1 से 2 प्रतिशत ही होती है। गांजे को ही पश्चिमी देशों में 'मैरिजुआना' या 'मैरिहुआना' (दोनों ही नाम ठीक हैं) नामों से जाना जाता है। यह शब्द शायद ऐज़टेक शब्दों मिलान-ए-हुआन (इस पौधे का नाम) से निकला है, जिसे स्पेनी आक्रमणकारी उच्चारित नहीं कर सके और उन्होंने इसे 'मैरिजुआना' कहा।

भांग खाई या पी जाती है पर गांजे का धूम्रपान होता है। 1-2 ग्रा. गांजा कुछ पानी के साथ हथेली पर चिपचिपा होने तक मसला जाता है। फिर तंबाकू में मिलाकर पाइप या चिलम से इसका धूम्रपान किया जाता है। भारत में साधु, फकीर और गरीब मजदूरों के साथ भारी संख्या में नवयुवक व युवतियां भी गांजे को मानसिक थकान व उदासी दूर करने के लिए पीते हैं। इस तरह इसे 'गरीब का स्वर्ग' भी कह सकते हैं, पर अंततः यह नरक ही साबित होता है।

पश्चिमी देशों में लोग गांजे (उनके शब्दों में मैरिजुआना) का धूम्रपान सिगरेटों में करते हैं, जो 'रीफर्स' या 'जाइंट्स' के रूप में जानी जाती हैं। एक



चित्र 49 : 'रीफर' सिगार जैसे लगते हैं। यहां उन्हें पुस्तक जैसे बक्से में अवैध रूप से पैक दिखाया है।

विशेष किस्म के पतले कागज में करीब 500 मि. ग्रा. गांजा भर इसे सिगरेट की शक्ल में बेल लिया जाता है। सिरों को मोड़ दिया जाता है ताकि गांजा बाहर न गिरे। कभी-कभी 'रीफर' को मजबूत बनाने के लिए दो कागजों का प्रयोग होता है। गांजे को भांग की तरह खाया भी जा सकता है या चाय की तरह उबालकर पीया भी जा सकता है। पर मुंह से लेने पर इसका प्रभाव घट जाता है। इस प्रकार लेने से असर पता चलने में एक घंटा तक लग सकता है पर धूम्रपान से तुरंत असर होने लगता है। गांजे को बिस्कुटों में भरकर सेंका भी जा सकता है। इन बिस्कुटों को 'कुकीज' या 'ब्राउनीज' कहते हैं।

गांजे के धूम्रपान को 'टर्निंग आन' कहा जाता है। 'रीफर' को अक्सर थूक लगाकर गीला कर लिया जाता है, जिससे यह धीरे-धीरे जले। इससे रीफर के स्वाद में कोई फर्क नहीं पड़ता। ज्यादातर रीफर राख के रंग की, गीली-गीली,

अस्वास्थ्यकर व देखने में घिन्न उत्पन्न करने वाली होती है। कुछ लोग गांजे को पाइप या 'बांग' में डालकर पीते हैं। इस उद्देश्य के लिए सामान्य उपलब्ध पाइप की जगह छोटी कटोरी की पाइप उत्कृष्ट होती है। एक अंधेरे कमरे में मोमबत्ती या अगरबत्ती आदि जलाकर बहुत सारे लोग समूह में रीफर या पाइप का धूम्रपान करते हैं। वे पाइप को बारी-बारी से एक-दूसरे को देते रहते हैं। समूह में लोगों की मंडली या तो बंद होती है या फिर खुली। बंद और खुली से तात्पर्य है खुली मंडली में गांजे के बारे में मुक्त चर्चा होती है यानी यह कहां से आता है, कितनी मात्रा है तथा अन्य जानकारियां। बंद मंडली में इन सब विषयों पर चर्चा नहीं होती। इस तरह से खुली मंडली में लोग आराम व अंतरंगता के साथ गांजे का आनंद उठाते हैं।

रीफर के कश को 'टोक' कहते हैं। इसमें धुएं को गहराई से अंदर खींचा जाता है और देर तक फेफड़ों में रोके रखा जाता है। रीफर को साधारण सिगरेट की तरह पीने से इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। व्यक्ति को कम से कम 20 से 30 सैकेंड तक इसका धुआं फेफड़ों में रोक रखना चाहिए ताकि यह अच्छी तरह खून में घुल-मिल जाए। एक सामान्य रीफर में करीब 500 मि. ग्रा. गांजा होता है। अगर हम यह मानें कि गांजे में करीब 1% टी. एच. सी. होता है तो एक रीफर में इसकी मात्रा 5 मि. ग्रा. तक होनी चाहिए। कई उत्कृष्ट रीफर में 1 ग्रा. तक उच्चकोटि का गांजा होता है, जिसमें टी. एच. सी. की मात्रा 10 से 15% तक होती है। इस प्रकार उत्कृष्ट रीफर में 100 से 150 मि. ग्रा. तक टी. एच. सी. होता है और इस पर अगर चरस का तेल (हश आयल) डाल दिया जाए तो इसकी शक्ति दोगुनी हो जाती है। धूम्रपान से 50% टी. एच. सी. मुक्त होता है। इस प्रकार एक निम्नकोटि का रीफर भी शरीर में 2.5 मि. ग्रा. टी. एच. सी. मुक्त करता है। यह मुंह से लिये गए 7.5 मि. ग्रा. टी. एच. सी. के बराबर है। कई दिग्गज लती दिन भर में कई उत्कृष्ट रीफरों का सेवन करते हैं। इस तरह उनके शरीर में 150 से 200 मि. ग्रा. तक टी. एच. सी. घुल जाता है। अगर दो-तीन हफ्तों तक इनकी अधिक मात्रा ली जाए और फिर एकाएक छोड़ दी जाए तो अपनयन लक्षण प्रकट होते हैं।

जहां एक ओर साधारण सिगरेट का टोटा फेंक दिया जाता है, वहीं रीफर का सिरा जिसे इसकी समानता के कारण रोच (एक छोटी सफेद मछली) कहते हैं, संभालकर रख लिया जाता है क्योंकि धूम्रपान के दौरान अधिकांश टी. एच. सी. इसमें जम जाती है। यह रीफर का सर्वशक्तिशाली भाग होता है। यह कुल



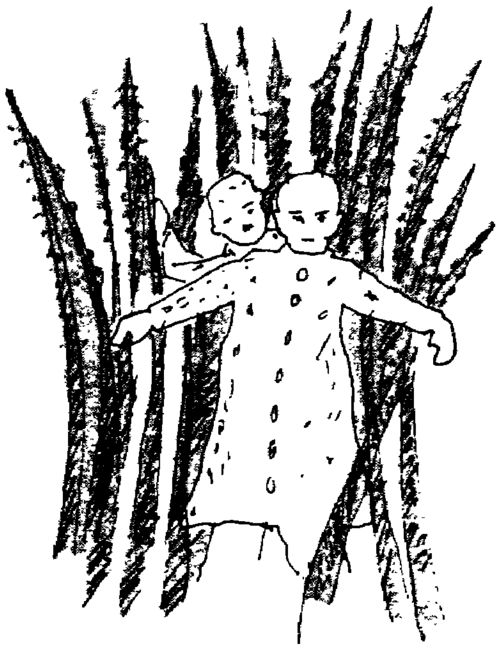
चित्र 50 : सन को कभी-कभी गमलों में भी उगाया जाता है। इसी से संभवतया इसका कूट नाम 'पाट' निकला है।

जाइंट का एक तिहाई या संभवतया आधा प्रभावशाली होता है। रोच के सेवन के लिए कई तरीके ईजाद किए गए हैं। इनमें इसे चबा-चबा कर खाने से लेकर धूम्रपान तक शामिल हैं। इसका धूम्रपान इसे बालों की सुई या ऐसे ही किसी उपकरण में फंसाकर किया जाता है ताकि उंगलियां न जलें।

हेरोइन के विपरीत गांजे को कभी भी नसों में इंजेक्ट नहीं किया जाता। फिर भी कुछ लोगों द्वारा अपरिष्कृत गांजे को अनुचित रूप से नसों में इंजेक्ट करने की जानकारी भी प्रकाश में आयी है। पर यह अत्यंत अव्यावहारिक आदत है, और इससे गंभीर चिकित्सकीय जटिलताएं उत्पन्न होती हैं।

गांजे को वर्ग विशेष बोली में 'पाट' कहते हैं। वस्तुतः अंग्रेजी वार्तालाप में एक कहावत है 'लेट हिम हैव हिज पाइप एंड पाट' यानी कोई कुछ करता है तो करने दो। यह शब्द या तो गांजे के लिए मेक्सिकन शब्द 'पाटागुआवा' से निकला है या फिर इस तथ्य से कि हारलेम में कैनाबिस गमलों में उगायी जाती है।

सन अर्थात् भांग के पौधे से एक और उत्पाद मिलता है—चरस। इसे पश्चिमी जगत में हशिश नाम से जाना जाता है। हशिश शब्द हसन-इब्न-सबाह (1100 ईस्वी) से निकला है, जिसके अनुयायी हशिश खाते थे। चरस या हशिश में 10 से 15 प्रतिशत टी. एच. सी. होती है, और यह गांजे में अधिक तेज होती है। इस तरह भांग, गांजा व चरस एक ही औषधि की तीन विभिन्न किस्में हैं, पर तीनों में औषधि की मात्रा बढ़ती जाती है। भांग में सबसे कम, चरस में सबसे अधिक। औषधियों के गुप्त जगत में केवल एक ही औषधि है जो इस



चित्र 51 : सन के पौधों से चरस चमड़े के कपड़े पहने व्यक्तियों द्वारा जमा की जाती है।

तरह परिवर्तनशील सांद्रण में उपलब्ध है और यह है अल्कोहल (हालांकि यह अंशतः सामाजिक रूप से स्वीकार्य है)। अल्कोहल का तनु ब्रांड बीयर है (भांग के समतुल्य), इससे अधिक तेज वाइन है (गांजे के समतुल्य) और सर्वाधिक सांद्रण की व्हिस्की (चरस के समतुल्य) है।

चरस या हशिश का रंग गाढ़ा हरा या भूरा होता है। यह सन की पत्तियों व शाखाओं से रिसने वाली गाढ़ी राल है। इतिहास में विभिन्न देशों में चरस बनाने के भिन्न-भिन्न तरीकों का वर्णन है। एक मिस्री लोककथा के अनुसार सन के पौधे 60 सें. मी. की दूरी पर पंक्तियों में लगाये जाते हैं। इससे इनकी शाखाएं बीच में फैल जाती हैं और उनकी पंक्तियों पर राल इकट्ठी हो जाती है। इन पौधों के बीच से आदमी नंगा या चमड़े के कपड़े पहनकर, हाथों को चारों ओर घुमाता निकलता है (एक अन्य कथा में नौ पूंछ वाली बिल्ली जैसे यंत्र का जिक्र है जिसे पौधों के ऊपर से फिराया जाता था)। आदमी के बाहर निकलने पर उसके शरीर या चमड़े के कपड़ों पर (या नौ पूंछी बिल्ली जैसे यंत्र पर) चिपचिपी राल लग जाती थी जिसे कुंद चाकू से खुरच लिया जाता और दबा-दबाकर केक की शक्ल दी जाती थी। पर इस लंबी व उबाऊ प्रक्रिया के प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

कई बार सन की पत्तियों व डंठलों को हथेलियों से मलकर भी राल निकाली जाती है। जमीन पर कपड़ा बिछाकर उसके ऊपर पौधों को कूटने से राल कपड़े पर चिपक जाती है, जिसे बाद में खुरचकर जमा कर लिया जाता है।

पश्चिमी यूरोप के ईसाइयों और मुसलमानों के बीच चले पवित्र धर्मयुद्ध (1095 से 1444 ई.) के साथ भी हशिश एक रोचक ढंग से जुड़ी हुई है। वर्तमान

इस्राइल की राजधानी येरूशलम (जहां ईसा मसीह का जन्म हुआ था) की पवित्र धरती पर तुर्क मुसलमानों का अधिकार था और ईसाई इस जमीन को प्राप्त करना चाहते थे ताकि वे पवित्र समाधि छुड़ा सकें। इन ईसाइयों को धर्मयोद्धा कहा जाता था और वे बार-बार येरूशलम में मुसलमानों पर हमले करते रहते। इन धर्म-योद्धाओं के मुकाबले के लिए मुस्लिम नेता पेशेवर हत्यारों की सेवाएं लेते। ये हत्यारे हशिश के नशे में (साहस की झूठी अनुभूति) हत्याएं करते थे। हशिश से उत्पन्न मनोविकृति के कारण इन हत्यारों को 'हश्चीचिन' कहा जाता। इसी से अंग्रेजी का आधुनिक शब्द 'एसैसिन' (हत्यारा) निकला है।

अलग-अलग पैकेटों में हशिश की शक्ति भी अलग होती है। कुछ विशेषज्ञ हशिश का रंग देखकर ही इसकी शक्ति बताने का दावा करते हैं। हल्का रंग, कम शक्ति; इसीलिए गाढ़ी भूरी हशिश में अधिकतम टी. एच. सी. की मात्रा बताई जाती है। पर यह शायद सच न हो, क्योंकि कुछ विशेषज्ञ इसके उलटे को सच बताते हैं। कुछ देशों में पेशेवर हश-पारखी भी होते हैं जो कि औषधि को चखकर उसकी शक्ति बताते हैं (जैसे चाय पारखी चाय का जायका बताते हैं)।

गांजे की भांति हशिश का धूम्रपान होता है (यह गांजे की भांति खाई भी जाती है)। इसके धूम्रपान के लिए 'हश पाइप' या सामान्य पाइप का प्रयोग होता है। हश पाइप में छोटी-सी कटोरी होती है जिसके छेद में जाली भी हो सकती है ताकि सुलगती चरस भी धुएं के साथ मुंह में न खिंच आए। कई बार जाली नहीं भी होती है। कुछ लती अल्यूमीनियम की पत्ती में छेदकर इसका उपयोग सामान्य पाइप में करते हैं। इसे आसानी से निकाला भी जा सकता है जिससे कटोरी में राल का निशान भी नहीं बचता है। अगर पाइप न मिले तो हशिश का छोटा-सा टुकड़ा सिगरेट के जलते हुए सिरे पर रखा जा सकता है और जब औषधि जलना शुरू कर दे तो धुएं को अंदर खींचा जाता है। कई लती हशिश ही पसंद करते हैं, क्योंकि इससे न सिर्फ जल्दी और तीव्र नशा होता है बल्कि एल. एस. डी. जैसी भ्रांतिजनक औषधियों से मिलता-जुलता भ्रम और ट्रिप भी उत्पन्न होता है। यह ट्रिप कई बार अवांछनीय और मस्तिष्क को आंदोलित करने वाला होता है।

हशिश तेल टी. एच. सी. का अतिसांद्र रूप है—चरस से भी ज्यादा शक्तिशाली। यह मैरिजुआना आयल 'हनी आयल या 'हश आयल' नामों से भी ज्ञात है। इसमें टी. एच. सी. की मात्रा 20 से 60 प्रतिशत तक होती है। और

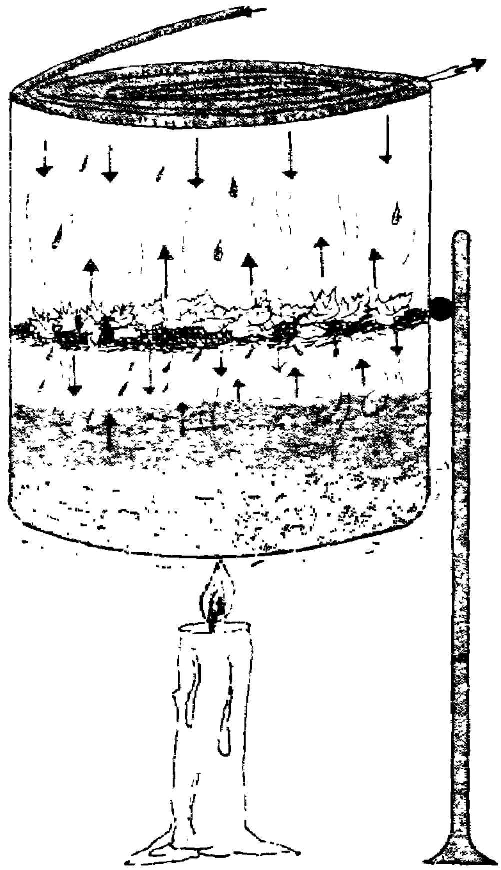
इस प्रकार यह हशिश से तीन-चार गुना ज्यादा तेज होता है। अब यह अवैध रूप से निकाला जाता है। पहले जो चीज औषधि व चिकित्सा पेशे में सन का टिंक्चर या सत के रूप में ज्ञात थी, वह चिकित्सकीय उद्देश्यों में प्रयुक्त वैध उत्पाद थी। अगर अल्कोहल से तुलना की जाए तो हम पाते हैं कि अल्कोहल जगत में हशिश तेल की बराबरी की कोई चीज नहीं है। आसवन से प्राप्त सबसे शुद्ध अल्कोहल (एबसोल्यूट अल्कोहल) शायद इसकी बराबरी कर सकती है।

पटरी पर हशिश तेल बेहद गाढ़े तरल रूप में मिलता है। यह इतना गाढ़ा होता है कि बिना गर्म किए बहता भी नहीं है। इसका रंग भी स्थिर नहीं है, पर यह आमतौर पर हरिताभ पीत, गाढ़ा हरा, भूरा या काला होता है। इसकी उच्च टी. एच. सी. मात्रा इसे शुद्ध टी. एच. सी. के बराबर बना देती है। हालांकि प्रयोगशालाओं में शुद्ध टी. एच. सी. बनाई जा सकती है, पर इसकी लागत बहुत अधिक आती है। इसके अलावा शुद्ध टी. एच. सी. ज्यादा दिनों तक रखी भी नहीं जा सकती है।

हम पहले भी देख चुके हैं कि कई लती गांजे की या साधारण सिगरेट पर हशिश तेल डालकर धूम्रपान करते हैं। कई लती इस तेल को खाने या गर्म चाय या काफी के साथ भी लेते हैं। अपने गाढ़ेपन और निष्कर्षण के दौरान विलायकों या अन्य रसायनों के मिलाने के कारण हशिश तेल को वायुरोधी बर्तनों में धूप और ताप से दूर रखा जाता है। हवा, गर्मी और धूप से यह तेल सख्त पड़कर बेकार हो जाता है।

हश तेल बनाने के कई तरीके हैं, पर प्रयोगशाला निर्माण में प्रयुक्त मूल सिद्धांत काफी का अर्क निकालने जैसा ही है। इसी सिद्धांत में गांजे या चरस के बारीक कटे टुकड़ों को एक बर्तन में लटकी जाली पर फैला दिया जाता है। इसके नीचे घोल का विलयन, जिसमें इथेनाल, विकृत अल्कोहल (मिथेनाल युक्त इथेनाल ताकि लोग इसे नशे के लिए पी न सकें) हेक्सेन या पेट्रोलियम ईथर आदि होता है, रखा होता है।

इसी बर्तन में जाली (बास्केट) के ऊपर की तरफ तांबे की चक्राकार नलियां लगी होती हैं जिनमें ठंडा पानी घूमता रहता है। अब बर्तन के नीचे आग लगाई जाती है जिससे घोल का विलयन वाष्पीकृत होता है और यह वाष्प जाली में रखे गांजे के टुकड़ों से होती तांबे की नलियों तक जाती है। फिर ठंडी होकर बूंदों के रूप में वापस गांजे के टुकड़ों पर गिरती है और अंततः वापस विलयन



चित्र 52 : हश तेल निष्कर्षण विधि का आरेखीय चित्र।

में मिल जाती है। घोल की भाप और बूंदों के गांजे से गुजरने पर इसकी राल इसमें घुल जाती है। यह प्रक्रिया कई बार दुहराई जाती है जब तक कि गांजे की सारी राल और टी. एच. सी. विलयन में घुल नहीं जाती। इस प्रक्रिया के बीच में ही कई बार ताजा गांजा बर्तन में डाला जा सकता है। जितनी बार प्रक्रिया दुहराई जाती है उतना ही गाढ़ा व शक्तिशाली विलयन तैयार होता है। फलस्वरूप अंतिम उत्पाद में टी. एच. सी. की मात्रा की भिन्नता पाई जाती है।

आजकल कई लोग चोरी-छिपे हश तेल निकालने की मशीन खरीदकर अपनी रसोई, गुसलखाने या किसी अन्य जगह पर जहां विद्युतधारा उपलब्ध हो, हश तेल निकाल सकते हैं। ऐसी ही एक साधारण मशीन 'आइसोमेराइज़र' है, जो कई आकारों व कीमतों में मिलती है। ऐसी ही एक छोटी इकाई 'आइसो-2' नाम से ज्ञात है जो पश्चिम में औषधि पत्रिका में विज्ञापित की जाती है। पश्चिम में ये मशीनें वैध रूप से खरीदी जा सकती हैं। ये जल्दी आग पकड़ती हैं या प्रक्रिया के दौरान विस्फोट के साथ फट सकती हैं। जब कभी मद्य निषेध अधिकारी तलाशी में ऐसी मशीनों को पाते हैं वे इसे हिलाने से डरते हैं कि उससे विस्फोट न हो जाए।

सन की प्राचीनता

आज सन से प्राप्त मादक औषधियों का व्यापार उच्च तकनीक पर आधारित

है। लेकिन प्राचीनकाल में भी अपरिष्कृत रूप में इनका सेवन होता था। इसे हमारे पुराणों में स्थान प्राप्त है। एक पौराणिक आख्यान के अनुसार पारिवारिक झगड़ों से क्रुद्ध भगवान शिव वनों में गए। वहां ऊंचे-ऊंचे सन पौधे की छाया में उन्हें धूप के ताप से शांति व ठंडक मिली। जिज्ञासावश उन्होंने इसकी कुछ पत्तियां खाईं और तरोताजा महसूस किया। इसके बाद भांग उनका प्रिय भोग हो गई और उन्हें 'भांग का देवता' कहा जाने लगा।

भांग के उपयोग का प्राचीनतम लिखित उल्लेख 2737 ई. पू. का है। यह चीनी सम्राट शेन नंग के औषधि संबंधी दस्तावेज 'हर्बल' में दर्ज हैं। 'ओल्ड टेस्टामेंट' के 'बुक आफ सैमुअल' में भांग का जिक्र 'हनीवुड' और 'सांग आफ सोलोमन' में 'कैलामस' के रूप में है। हमारे अथर्ववेद में भी भांग का जिक्र पांच पादप साम्राज्यों में से एक के रूप में किया गया है जो हमें चिंताओं से मुक्त करते हैं। प्राचीन रोमन व यूनानी लोगों को भी कैनाबिस का पता था। यूनानी चिकित्सकों डायस्कोराइडिस (50-70 ई.) और गेलन (131-201 ई.) ने भी कान की बीमारियों के लिए भांग की सिफारिश की थी। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने वर्णन किया है कि स्काइथियन लोग इसे दहकते पत्थरों पर डालते थे, जिससे उसका नशीला धुआं वातावरण में फैल जाता था।

नौवीं से बारहवीं सदी के बीच अरब हमलावरों ने कैनाबिस को उत्तरी अफ्रीका, मिस्र, अल्जीरिया और मोरक्को आदि देशों में पहुंचा दिया। 'अलिफ-लैला' जैसे ग्रंथों में भी भांग को काफी महिमामंडित किया गया। दसवीं सदी में भारत में भांग का गुणगान इंद्रकण या देवताओं के भोग के रूप में किया गया। पर जल्दी ही इसके दुष्प्रभाव जाहिर होने लगे। 1378 ई. में अरब के अमीर साउंदाउनी शेकाउनी ने भांग के प्रयोग को गैरकानूनी घोषित किया और जो कोई इसकी खेती या प्रयोग करता पकड़ा जाता तो सजा के तौर पर उसके दांत तोड़ दिये जाते। भारत में भी भांग और गांजे का सेवन करने वाले लोगों को क्रमशः भंगेड़ी और गंजेड़ी कहा जाने लगा। दोनों नाम अपमानजनक लहजे में लिये जाते हैं। अब सन के मादक उत्पादों और उपयोगों पर मादक औषधि एवं लत लगाने वाले पदार्थों का अधिनियम, 1985 के तहत पाबंदी लगा दी गयी है।

भांग, गांजे व चरस के प्रभाव

एक ही पौधे सन से प्राप्त इन तीनों औषधियों के प्रभाव इसमें उपस्थित रसायन

टी. एच. सी. (टेट्राहाइड्रो कैनाबिनाल) के कारण होते हैं। मानव शरीर में टी. एच. सी. की अर्द्ध-आयु (वह समय जिसमें औषधि की कुल मात्रा का आधा नष्ट हो जाता है) लगभग 20 घंटे की है। यानी अगर किसी ने 10 मि. ग्रा. टी. एच. सी. ली है तो 20 घंटे पश्चात् इसकी मात्रा सिर्फ 5 मि. ग्रा. रह जाएगी। अगले 20 घंटे के पश्चात् 2.5 मि. ग्रा.। यह आधी टी. एच. सी. कहां जाती है ? यह शरीर में कम हानिकारक रूपों में बदल जाती है। ये कम हानिकारक पदार्थ—टी. एच. सी. के कायांतरित उत्पाद (मेटाबोलाइट) हैं जो टूटने में अपना अलग समय लेते हैं। इस प्रकार इन औषधियों की एक खुराक को शरीर से पूरी तरह बाहर निकलने में 30 दिन या अधिक का समय लग सकता है। कोई-कोई अनियमित रूप से इन औषधियों का सेवन करते हैं, जैसे हफ्ते में एक बार और चूंकि इनकी एक खुराक 30 दिनों तक शरीर में रहती है, इस साप्ताहिक सेवन का संचयी प्रभाव पड़ता है। इससे धीरे-धीरे एक ऐसा वक्त आता है जब लती व्यक्ति के शरीर में टी. एच. सी. खतरनाक स्तर तक जमा हो जाती है।

सन से प्राप्त औषधियों का सबसे स्पष्ट प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। लती व्यक्ति पहले आनंद का अनुभव करता है (यूफोरिया, बादलों पर चलने का अहसास)। वह आत्मविश्वासी, बातूनी और बात पर अड़ने वाला बन जाता है। यह इन औषधियों के सामूहिक सेवन का एक कारण है। औषधि लेते ही सारा समूह बिना बड़े-छोटे का लिहाज किए एक साथ बोलना शुरू कर देता है।

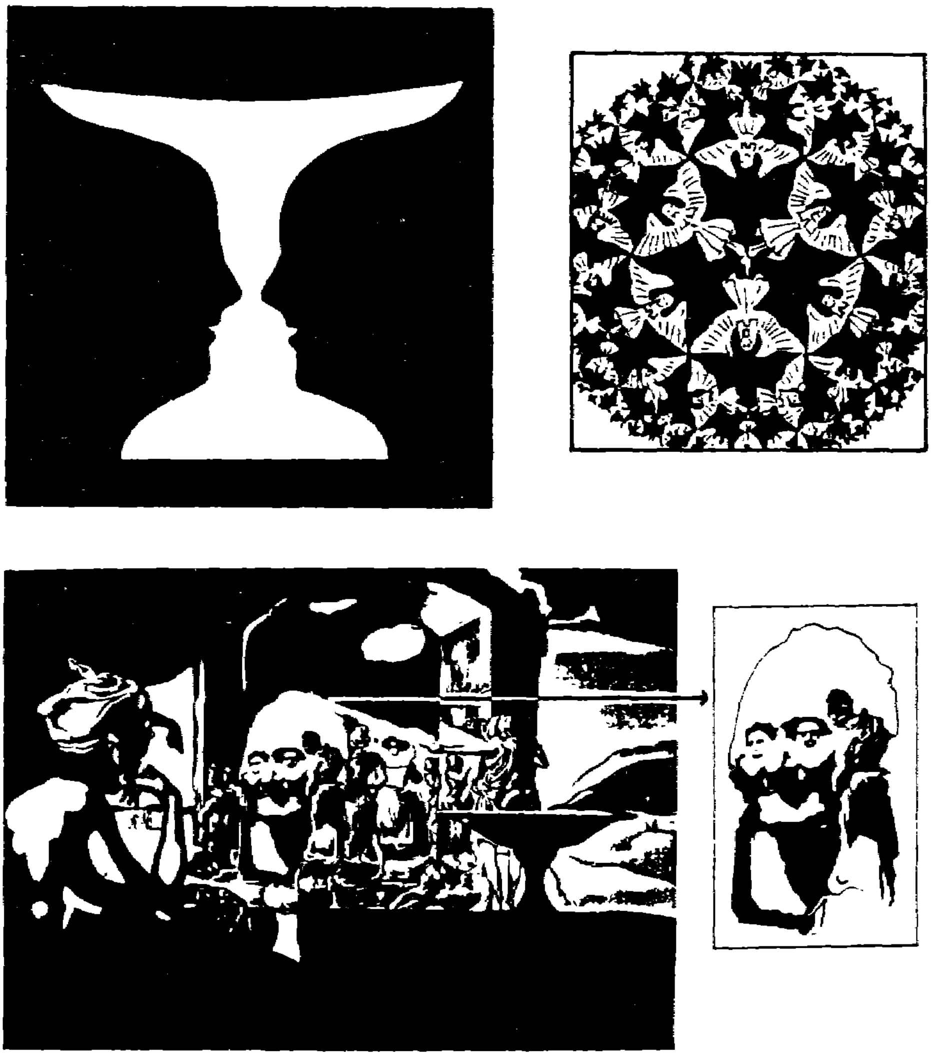
सन से प्राप्त औषधियों का एक अनूठा प्रभाव यह है कि समय काफी 'विस्तृत' महसूस होता है (30 मिनट का अंतराल एक घंटा या अधिक लगता है)। फलस्वरूप, इससे महसूस होता है कि गांजे के नशे में काम तेजी से किया गया है, जो कि गलत है। इस प्रभाव को काल विस्तारण (टाइम ऐक्सपैंशन) या 'काल प्रसार' (टाइम डिलेशन) कहा जाता है।

कई लती यह मानते हैं कि गांजा उनके मस्तिष्क को विस्तृत कर देता है और इसके प्रभाव में वे साफ-साफ सोच सकते हैं और ऐसी चीजें देख सकते हैं जो उनकी आंखें पहले नहीं देख सकती थीं। इस प्रकार सुंदरता के प्रति उनकी संवेदनशीलता भी बढ़ जाती है और वे अपनी कलात्मक प्रतिभा को विकसित व अभिव्यक्त कर सकते हैं।

पर दिक्कत यह है कि सभी उपलब्ध प्रमाण इसका उलटा ही सिद्ध करते

हैं। गंजेड़ी यह मान सकता है कि उसका दिमाग अच्छा चल रहा है और वह अप्रत्याशित रूप से रचनात्मक हो गया है। पर परीक्षण बताते हैं कि यह एक भ्रम है और सारे दावे मिथ्या हैं।

उदाहरण के लिए वैज्ञानिकों ने गांजे के नशे में धुत संगीत देते संगीतकारों के संगीत को रिकार्ड किया। नशे में संगीतकारों का मानना था कि वे अच्छा



चित्र 53(अ तथा ब) : इन चित्रों को एक मिनट तक देखिए। काफी देर तक देखने पर चित्र और पृष्ठभूमि आपस में बदलते लगेंगे। भांग, गांजे या चरस के नशे में यह परिवर्तन जल्दी-जल्दी दिखता है।

संगीत देते हैं, पर जब उन्हें सामान्य हालत में वही संगीत सुनाया गया तो उन्हें खुद पसंद नहीं आया। खासतौर से उनका काल बोध गायब हो गया था। कुछ संगीतकारों ने यह शिकायत भी की कि उनके साथ चालाकी की गयी है और उन्होंने उन संगीत रिकार्डो को असली मानने से इनकार कर दिया।

इस तरह से गांजे के नशे में चित्रकार भी सही ढंग से रेखांकन नहीं कर सके, हालांकि उस समय वे समझते रहे कि वे बहुत अच्छा काम कर रहे थे। गणित के जानकार लोग भी गांजे के नशे में साधारण गुणा-भाग भी नहीं कर सके। एथलीटों की भी शारीरिक क्षमताएं काफी घटी पाई गयीं। यह एक बात गांजे के उपयोग को इतना खतरनाक बनाती है। नशे के गुलाम व्यक्ति को कैसे कोई जिम्मेदारी सौंपी जा सकती हैं। क्या कोई ऐसी गाड़ी में बैठना पसंद करेगा जिसका ड्राइवर गंजेड़ी हो और जो यह मानता हो कि गाड़ी उसके नियंत्रण में है पर वस्तुस्थिति कुछ और ही हो ?

सन से प्राप्त औषधियों का एक सुस्पष्ट प्रभाव यह होता है कि मनुष्य की संवेदनशीलता गहरी हो जाती है। रंग चमकदार दिखते हैं। दृश्यों की गहराई बढ़ जाती है। आकृतियां और स्पष्ट हो जाती हैं और चित्र-पृष्ठभूमि-संबंध और अधिक भिन्न और आसानी से बदलते लगते हैं (देखिए चित्र)। धीमी से धीमी आवाज साफ सुनाई देती है। स्वाद और गंध भीं बढ़े हुए लगते हैं। गर्मी और सर्दी भी अधिक परेशान करती है।

गांजे की बहुत अधिक मात्रा लेने पर एल. एस. डी. के समान भ्रांति उत्पन्न होती है। कुछ लोग आनंद के स्थान पर आतंक (डिसफोरिया) का अनुभव करते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि कौन आनंद का अनुभव करेगा और कौन आतंक का। एक ही लती एक समय में आनंद अनुभव करता है तो दूसरे में आतंक।

सन की क्रियाविधि

अभी तक यह क्रियाविधि वैज्ञानिकों को चकमा देती रही है। कोई नहीं जानता कि भांग, गांजा या चरस किस प्रकार अपना प्रभाव डालते हैं। पर कुछ निश्चित अनुमान लगाए गये हैं। ऐसा ही एक अनुमान है कि इन औषधियों में उपस्थित टी. एच. सी. हमारे शरीर में कुछ विशेष स्थानों से जुड़कर अपना असर दिखाती है। मार्फीन और इससे संबंधित यौगिक भी इसी तरह कार्य करते हैं। हमारे शरीर में वैज्ञानिकों ने ऐसे कई स्थानों की पहचान की है, जिनसे जुड़ने की टी. एच.

सी. की प्रवृत्ति काफी शक्तिशाली होती है। ये स्थान जिगर और मस्तिष्क में पहचाने गये हैं। उन्हें टी. एच. सी. संग्राहक कहा जा सकता है, लेकिन उनके बारे में अधिक जानकारी नहीं है। वर्तमान में इन पर अनुसंधान हो रहा है। उम्मीद है इन संग्राहकों के बारे में हम समय आने पर सभी कुछ जान जायेंगे।

इस प्रभाव के लिए एक और क्रियाविधि सुझायी गयी है। इसे समझने से पूर्व यह उचित होगा कि हम अपने शरीर की कोशिकाओं के बारे में जान लें। हमारी सभी कोशिकाएं एक महीन आवरण-कोशिका झिल्ली से ढकी हुई हैं। इस कोशिका-झिल्ली में तेल जैसे रसायन-वसा (लिपिड) पाये जाते हैं। कोशिका के अंदर का वातावरण बहुत नाजुक होता है और कोशिका को जानना चाहिए कि कौन-सा रसायन उसके अंदर आये और कौन बाहर जाये। अगर किसी तरह कोशिका इन सब जानकारियों को भूल जाये तो सभी अनुपयोगी रसायन अंदर घुस जायेंगे और सभी उपयोगी रसायन बाहर चले जायेंगे। कोशिका-झिल्ली की वसा 'द्वारपाल' का काम करती है। सन इस वसा के साथ इस प्रकार क्रिया करती है कि वसा की कार्यवाही अस्त-व्यस्त हो जाती है। इससे हर तरह के अनुपयोगी रसायन कोशिकाओं में घुस आते हैं। अगर यही क्रिया मस्तिष्क कोशिकाओं में हो तो असाधारण संवेदनाएं निश्चित तौर से उभरेंगी और सन से प्राप्त औषधियां लेने पर ठीक यही होता है।

इन सबके अलावा एक और पद्धति भी सुझायी गयी है। हमारे शरीर में रसायनों का एक समूह होता है जिसे इसके स्रोत के नाम पर प्रोस्टेग्लैंडिंस (पौरुष ग्रंथि से संबंधित) कहा जाता है। यह रसायनों का बहुआयामी समूह। इनके प्रभाव अनगिनत प्रकार के होते हैं। कई औषधियां इन प्रोस्टेग्लैंडिंस के स्तर में बदलाव लाकर अपना असर डालती हैं। उदाहरण के लिए साधारण घरेलू औषधि एस्प्रिन अपना दर्दनाशक प्रभाव हमारे शरीर में प्रोस्टेग्लैंडिंस को कम करके डालती है। सन में मौजूद सक्रिय रसायन टी. एच. सी. भी हमारे शरीर में प्रोस्टेग्लैंडिंस के स्तर को बदल देती है। पर अभी भी स्थिति स्पष्ट नहीं है। टी. एच. सी. कुछ ऊत्तकों में प्रोस्टेग्लैंडिस की मात्रा बढ़ाती है तो कुछ में घटाती है। कुछ भी दृढ़तापूर्वक कहने से पहले काफी कार्य जरूरी है। यह भी संभव है कि टी. एच. सी. उपरोक्त सभी विधियों को मिला-जुलाकर अपना असर दिखाती है। अभी भी तस्वीर पूरी तरह स्पष्ट नहीं है।

पागलपन की दौड़

गांजा पीने वाले में एक दुर्लभ घटना 'फ्लेश-बैक' का भी जिक्र किया गया है। यह एक आश्चर्यजनक घटना है, जिसमें महीनों तक गांजा छोड़ देने के बावजूद अचानक लती व्यक्ति में विषाक्तता के लक्षण उभरते हैं। फ्लैशबैक घटना आमतौर पर एल. एस. डी. व्यसनियों के साथ जोड़ी जाती है। और यहां भी दोनों परिभाषाएं गहराई से जुड़ी हैं। गांजे का आदी महीनों तक गांजा न पीने के बाद भी अचानक हिंसक हो उठता है (जैसे कि उसने गांजे की ढेर सारी मात्रा ले ली हो) और पागलों की तरह सड़क पर दौड़ पड़ता है। यह व्यवहार गांजे के आदी लोगों में आम है और 'रनिंग अमाक' (पागलपन की दौड़) नाम से ज्ञात है। कभी-कभी ऐसा व्यक्ति कोई खतरनाक हथियार, छुरा आदि भी लेकर बवाल कर सकता है, पर 'फ्लैशबैक' खत्म होने पर वह अपने किए पर पछताता भी है। अब वह पुलिस थाने में जाकर सब घटना विस्तार से बताकर आत्मसमर्पण कर देता है। इस खास घटना को 'जेकिल एंड हाइड' प्रभाव भी कहा जाता है। आपको याद होगा कि राबर्ट लुइस स्टीवेंसन के उपन्यास 'द स्ट्रेंज केस आफ डा. जेकिल एंड मि. हाइड' (1886 में लिखा गया) में लंदन के परोपकारी चिकित्सक डा. जेकिल ऐसी औषधि पा जाते हैं जो उन्हें दुष्ट मि. हाइड में बदल देती है। दवा का असर खत्म होने पर वह फिर परोपकारी डा. जेकिल बन जाते थे। एक बार डा. जेकिल, मि. हाइड के रूप में सर डेंवर्स कैरियू की हत्या कर देते हैं। इसके बाद अनोखी घटनाएं होती हैं और उपन्यास का दुखद अंत होता है।

गांजे के और भी कई दुष्प्रभाव होते हैं। इनमें दिल का तेजी से धड़कना (टैकीकार्डिया) शामिल है। गांजा भूख को उत्तेजित करता है और प्रति-वमन औषधि का काम भी करता है।

वस्तुतः टी. एच. सी. चिकित्सकों द्वारा ऐंटिएमेटिक (प्रति-वमन औषधि) के रूप में भी प्रयोग की गयी है। यहां यह भी स्पष्ट करना जरूरी है कि हालांकि टी. एच. सी. कुछ मामलों में औषधि का काम करती है पर इसका अनुचित उपयोग वाकई हानिकारक है। इसके अनुचित उपयोग से व्यक्ति को नुकसान हो सकता है। यहां तक कि उसकी मौत भी हो सकती है।

गांजे के धुएं में भी, सिगरेट के धुएं की भांति, कण ठोस और टार से भरपूर होते हैं। इससे नाक में जलन (राइनाइटिस), गले में चुभन (फैरिंजाइटिस)



चित्र 54 : 'फ्लैशबैक' घटना से 'डा. जेकिल और मि. हाइड' कहानी याद हो आती है।

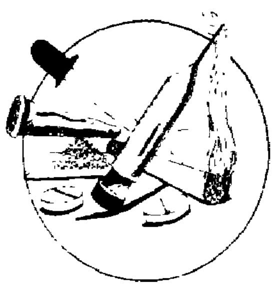
और स्वरभंग उत्पन्न होते हैं। श्वास-नली में फैलाव भी होता है। इस कारण से कुछ अनुसंधानकर्ताओं ने गांजे का प्रयोग दमा रोगियों पर किया (जिनमें श्वसन नली की सिकुड़ने से सांस कठिनाई से आती है)। पर पाया गया कि इसका दमा की अन्य औषधियों के मुकाबले कोई अधिक लाभकारी उपयोग नहीं है। इसके विपरीत व्यवहार संबंधी परेशानियां और पैदा होती हैं। गांजे से आंखें लाल हो जाती हैं।

कई लती यह भी दावा करते हैं कि गांजे से उनकी कामेच्छा भी बढ़ जाती

है। लेकिन यह नियंत्रणों के हट जाने के कारण होता होगा न कि सच्ची वासना के कारण। सच्चाई यह है कि इससे लोगों की उर्वरा शक्ति घट जाती है। वीर्य में शुक्राणुओं की कमी हो जाती है। रक्त में पुरुष यौन हारमोन (टेस्टोस्टिरान) की मात्रा घट जाती है और कुछ पुरुषों में स्तन औरतों की तरह हो जाते हैं (गायनीकोमैस्टिया)।

गांजे के खतरों और लाभों पर अभी भी विवाद बना हुआ है। चिकित्सा विज्ञानी मानते हैं कि :

- कम मात्रा में गांजे के सेवन से सिर्फ आनंद का अनुभव होता है और कुछ नहीं।
- कुछ लती गांजा पीने पर आतंक, अवसाद और अन्य मानसिक विकृतियां का अनुभव करते हैं।
- चिरकालिक लती मानसिक पीड़ा सहते है, पर अगर वे आदत छोड़ दें तो वापस सामान्य जीवन भी जी सकते हैं।
- गांजा किसी भी तरह पूर्णरूपेण सुरक्षित नहीं है, पर यह इतना भयावह भी नहीं है कि इसके शिकार जघन्य अपराध करने लगें।



6

एल. एस. डी. : स्वर्ग (या नरक) का टिकट

भ्रांतिकारक औषधियां (हैल्यूसिनोजेन्स) लोगों में भ्रांति उत्पन्न करती हैं। ये औषधियां, जिनमें एल. एस. डी. प्रमुख है, लोगों के दुनिया को समझने व महसूस करने के ढंग को बदल देती हैं। रंगों के प्रति संवेदनशीलता गहरी हो जाती है, विकृत हो जाती है, या अति यथार्थवादी हो जाती है। लती लोग कहते हैं कि वे स्वर या गंध को देख सकते हैं और दृश्यों को सुन सकते हैं। निर्जीव वस्तुएं भी जीवन से स्पंदित दिखती हैं। यह पूर्ण भ्रम की स्थिति हो सकती है।

एल. एस. डी. या लाइसर्जिक एसिड डिथाइलेमाइड औषधियों के उस समूह से संबंधित है जो भ्रांतिजनक (हैल्यूसिनोजेन्स) नाम से ज्ञात हैं। ये औषधियां व्यक्ति के मिजाज और अहसास को बदल देती हैं। हैल्यूसिनोजेन्स लैटिन एल्यूसिनारी से निकला है जिसका अर्थ है 'मतिभ्रमण' या 'मन में घूमना'। इन औषधियों को कई नामों से जाना जाता है, जैसे कि साइकोटोमिमेटिक (मन अनुहारी), साइकेडेलिक (मनोविकृति), इल्यूजनोजेनिक (मरिचिकाजनक) या मिस्टिकोमिमेटिक (रहस्य अनुहारी) औषधियां। कुछ लोग इन्हें मनोविस्तारक औषधियां कहना पसंद करते हैं।

हैल्यूसिनोजेन्स के मानसिक व मनोवैज्ञानिक प्रभाव अन्य मादक औषधियों से बिल्कुल अलग होते हैं। इन औषधियों का एक विशेष लक्षण लती व्यक्ति के मस्तिष्क में तरह-तरह के चित्रों का बनना है। औषधि लेने के आठ-दस घंटे बाद तक नींद आना लगभग असंभव है। आतंक का अहसास साधारण शिकायत है। चेहरा लाल हो जाता है और शरीर रोमांचित हो उठता है या कांपने लगता है।

भ्रांतिकारक औषधियों के प्रकार

जैव रसायन की दृष्टि से हैल्यूसिनोजेन्स कई प्रकार के होते हैं पर उन्हें मोटे तौर पर तीन समूहों में बांटा जा सकता है—पहला समूह है इंडोलऐलाइलैमीन या आइ. ए. ए. जो कि इंडोल (नाइट्रोजनयुक्त वलय) आधारित होती हैं, जिनमें एक से अधिक वलय होते हैं। इस समूह में एल. एस. डी. साइलोसीन, साइलोसिबीन, डी. एम. टी. (डाइमिथाइलट्रिप्टार्मीन) और हरमाला अल्कलायड शामिल हैं। दूसरा समूह फिनाइलइथाइलैमीन या पी. इ. ए. है। इसमें भी एक ही वलय होता है। इसमें मेस्कालीन शामिल है। तीसरा समूह फिनाइलिसोप्रोपिलैमीन या पी. आइ. ए. है। इसमें भी एक ही वलय होता है पर इसकी बाकी संरचना बेहद जटिल है। इस समूह में तथाकथित 'नकली' औषधियां (डिजाइनर ड्रग्स) शामिल हैं, जिनसे हम पहले अध्याय मे परिचित हो चुके हैं। इस समूह में शामिल कुछ औषधियां है—डी. ओ. एम. (या एस. टी. पी.) एम. डी. ए., डी. ओ. इ. टी., एम. एम. डी. ए. और टी. एम. ए. आदि। ये लंबे व जटिल रासायनिक नामों के संक्षिप्त नाम हैं जैसे कि डी. ओ. एम. का पूरा नाम है 2.5-डाइमीथाक्सी-4-मिथाइल एम्फीटामीन। इनमें से कुछ नामों को व्यापारिक नामों में बदल दिया गया है जैसे कि एम. डी. ए. को 'ऐडम' या आदम नाम दिया गया है।

एल. एस. डी.

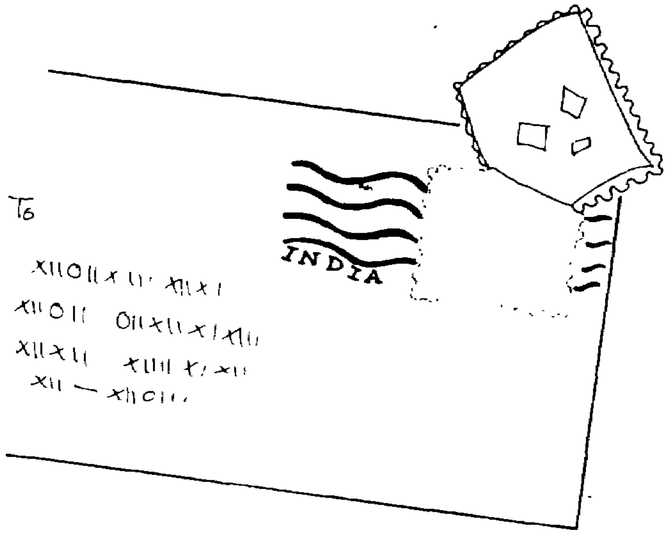
मनुष्य को ज्ञात सबसे अधिक असरकारक औषधियों में से एक एल. एस. डी. है। इसकी मात्र 25 माइक्रो ग्राम खुराक ही प्रभावशाली है। एल. एस. डी. मस्तिष्क पर किस प्रकार असर डालती है, यह वर्तमान में ठीक-ठीक पता नहीं है। ऐसा लगता है कि यह मस्तिष्क में रासायनिक परिवर्तन लाती है और न्यूक्लिक अम्लों के साथ जुड़ जाती है (न्यूक्लीय अम्ल प्राकृतिक यौगिक हैं जिनमें कोशिकाओं की जैविक क्रियाओं की रूपरेखा अंकित होती है)। एल. एस. डी. का सेवन बंद करने पर कोई अपनयन लक्षण भी प्रकट नहीं होते हैं यानी इससे शारीरिक निर्भरता भी विकसित नहीं होती है। पर इस औषधि के प्रति सहनशीलता जल्दी विकसित होती है और कुछ ही हफ्तों में पूरे असर के लिए 500 माइक्रोग्राम से अधिक खुराक की जरूरत पड़ने लगती है। तब भी यह खुराक अन्य मादक औषधियों की तुलना में काफी कम है। करीब 30 ग्राम एल. एस. डी. ढाई लाख से भी अधिक लोगों के लिए काफी है। इस सचाई से ऐसी

कई झूठी कहानियां निकली हैं जिनमें जब शहर के पानी के स्रोत्र में किसी ने 30 ग्राम एल. एस. डी. मिला दी तो सारा का सारा शहर ही पागलों का-सा व्यवहार करने लगा।

तरल रूप में एल. एस. डी. की सूक्ष्म मात्रा भी काफी प्रभावकारी होती है। सुई की नोक पर औषधि की एक बूंद मनचाहा प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम है। अन्य औषधियों के विपरीत एल. एस. डी. नवयुवकों की औषधि रही है। किशोरावस्था के बाद इस औषधि का प्रयोग दुर्लभ है। 1960 के दशक में स्कूल व कालेज के छात्रों के बीच एल. एस. डी. का प्रयोग चरम सीमा पर था क्योंकि वे इससे ब्रह्मांडीय शक्तियों या ईश्वर का साथ पाने का (निष्फल) प्रयास कर रहे थे। वस्तुतः साइकेडेलिक शब्द (एल. एस. डी. का समूह) यूनानी शब्दों साइके यानी 'आत्मा' और डेलास यानी 'दृश्य' शब्दों से निकला है। अर्थात् एल. एस. डी. आत्मा के दर्शन कराती है। कुछ लोगों ने समाज में विद्रोह के लिए, आत्मविवेचन या मात्र कल्पनालोक में विचरण के लिए एल. एस. डी. लेना शुरू किया। कुछ ने एल. एस. डी. को ध्यान और रहस्यमयी संसार की खोज करने का शार्टकट समझा। संक्षेप में, एल. एस. डी. का हरेक के लिए अलग-अलग मतलब था, हालांकि इसका मुख्य प्रभाव सभी में एक जैसा ही था। यह ऐसे क्रियाकलापों में प्रयुक्त हुई जहां मदहोशी का आलम जरूरी था और यह एल. एस. डी. भरपूर मात्रा में उत्पन्न कर देती थी।

एल. एस. डी. कई रूपों में प्रयुक्त होती है जैसे कि घर के बने कैप्सूल या गोलियां या फिर मिश्री, मीठी गोलियां, च्यूइंगम, सोख्ता कागज या डाक टिकट आदि। आमतौर पर मुंह से लिया जाने वाला पाउडर पानी या कोका पेय में घोला जा सकता है या मिठाई या गोली में मिलाया जा सकता है। एल. एस. डी. से सोख्ता कागज को सराबोर किया जा सकता है। बाद में इस कागज के टुकड़े काट कर चूसे जा सकते हैं। एल. एस. डी. का यह रूप 'ब्लोटर एसिड' नाम से विख्यात है।

एल. एस. डी. को प्रयोगशाला में बनाना आसान है। इसकी एक छोटी-सी खुराक, जो 100 रु. में मिलती है, को बनाने में मात्र एक रुपया खर्च आता है। फिर भी औषधि बाहर बनाई जाती है और भारत में तस्करी द्वारा लाई जाती है। इसकी अत्यधिक उच्च प्रभावकारिता, रंगहीनता स्वादहीनता, गंधहीनता व जल में विलेयता इसके फैलाव में सहायक हैं। हाल ही में यह कल्पनातीत रूपों में भी मिलने लगी है, जैसे—चीनी के क्यूब, जानवरों के बिस्कुट या च्यूइंगम के ऊपर इसकी बूंदें। यह जिलेटिन वर्गों (विंडोपेन्स) के रूप में भी उपलब्ध है। ये



चित्र 55 : विंडोपेन्स के रूप में एल. एस. डी. डाक टिकट के पीछे छिपाई गयी है।

विंडोपेन्स इतने छोटे होते हैं कि इन्हें बड़ी सफाई के साथ डाक टिकटों के पीछे लगाकर लिफाफों पर चिपकाया जा सकता है। इस प्रकार छिपाई गयी एल. एस. डी. पुलिस आसानी से ढूंढ़ लेती है (रेखाचित्र देखिए)। डाक टिकट विधि ने इस आदर्श वाक्य को जन्म दिया—'टेक ए लिक एंड मेक ए ट्रिप' यानी चाटो ओर घूम जाओ।

एल. एस. डी. से सराबोर लोगों में प्रचारित डेकाल इसके रूपों में नवीन बढ़ोतरी है। डेकाल कार्टून पात्रों जैसे मिकी माउस, शरारती डेनिस आदि के रंगीन चित्र या डिजाइन हैं जिन्हें कोई भी जब चाहे जहां चाहे चूस सकता है।

अधिकतर एल. एस. डी. मुंह से ली जाती है, पर कभी-कभार इसे इंजेक्शन द्वारा या धूम्रपान के जरिए भी लिया जाता है। धूम्रपान से उत्पन्न नशा या 'हाई' अधिकतर लोगों को संतुष्ट नहीं कर पाता है।

प्रयोग की विधियां

अन्य मादक औषधियों के विपरीत एल. एस. डी. मिलावटों से सुरक्षित रही है; जैसे कि हेराइन में भारी मात्रा में मिलावट होती है और इसके कई नमूने तो असल में हेरोइन होते ही नहीं हैं। इसका एक कारण हेरोइन का महंगा होना है। दूसरी ओर एल.एस.डी. कम लागत में तैयार हो जाती है, इसलिए इसमें मिलावट के आसार कम होते हैं। दरअसल अन्य मादक औषधियों जैसे कि मेस्कालीन,

साइलोसिबीन (या टी. एच. सी.) के नमूने वस्तुतः एल. एस. डी. हैं।

एल. एस. डी. के प्रयोग की विधियां असाधारण और उल्लेखनीय हैं। अधिकांश लती औषधि लगातार लेने की बजाए कुछ समय के अंतराल पर अक्सर सप्ताहांतों में लेते हैं। आमतौर पर कई मिली-जुली औषधियों का दुरुपयोग होता है जैसे कि एल. एस. डी. का। लती इसके साथ गांजा या एंफीटामीन ले सकता है। अन्य भ्रांतिजनक औषधियां, जैसे—मेस्कालीन और साइलोसिबीन के लिए भी प्रति सहनशीलता विकसित हो जाती है पर फेनसाइक्लिडीन या चरस आदि में प्रतिसहनशीलता नहीं विकसित हो पाती है। एल. एस. डी. के चिरकालिक लती 'एसिड हेड्स' के नाम से संबोधित किए जाते हैं।

एल. एस. डी. की कहानी

एल. एस. डी. की कहानी राई के दानों से शुरू होती है जो कि खेत में क्लेविसैप्स परप्यूरिया नामक फफूंद से संदूषित हो जाते हैं। यह फफूंद नमीदार गर्म मौसम में अनाज के खेतों में साधारणतया दिखती है। हालांकि यह फफूंद सभी अनाजों को प्रभावित करती है पर राई सर्वाधिक प्रभावित होती है। इसके बीजाणु हवा या कीटों द्वारा फैलते हैं और राई के फूल में अंडाशय पर गिरते हैं। अंडाशय में ये बीजाणु अंकुरित होते हैं और इनके कवक तंतुओं से एक एंजाइम निकलता है जिसकी सहायता से ये अंडाशय के निचले भाग में प्रवेश कर जाते हैं। एंजाइम के दानों के ऊत्तक गल जाते हैं और पीले रंग का चिपचिपा पदार्थ—हनीड्यू बनता है। इसकी ओर कीट आकर्षित होते हैं और इसके बीजाणुओं को राई की दूसरी बालियों में फैला देते हैं। धीरे-धीरे कवक तंतु बाली में सारी जगह घेर लेते हैं और



चित्र 56 : राई की बाली का फफूंद से ग्रस्त काला भाग।



चित्र 57 : अर्गट-ग्रस्त राई के दाने परिवर्द्धित करने पर मुर्गे की खांग जैसे दिखते हैं।

जामुनी रंग के मुड़े हुए टुकड़ों—स्क्लेरोटियम का रूप ले लेते हैं। राई की इस बीमारी और जामुनी कठोर टुकड़ों को राई का अर्गट कहते हैं। अर्गट नाम पुरानी फ्रांसिसी भाषा अरगाट से निकला है जिसका अर्थ है—मुर्गे के खांग, क्योंकि ये मुर्गे के खांगों से मिलते-जुलते हैं। इस बीमारी का पुराना नाम 'खांगी राई' था।

मध्य काल में कई गरीब किसानों को मजबूरी में इन रोगग्रस्त दानों को खाना पड़ता था जिससे उनमें एक आश्चर्यजनक बीमारी पैदा होती थी जिसे 'इर्गोटिज्म' या 'सेंट एंथोनीज फायर' (संत एंथोनी की आग) कहते थे। इस बीमारी के शिकार लोग हाथ-पैर में तेज दर्द और ऐंठन महसूस करते थे। शुरुआत में ऐसा लगता जैसे हाथ-पैर आग पर रखे हों और अंततः वे काले पड़ कर गिर जाते। कई बदकिस्मत किसानों के तो दोनों हाथ व दोनों पैर गिर जाते थे। ऐसा माना जाता था कि संत एंथोनी की पवित्र गुफा की तीर्थयात्रा करने से राहत मिलती है। अतः इस बीमारी का नाम 'संत एंथोनी की आग' पड़ गया।

अब यह पता चला है कि यह बीमारी अर्गट में मौजूद विषाक्त रसायनों एर्गोटामीन और एर्गोनोबीन के कारण होती थी। इन रसायनों से शरीर में निष्कोण मांसपेशियां प्रचंडता के साथ सिकुड़ती थीं क्योंकि रक्त वाहिकाओं की भित्ति



चित्र 58 : संत एंथोनी के नाम पर संत एंथोनी की आग का नाम पड़ा।

मांसपेशियां निष्कोण होती हैं। अंततः वे भी सिकुड़ती थीं जिससे शरीर के अंगों में रक्त प्रवाह घट जाता था। हम सभी जानते हैं कि अगर अंग में रक्त की आपूर्ति न हो तो वहां की कोशिकाएं मर जाती हैं। इससे अंग विशेष का रंग काला पड़ जाता है। इस बीमारी का तकनीकी नाम गैंग्रीन है। प्राचीन काल में यह समझा जाता था कि अंगों का काला होना अदृश्य आग की वजह से है।

औरतों के गर्भाशय में भी निष्कोण मांसपेशियां होती हैं और उनके सिकुड़ने से गर्भाशय में रखी चीज बाहर निकल जाती है। इसी कारण से गर्भावस्था में अर्गट खाने से गर्भपात हो जाता है। पर यदि प्रसव के समय किसी महिला को अर्गट दिया जाये तो गर्भाशय की मांसपेशियों में संकुचन के कारण प्रसव में आसानी होती है। अर्गट से प्रसव के बाद गर्भाशय का रक्त स्राव भी रुक जाता है। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में कई चिकित्सक प्रसव क्रियाओं में अर्गट का प्रयोग करते थे। गर्भाशय में संकुचन के लिए उत्तरदायी रसायन एर्गोनोबीन सन् 1835 में अर्गट से निकाला गया था। इसके बाद से अर्गट बहुत सारी लाभदायक औषधियों का भंडार साबित हुआ।

अब तक जो हुआ अच्छा हुआ पर अर्गट का एल. एस. डी. से क्या संबंध ? 1930 के दशक के अंत में स्विट्जरलैंड के प्रो. आर्थर स्टाल ने अर्गट ने अल्कलायडों के अपने अध्ययन के दौरान यह गौर किया कि इनके अणुओं का एक भाग सभी अल्कलायडों में समान है। यह लाइसर्जिक अम्ल का अणु था। क्या वे इस खंड में रासायनिक सुधार कर नयी और बेहतर औषधियां नहीं बना सकते थे ? औषधियां जिनके लाभकारी प्रभाव तो हों, पर रक्त वाहिकाओं के संकुचन जैसे हानिकर प्रभाव न हों ? अगर वे सिर्फ इतना कर सकें तो लाभकारी औषधियों का नया अंबार लग जायेगा। प्रो. स्टाल ने अपना आगे का



चित्र 59 : एल. एस. डी. के खोजकर्ता डा. हाफमैन।

कार्य सैंडोज लि., बेसले के प्राकृतिक उत्पाद विभाग के डा. एल्बर्ट हाफमैन को सौंप दिया।

डा. हाफमैन ने योजनाबद्ध तरीके से कई नए यौगिकों का निर्माण किया, सभी लाइमर्जिक अम्ल के उत्पाद थे। इन्हीं में एक था लाइसर्जिक एसिड डाईथाइलामाइड या एल.एस.डी.। यह प्रो. अर्नस्ट राथलिन को परीक्षण के लिए दिया गया। चूंकि यह लाइसर्जिक अम्ल अमाइड शृंखला का 25वां यौगिक था, उन्होंने इसे नाम दिया एल.एस.डी.–25। रायलिन ने इस नये रसायन का भली-भांति परीक्षण किया और यह पाया कि इसका गर्भाशय पर विशेष संकुचन प्रभाव है। यह तो पहले से तय था, पर असाधारण बात यह थी कि इस औषधि से कुछ जंतुओं में उत्तेजना के विशेष लक्षण उत्पन्न हुए। यह सन् 1938 की घटना है। इसके बाद द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया और एल. एस. डी. पर कार्य स्थगित कर दिया गया।

सन् 1943 में डा. हाफमैन ने एल. एस. डी. पर दुबारा अनुसंधान शुरू किये। इस बार उन्होंने खुद पर परीक्षण किया। 18 अप्रैल, 1943 की शाम 4.20 बजे उन्होंने 250 माइक्रोग्राम एल. एस. डी. निगल ली। इसका घोल बेस्वाद था। 4.50 बजे सायं तक वे ठीक-ठाक थे; 5.00 बजे उन्होंने मामूली चक्कर, बेचैनी, ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई, दृश्य-भ्रम और जोर-जोर से हंसने की इच्छा महसूस की। इसके बाद वे अपने लक्षण नहीं लिख सके। वस्तुतः उपरोक्त शब्द भी उन्होंने काफी कठिनाई में लिखे थे; उन्होंने अपने सहायक को बुलाया और उसे घर छोड़ देने को कहा। दोनों साइकिल चलाते हुए घर पहुंचे। बाद में उन्होंने याद करते हुए कहा, "मेरी दृष्टि मेरे आगे डोल रही थी और वस्तुएं मजाकिया शीशे में छाया की भांति टेढ़ी-मेढ़ी दिख रही थीं। मुझे ऐसा महसूस हो रहा था कि मैं अपनी जगह से हिल भी नहीं सकता। हालांकि मेरे सहायक ने मुझे बाद

में बताया था कि मैं बड़ी तेजी से साइकिल चला रहा था।"

अगले कुछ घंटों के दौरान उन्होंने बड़े अटपटे लक्षण महसूस किये, जिन्हें उन्होंने कुछ ऐसे बताया है, "सिर में चक्कर, दृष्टि-भ्रम, चारों ओर मौजूद लोगों के चेहरे अटपटे रंगीन मुखौटों जैसे, विशेष बेचैनी, रह-रहकर लकवे का अहसास, बीच में ऐसा लगना जैसे सिर, हाथ-पैरों और सारे शरीर में कोई भारी चीज भर गयी हो; गले का सूखापन और जकड़न; अपनी हालत की स्पष्ट पहचान, जिसमें मैं किसी तटस्थ प्रेक्षक की तरह, कभी-कभी देखता हूं कि मैं अर्द्धविक्षिप्त भाव से चिल्लाना या कुछ अस्पष्ट शब्द बकने लगा था। कभी-कभी लगता है कि मैं अपने शरीर से ही बाहर निकल गया हूं।"

यह एल. एस. डी. के प्रभावों का काफी सही वर्णन है। अब यह ज्ञात है कि लक्षणों को प्रकट होने में करीब 30 मिनट लगते हैं। दो या चार घंटे में अपने चरम पर पहुंचते हैं और आठ से बारह घंटे में गायब हो जाते हैं। कुछ लोगों में अन्य लोगों की अपेक्षा भ्रांति तीव्र होती है। एल. एस. डी. के अधिकांश खतरे इसके कारण उत्पन्न वातावरण की गलतफहमी में निहित हैं। हालांकि किस्से-कहानियों की भांति अक्सर नहीं पर कभी-कभी लोग खिड़की से बाहर कूद जाते हैं, चलती गाड़ी के आगे खड़े हो जाते हैं, आग पर चलने लगते हैं या समुद्र पर चलने लगते हैं। एम्फीटामीन की भांति एल. एस. डी. से भी अत्याचार की भावना पैदा हो सकती है, जिससे लोग आक्रामक या हिंसक हो उठते हैं। एल. एस. डी. के अन्य प्रभावों में मानसिक विकृतियां शामिल हैं जिनका चिकित्सक द्वारा या अस्पताल में इलाज जरूरी है। ऐसा कितनी बार होता है, तय करना मुश्किल है।

एल. एस. डी. द्वारा उत्पन्न लक्षण पागलपन के लक्षणों से इतने मिलते-जुलते थे कि कुछ चिकित्सक मानने लगे कि मानसिक रोगों का प्रभावकारी इलाज अब निकलने ही वाला है। इसके बाद उन्होंने एल. एस. डी. का प्रयोग कुछ बीमारियों में किया भी, पर परिणाम निराशाजनक ही रहे। एल. एस. डी. का उपयोग अल्कोहल और अफीम की लत छुड़ाने के लिए, ओटिज्म (बच्चों की दुर्लभ बीमारी जिसमें वे अन्य लोगों से संचार नहीं कर पाते) में, शीर्ष कैंसर में पीड़ा से मुक्ति के लिए और मानसिक विकार के इलाज में किया गया। शुरू-शुरू में कुछ उत्साहजनक परिणाम मिले, पर अंततः एल. एस. डी. की चिकित्सकीय उपयोगिता सिद्ध नहीं हो पायी।

अच्छे-बुरे ट्रिप

एल. एस. डी. जैसी साइकेडेलिक (आत्मा के दर्शन करानेवाली) औषधियों के प्रभाव में अनुभवों को ट्रिप जैसी लोकप्रिय अभिव्यक्ति दी गयी है। ट्रिप अच्छे व बुरे दोनों होते हैं। बुरे-ट्रिपों को 'बमर' या 'बम ट्रिप' के नाम से भी जाना जाता है। अच्छे-ट्रिप में खुशनुमा कल्पनाएं तथा भावनात्मक अहसास शामिल हैं। बुरा ट्रिप या 'बमर' इसका ठीक उल्टा है। महसूस किये जा रहे बिंबों से आतंक, डर और भय उत्पन्न हो सकता है। चूंकि यह भविष्यवाणी करना असंभव है कि कौन अच्छा ट्रिप महसूस करेगा और कौन बुरा, एल. एस. डी. का सेवन रसायनिक बाजी लगाने के समान है। एल. एस. डी. और एम्फीटामीन जैसी औषधियों का मिश्रण ऐसी भयावह क्रिया उत्पन्न कर सकता है जिसके अनुभव को लोग डेथ ट्रिप (मौत का ट्रिप) कहते हैं।

फ्लैशबैक

एल. एस. डी. प्रयोग की एक विशेष पहचान फ्लैशबैक होता है जिसमें हम गांजे या चरस के संदर्भ में भी परिचित हो चुके हैं। एल. एस. डी. का सेवन बंद करने के हफ्तों या महीनों बाद भी 'फ्लैशबैक' हो सकता है। यह सामान्य एल. एस. डी. ट्रिप की तरह हो सकता है पर बिना औषधि लिये होता है। यह क्यों होता है, अभी एक रहस्य है। इसका एक कारण शायद यह है कि एल. एस. डी. मस्तिष्क को रासायनिक रूप से बदल देती है। फ्लैशबैक के 50% मामलों में कोई तात्कालिक कारण नहीं मिलता है। बाकी में पाया गया कि चमकदार प्रकाश, तेज आवाज, मदिरापान, गांजे का धूम्रपान या किसी उत्तेजना के कारण फ्लैशबैक हुआ। सभी चिरकालिक एल. एस. डी. व्यसनियों में करीब 5 प्रतिशत फ्लैशबैक से पीड़ित पाये गये।

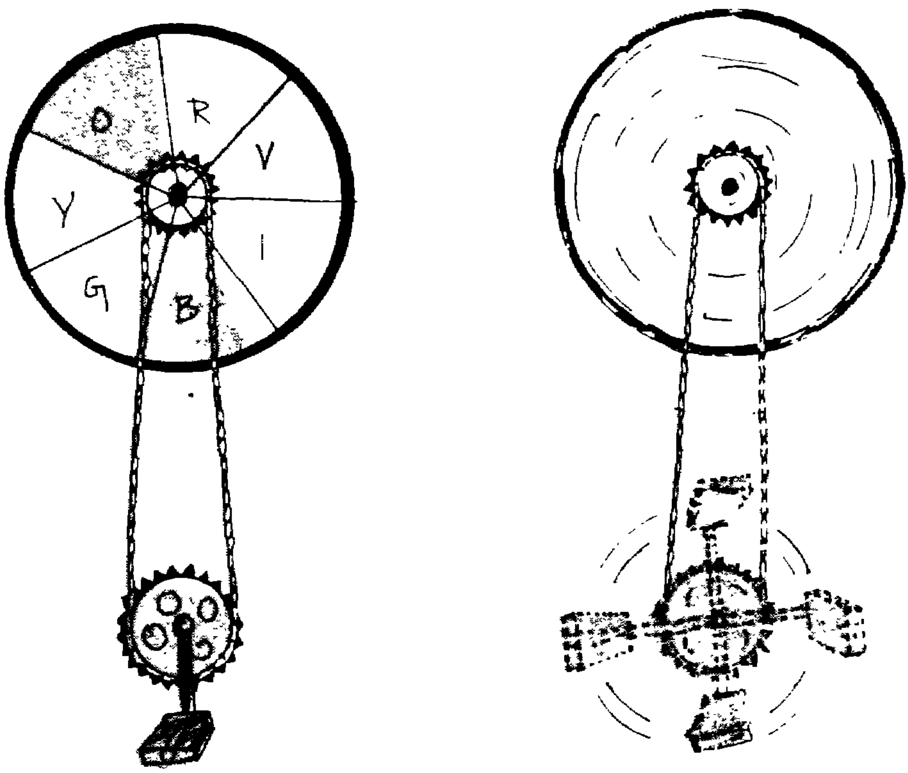
एल. एस. डी. के प्रभाव

हाफमैन ने एल. एस. डी. के कई प्रभावों का काफी रोचकता से वर्णन किया है। बाद की खोजबीन बताती है कि ये अहसास बदले हुए भी हो सकते हैं। रंग अधिक विविधतापूर्ण लगते हैं, चीजों की रूप-रेखा स्पष्ट और वस्तुएं सामान्य से बड़ी या छोटी लगने लगती हैं। उन्हें गुलिवर प्रभाव कहा जा सकता है (आपको याद होगा कि गुलिवर बौनों के देश लिलिपुट और दैत्यों के देश ब्राब्डिंगनैग गया



चित्र 60 : 'गुलिवर प्रभाव' जिसमें नशा व्यक्ति अपने को बौने लिलिपुट वासियों के बीच दैत्य की तरह महसूस करता है।

था)। आंखें बंद करने पर चटख रंगों वाली आकृतियां दिखती रहती हैं। एक अनूठा लक्षण है सिनैस्थीसिया यानी संवेदनाओं का जुड़ना। इसमें एक उद्दीपन से बिल्कुल भिन्न संवेदना उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए, संगीत से आंखों के आगे किस्म-किस्म के रंग दिखते हैं, अथवा तस्वीर या घूमते हुए वर्णचक्र देखने से संगीत सुनाई देता है। वस्तुएं और लोग टेढ़े-मेढ़े दिखते हैं। सारा शरीर या कोई एक हाथ-पैर बहुत बड़ा या बहुत छोटा दिखता है। इसे 'ऐलिस इन

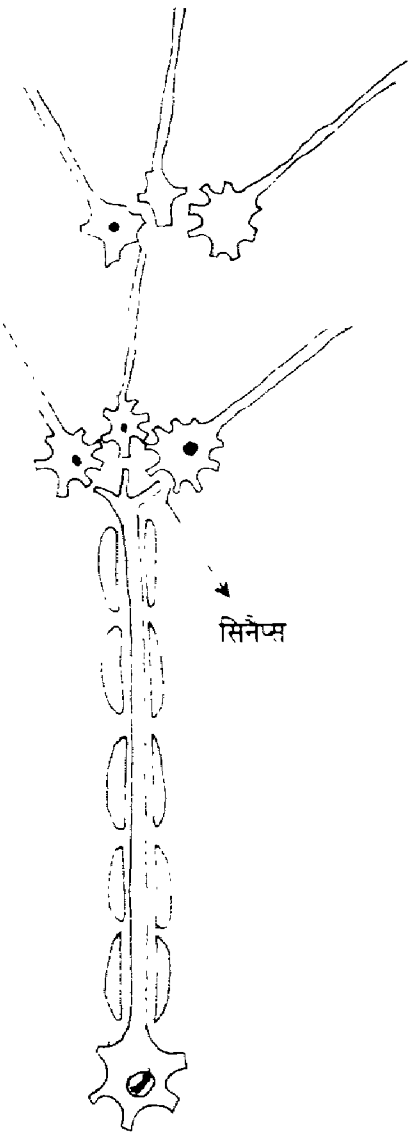


चित्र 61 : रंगीन वर्णचक्र घुमाने से एल. एस. डी. के प्रभाव में सिर में संगीत सुनाई देता है।

वंडरलैंड' (आश्चर्यलोक में एलिस प्रभाव) कहा गया है।

शरीर पर अन्य प्रभाव भी उल्लेखनीय हैं। रक्तचाप कुछ बढ़ जाता है, दिल तेजी से धड़कता है, आंख की पुतलियां फैल जाती हैं (इससे और अधिक प्रकाश आंख में घुसता है जो अधिक दुखदायी होता है), त्वचा और आंखें लाल हो जाती हैं, भूख मर जाती है, शरीर के रोम खड़े हो जाते हैं, मुंह में लार का भरना, आंसू आना, कंपकंपाहट, लड़खड़ाते हुए चलना और उल्टी होना ऐसे कुछ लक्षण हैं। शरीर का तापमान बढ़ता है (खरगोशों में यह बहुत अधिक बढ़ जाता है) और यह एल. एस. डी. के मुख्य लक्षणों में से एक है। कुछ मामलों में शरीर में ऐंठन होती है। कभी-कभी मानसिक बीमारी के लक्षण भी दिखते हैं (विष मनोविकृति)। करीब 50 मि. ग्रा. एल. एस. डी. एक वयस्क मनुष्य को मारने में सक्षम है।

सन् 1967 में एक वैज्ञानिक कोहेन ने मनुष्य की श्वेत रक्त कोशिकाओं

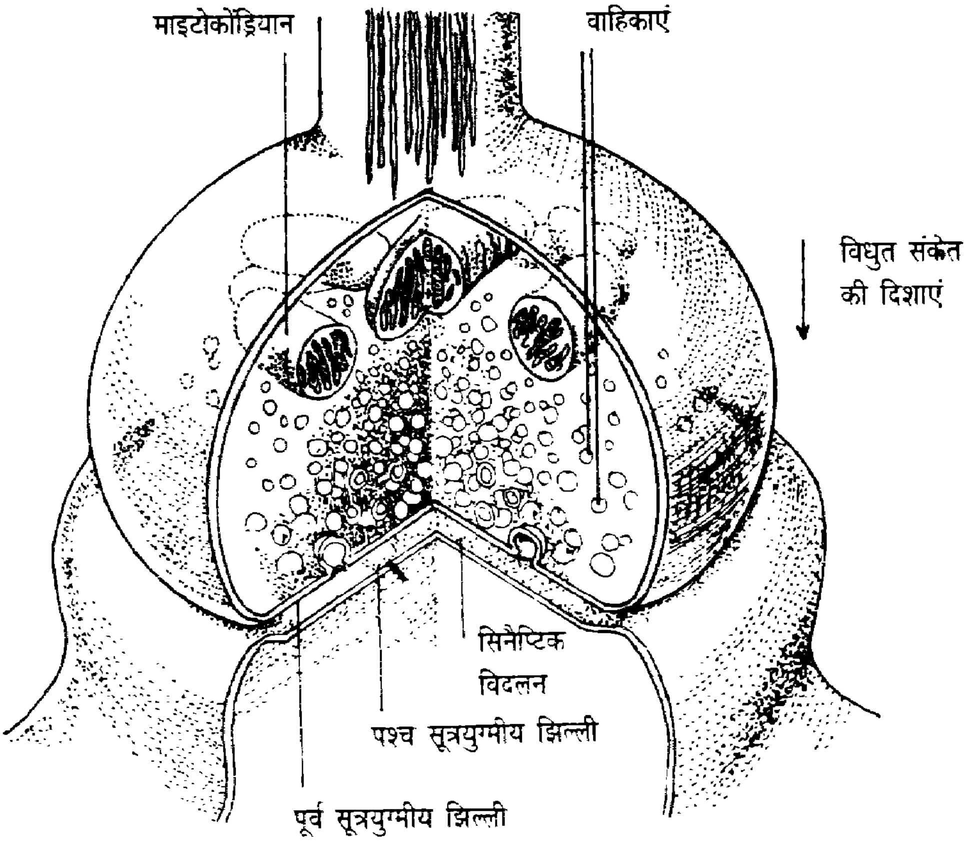


चित्र 62 : सिनैप्सेस (सूत्रयुग्मन)—तंत्रिकाओं के बीच जोड़।

में एल. एस. डी. के कारण क्रोमोसोमों में टूट-फूट देखी। यह खोज जब साइंस पत्रिका में छपी तो इसे व्यापक प्रचार मिला। आपमें से कुछ लोगों को कुछ वर्ष पूर्व घटित भयावह थैलिडोमाइड त्रासदी याद होगी जिसमें गर्भवती औरतों द्वारा नींद के लिए ली गयी नयी औषधि थैलिडोमाइड के कारण हाथ-पैर विहीन बच्चों का जन्म हुआ था। इससे आम लोगों के बीच भारी हड़कंप मच गया था। क्रोमोसोमों में टूट-फूट निश्चित ही एक भयावह परिवर्तन है क्योंकि इससे न सिर्फ आपको नुकसान होता है बल्कि आपकी आने वाली संतान भी उसी बुरी तरह प्रभावित हो सकती है। तब से व्यापक स्तर पर अध्ययन किये गये हैं। पर अभी तक परिणाम अनिश्चित है। एल. एस. डी. को गर्भपात, बच्चों में विकृतियों, कैंसर आदि के साथ जोड़ा गया है पर अभी तक कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

एल. एस. डी. कैसे कार्य करती है

मस्तिष्क में सेरोटोनिन नामक एक विशेष रसायन होता है, जो कि तंत्रिका कोशिकाओं के बीच संदेशवाहक का कार्य करता है। तंत्रिका कोशिका ऐसे तारों (वायर) के समान है जो आपस में जुड़े नहीं हैं। तंत्रिकाओं के बीच सूक्ष्म खाली स्थान होते हैं, जिन्हें सिनैप्सेस (सूत्रयुग्मन) कहा जाता है। अगर सेरोटोनिन (और कुछ अन्य विशेष रसायन) न होते तो तंत्रिकाओं में प्रेषित वैद्युत संकेत अगली तंत्रिका तक न पहुंचता। जब विद्युत संकेत तंत्रिका के सिरे पर पहुंचता है तो वह कुछ सेरोटोनिन अणु

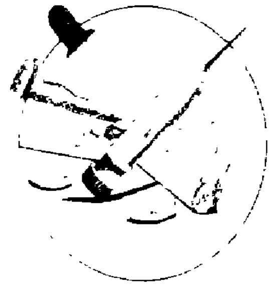


चित्र 63 : सिनैप्स (सूत्रयुग्मन) का अति परिवर्द्धित दृश्य : मूठ जैसी दो संरचनाएं असल में दो तंत्रिकाओं के सिरे हैं। ऊपरी मूठ में बुलबुले जैसी संरचनाएं सेरोटोनिन युक्त वाहिकाएं हैं। यही रसायन मस्तिष्क में तंत्रिका संकेत के प्रेषण के लिए उत्तरदायी हैं।

छोड़ता है जो सिनैप्टिक (सूत्रयुग्मीय) खाली स्थान में भर जाते हैं। ये सेरोटोनिन अणु दूसरी तंत्रिका तक तेजी से भागते हैं, वहां कुछ विशेष संग्राहकों से जुड़ जाते हैं और नवीन विद्युत संकेत उत्पन्न करते हैं (रेखाचित्र देखिए)।

रासायनिक रूप से एल. एस. डी. सेरोटोनिन के समान है। इस प्रकार यह सेरोटोनिन संग्राहकों से जुड़ जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि सेरोटोनिन मस्तिष्क में नये संकेत नहीं उत्पन्न कर पाती। प्रभावी रूप से मस्तिष्क की अधिकांश कार्यवाही रुक जाती है या बुरी तरह से अस्तव्यस्त हो जाती है। जब एल. एस. डी. को ऐसी औषधियों के साथ दिया गया जो सेरोटोनिन के स्तर को कम करती है, तब एल. एस. डी. के प्रभाव सुस्पष्ट और लंबे समय तक

रहते हैं। वहीं दूसरी ओर, जब एल. एस. डी. को ऐसी औषधियों के साथ दिया गया जो मस्तिष्क में सेरोटोनिन उत्पन्न करते हैं, तो एल. एस. डी. के प्रभाव घट जाते हैं। ये प्रयोग इस बात की पुष्टि करते हैं कि एल. एस. डी. सेरोटोनिन से लड़कर अपना प्रभाव उत्पन्न करती है।



7

पी. सी. पी. : फरिश्तों की धूल

पी. सी. पी. या फेनसाइक्लिडीन अभी हाल में औषधि परिदृश्य की अग्रिम पंक्तियों में शामिल हुई है। यह पशु चिकित्सा में प्रयुक्त निश्चेतक है। पी. सी. पी. औषधि के रासायनिक नाम फेन साइक्लोहेक्सिलपिपरीडीन का परिवर्णी शब्द है और इससे 'पीस पिल' जैसा अतिकाल्पनिक व्यापारिक नाम निकला है। यह कई अन्य आकर्षक नामों से भी ज्ञात है, जैसे एंजेलडस्ट (फरिश्तों की धूल) 'एम्बामिंग फ्लूड', 'गोरिल्ला बिस्कुट', 'मैजिक मिस्ट' और 'राकेट फ्यूल'। हालांकि इसकी खोज सन् 1926 में हो गयी थी पर इसके निश्चेतक गुणों का पता सन् 1957 में ही चल सका। 1958 में फेनसाइक्लिडीन मनुष्यों पर सामान्य निश्चेतक के रूप में प्रायोगिक तौर से बेची गयी। बंदरों पर औषधि के शांतिदायक प्रभावों को देखते हुए इसके निर्माता पार्क डेविस एंड कंपनी ने इसका व्यापारिक नाम चुना सेरनाइल। अधिकांश सामान्य निश्चेतक श्वसन को दबा देते हैं, जिससे निश्चेतक विशेषज्ञों को बेहोशी के दौरान रोगी को कृत्रिम श्वास देनी पड़ती है। सेरनाइल में यह कमी नहीं थी और यह इसके प्रचार में सहायक सिद्ध हुई। पर सन् 1966 में सेरनाइल के कुछ दुष्प्रभावों के कारण इसका मनुष्यों पर उपयोग बंद कर देना पड़ा। इन दुष्प्रभावों में दुखद अनुभूति, अत्यधिक उत्तेजना, सन्निपात, भ्रांति और समय व स्थान के बोध का ह्रास शामिल है। हर पांच में एक रोगी इन लक्षणों का अनुभव करता, जो 18 घंटों तक कायम रहते। सेरनाइल द्वारा उत्पन्न प्रभाव मानसिक विकारों के लक्षणों से मिलते-जुलते थे, अतः इसका उपयोग मनोविकृति संबंधी खोज-बीन के लिए कृत्रिम पागलपन उत्पन्न करने में होने लगा।

सन् 1967 में फेनसाइक्लिडीन सेरनाइलान नाम से पशु निश्चेतक के रूप

में दोबारा बाजार में आयी। उसी वर्ष यह मादक औषधि के रूप में सैन फ्रांसिस्को के पटरी बाजारों में बिकने के लिए आयी। तभी इसे 'पीस पिल' नामक संबोधन भी मिला। हेरोइन के विपरीत पी. सी. पी. मुंह से ली जाती थी। पी. सी. पी. के उत्तर प्रभावों की भविष्यवाणी असंभव है। असंभव भविष्यवाणी और बार-बार अधिक मात्राओं की खपत के कारण पीस पिल सैन फ्रांसिस्को की खाड़ी के अवैध औषधि परिप्रेक्ष्य से एक वर्ष के भीतर ही गायब हो गयी। इसके तुरंत बाद यह अमेरिका के पूर्वी तट पर 'हाग' नाम से प्रकट हुई, पर वहां भी यह आयी और गयी।

सन् 1970 की शुरुआत में एक बार फिर पी. सी. पी. पटरी बाजारों में प्रकट हुई। इस बार इसका रूप छल-कपट की औषधि का था। चूंकि यह गुप्त रसोईनुमा प्रयोगशालाओं में आसानी से और सस्ते में, बिना अवैध तस्करी के खतरे उठाये, बनाई जा सकती थी, यह अक्सर अन्य मादक औषधियों जैसे टी. एच. सी., मेस्कालीन, साइलोमिबीन, एल. एस. डी., एम्फीटामीन, कोकीन आदि के स्थान पर पटरी बाजारों में बिकने लगी। असल में यह पता लगा कि पटरी पर उपलब्ध केवल 30 प्रतिशत औषधियां जिनमें पी. सी. पी. की कुछ मात्रा थी, पी. सी. पी. बताकर बेची गयी। टी. एच. सी. जो प्रायः वस्तुतः पटरी पर उपलब्ध नहीं होती, को इसी नाम से बेचा गया।

सन् 1970 के मध्य तक पी. सी. पी. का दुरुपयोग महामारी की शक्ल ले चुका था। अनुमानतः अकेले अमेरिका में कोई 70 लाख लोग अनियमित रूप से और करीब 10 लाख लोग हफ्ते में कम से कम एक बार पी. सी. पी. का सेवन कर रहे थे। पी. सी. पी. व्यसनी लोगों के लिए मनपसंद औषधि बन गयी। उनमें 14 वर्ष के किशोर खास थे। परंतु हाल के रुझानों से पता चलता है कि वर्षों के बाद अब पी. सी. पी. का दुरुपयोग घट गया है।

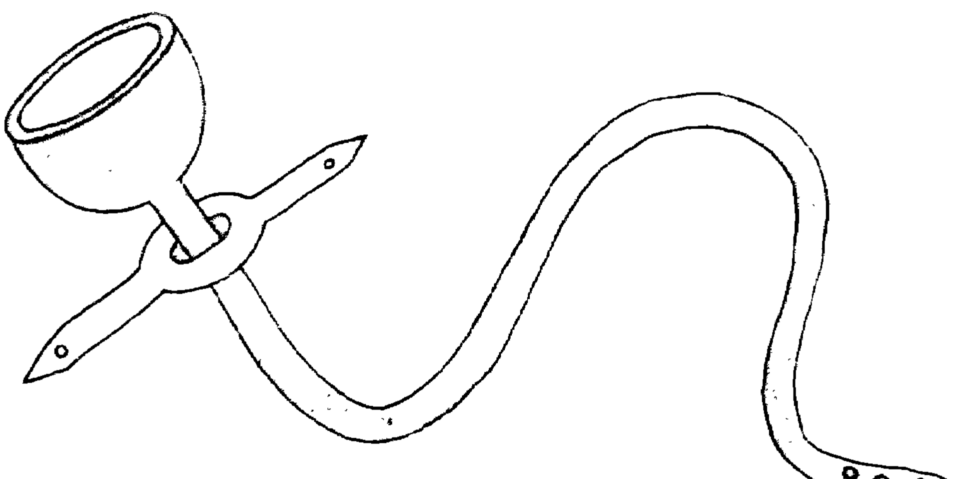
पी. सी. पी. क्या है ?

पी. सी. पी. सफेद क्रिस्टलीय ठोस है, पानी और अल्कोहल दोनों में तुरंत घुल जाती है। पटरी पर यह हाइड्रोक्लोराइड के रूप में 'फरिश्तों की धूल' नाम से बिकती है। चूंकि इसके पाउडर से लती व्यक्ति को भ्रांति होती है और वह 'जन्नत जैसे नजारे' देखता है, यह माना गया कि स्वर्ग के देवदूत और जन्नत के फरिश्ते भी इसका सेवन करते होंगे। इसी कारण से इसका 'फरिश्तों की धूल' जैसा कल्पनाशील नाम पड़ा।

पी. सी. पी. के धूम्रपान के बाद दो-तीन मिनटों में ही इसके प्रभाव दिखने लगते हैं। इसकी तुलना में इसे मुंह से लेने पर लक्षण आधे या एक घंटे बाद प्रकट होते हैं। धूम्रपान के बाद 15 से 30 मिनटों में औषधि के प्रभाव अपने चरम पर पहुंचते हैं और लती चार से छह घंटों तक आनंदित रहता है। दुबारा सामान्य अवस्था प्राप्त करने में 24 से 48 घंटे तक लग जाते हैं।

पी. सी. पी. की रक्त से ऊत्तकों में घुलने की तीव्र प्रवृत्ति होती है। किसी भी तरह से पी. सी. पी. का सेवन करने के बाद इसकी सांद्रता या मात्रा रक्त की अपेक्षा मस्तिष्क में अधिक पायी जाती है। इसी प्रकार शरीर की वसा में यह रक्त से 100 गुना अधिक पायी जाती है। ऊतकों में पी. सी. पी. की इस उच्च घुलनशीलता के आधार पर इस औषधि के दीर्घावधि प्रभावों को समझा जा सकता है। तब भी जब चिकित्सक रक्त में इसकी सूक्ष्म मात्रा भी न ढूंढ़ पायें।

सूंघने या धूम्रपान करने पर पी. सी. पी. की भारी मात्रा आमाशय में स्रावित होती है। इस प्रकार जहां सामान्यतः भोजन आमाशय में अवशोषित होता है, वहीं पी. सी. पी. इसमें स्रावित होती है। पी. सी. पी. मुख्यतः आंतों में अवशोषित होती है, जहां से यह रक्त में मिलती है (और फिर ऊतकों में)। पर रक्त से यह फिर आमाशय में स्रावित होती है, वहां से फिर आंतों में आकर



चित्र 64 : आमाशय की धावन नली।

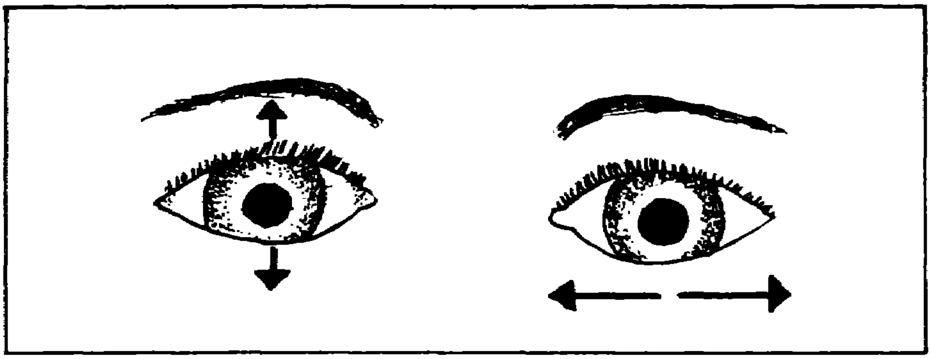
दोबारा रक्त में मिल जाती है। इस पुनर्चक्र से औषधि से उबरते समय प्रभावों की घट-बढ़ को समझा जा सकता है। आमाशय में इतनी अधिक पी. सी. पी. स्रावित हो सकती है कि यहां इसकी मात्रा रक्त के मुकाबले 50 गुना ज्यादा हो सकती है। इस तरह चाहे पी. सी. पी. का धूम्रपान किया गया हो, चिकित्सक लती के पेट में नली डालकर इसे धोने का प्रयास करते हैं।

पी. सी. पी. परिसंचरण विधि से वाकिफ प्रेक्षक को यह तरीका अजीब नहीं लगेगा पर चूंकि रोगी उद्वेलित और बेचैन होता है, इसलिए उसके पेट में नली डालना मुश्किल काम है।

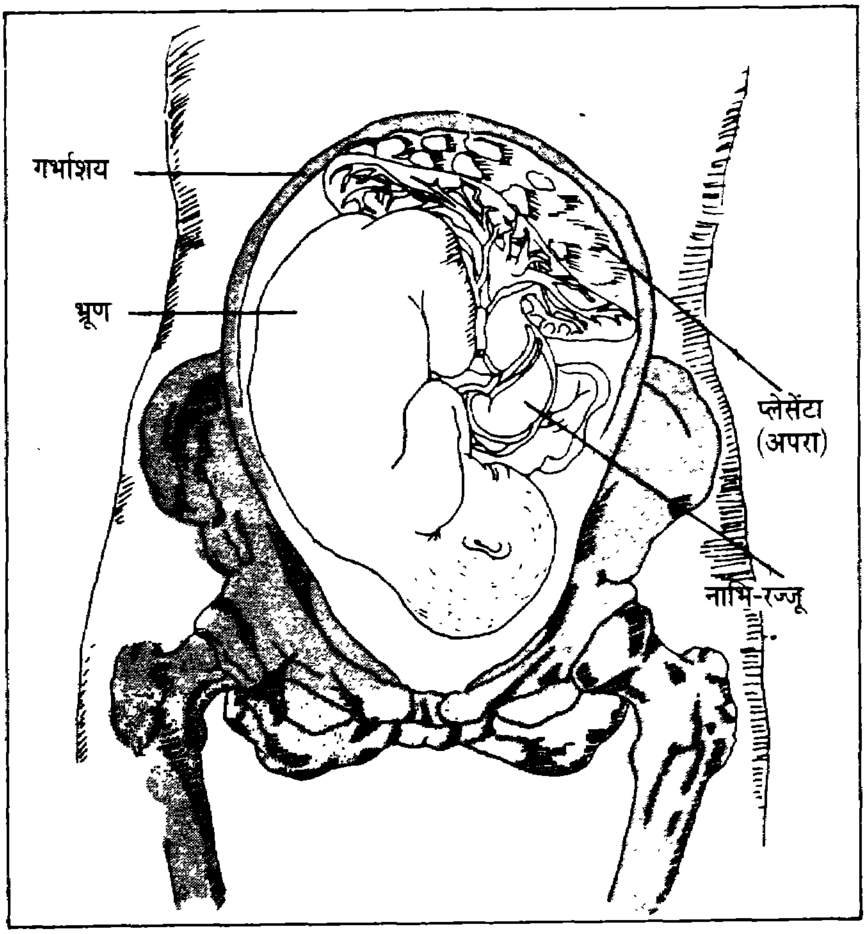
पी. सी. पी. के प्रभाव

पी. सी. पी. के अधिकांश विशिष्ट प्रभाव मनोवैज्ञानिक व मानसिक होते हैं। विशेषकर अपना शरीर ही विकृत दिखता है, जैसे हाथ-पैर बड़े-बड़े लगना, या अपने ही सिर को हवा में लटके अपने पर हंसते देखना। शरीर सुन्न पड़ सकता है। लती व्यक्ति मतवाला, आत्मविस्मृत महसूस करता है और सब-कुछ भूल जाता है। उसे अपने शरीर का होश नहीं रहता और उसके गंभीर रूप से घायल होने का खतरा रहता है, क्योंकि उसे पीड़ा महसूस नहीं होती। वह अपने को पिशाच, जानवर या ईश्वर समझ सकता है। चिंता और कभी-कभी विद्वेष की भावना पनप सकती है। थोड़े से लती व्यक्तियों में सार्वजनिक स्थलों पर नंगा होने की भावना भी दिखती है। पी. सी. पी. विषाक्तता की विशेष पहचान बार-बार उठने वाली महामानवीय ताकत और अपराजेयता की भावना है जो कि औषधि के दर्दनाशक गुणों का परिणाम है। इसके प्रभाव में कैदी लोग हथकड़ी तुड़ाकर पुलिस अधिकारियों पर हमला करते हुए भी ज्ञात हैं। कुछ लोग तेजी से आती रेलगाड़ी को उसके सामने खड़े होकर रोकने की कोशिश भी कर चुके हैं। कुछ भालू की गुफा में जाकर इसकी फोटो खींचने की कोशिश कर चुके हैं, ऊंची इमारत और पहाड़ की चोटी से नीचे भी कूद चुके हैं। ये बेतुके व्यवहार अकसर हिंसक होते हैं, जैसे एक लती ने प्लास से अपने आगे के दांत ही उखाड़ लिये। एक औरत ने अपने शिशु को तेल में तल दिया। मित्रों और अपरिचितों पर हथियार या विना हथियार हमले की खबरें भी हैं। ऐसे कई हिंसक कार्य ऐसे लतियों द्वारा किये गये जो अन्यथा शांतिप्रिय व्यक्ति थे।

पी. सी. पी. विषाक्तता की एक और विशेष पहचान आंख की पुतलियां (या गोलकों) का अनियंत्रित कंपन है। चिकित्सकीय भाषा में इसे निस्टैग्मस



चित्र 65 : निस्टैग्मस–आंख की पुतलियों की अनियंत्रित गति।

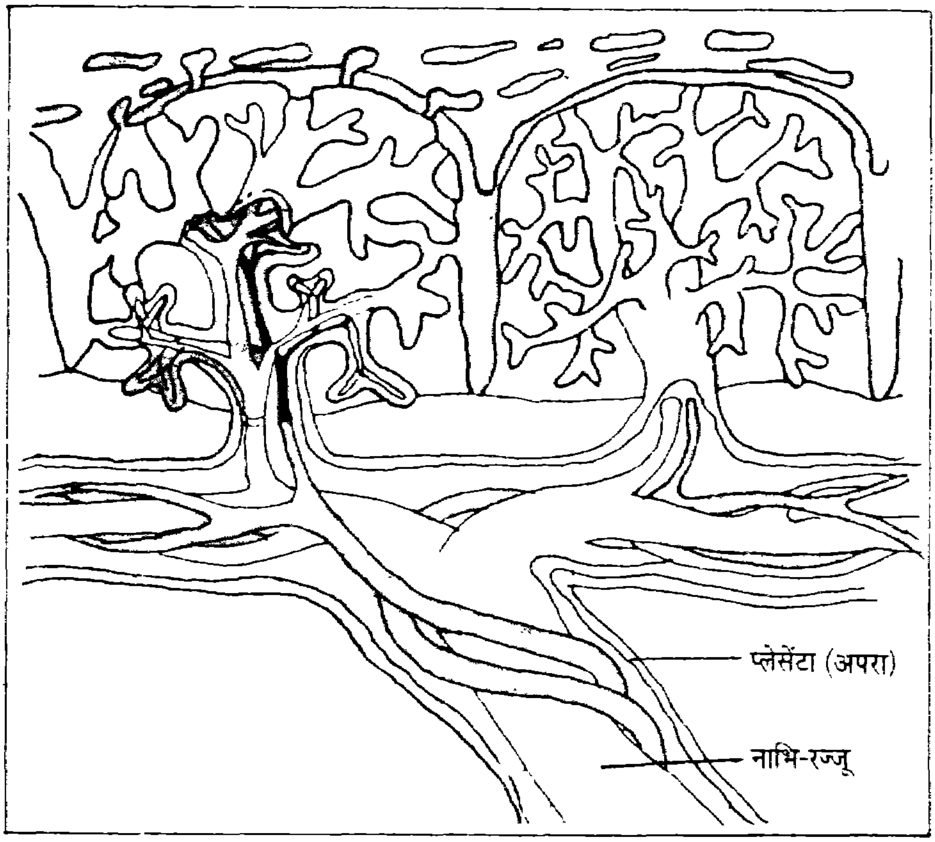


चित्र 66 : अपरा (प्लेसेंटा) के माध्यम से पी. सी. पी. माता के रक्त से भ्रूण में रिस सकती है।

(अक्ष-दोलन) कहते हैं। रोगी को किसी दूर की वस्तु, जैसे दीवार पर टंगी तस्वीर पर सीधे देखने को कहकर अक्ष-दोलन को देखा जा सकता है। इसमें आंख के काले हिस्से को गौर से देखा जाता है। यह ऊपर-नीचे या अगल-बगल की दिशा में कांपता दिखता है।

लती व्यक्ति को दौरे पड़ सकते हैं। शरीर के अंगों में स्वतः गति, लड़खड़ाती चाल और चेहरे की विकृति भी हो सकती है। व्यक्ति बेहोशी में जा सकता है या चेतन रह सकता है पर तब वह सूनी-सूनी आंखों से देखता रहेगा। चेहरा लाल होना, पसीना बहना, उल्टी, लार बहना, मूत्र रुक जाना, तेज ज्वर और नाड़ी की गति, रक्तचाप व श्वसन दर में वृद्धि अन्य लक्षण हैं।

यह ज्ञात है कि पी. सी. पी. प्लेसेंटा (अपरा) की बाधा पार कर सकती है। अर्थात् अगर कोई गर्भवती महिला पी. सी. पी. का सेवन करे तो यह अपरा को पार कर भ्रूण के शरीर में रिस सकती है। अपरा माता और शिशु के रक्त



चित्र 67 : अपरा वह स्थान है जहां से औषधि माता के रक्त से शिशु में रिस सकती है।

के बीच एक मोटी बाधा होती है। यह सिर्फ लाभदायक और आवश्यक उत्पादों को ही शिशु के रक्त में जाने देती है। पी. सी. पी. हानिकारक होने के बावजूद इस बाधा को पार कर लेती है। इसके कारण नवजात शिशुओं में भी अक्ष-दोलन (निस्टैग्मुस), दौरे, बेतुकी भाव भंगिमाएं, कंपन और अतिसार हो सकते हैं। गर्भावस्था के आरंभ में पी. सी. पी. लेने से बच्चे में गंभीर विकृतियां हो सकती हैं या उसकी मौत भी हो सकती है।

पुनरोत्थान चरण

क्षीण लक्षणों के रोगी कुछ ही घंटों में औषधि के प्रभाव से उबर सकते हैं, पर आगामी 24 घंटों तक भी अवसाद और खीज असामान्य नहीं है। कई रोगी चार से छह हफ्तों तक पागलपन महसूस करते हैं। साधारण पागलपन (स्कीजोफ्रीनिक या शीजोफ्रीनिक साइकोसिस) के विपरीत पी. सी. पी. के कारण उत्पन्न पागलपन पर औषधियों का असर नहीं होता है। 'फेनसाइक्लिडीन साइकोसिस' यानी पी. सी. पी. जनित पागलपन लंबे समय तक कायम रहने के बाद सामान्य पागलपन (स्कीजोफ्रीनिया) में बदल जाता है। लंबे समय तक फेनसाइक्लिडीन जनित पागलपन से पीड़ित रोगी अस्पताल से छुट्टी के एक वर्ष बाद तीव्र पागलपन लिये वापस लौटते हैं, जो कि काफी कुछ स्कीजोफ्रीनिया के समान होता है। यह अब बारबार औषधि लेने से पागलपन बढ़ता नहीं है, और न ही फेनसाइक्लिडीन जनित पागलपन जैसा हिंसक होता है, और इस पर चिकित्सा औषधियों का असर भी होता है। इस प्रकार ये रोगी सही अर्थों में स्कीजोफ्रीनिक होते हैं।

फेनसाइक्लिडीन जनित पागलपन का निराकरण होने पर रोगी अक्सर अवसाद में डूब जाते हैं। इस उदासी को कम करने के लिए औषधि के दुष्प्रभावों के अनुभव के बावजूद बारबार पी. सी. पी. का दुरुपयोग किया जा सकता है।

पी. सी. पी. कैसे कार्य करती है

पी. सी. पी. और इससे संबंधित औषधियां हमारे स्नायुतंत्र में विशेष स्थानों पर कसकर चिपक जाती हैं। हमने देखा है कि मार्फीन और मार्फीन जैसे यौगिक भी इसी तरह कार्य करते हैं। हमने देखा कि इन स्थानों में से एक जिससे मार्फीन जैसे यौगिक कसकर जुड़ जाते हैं, संग्राहक के नाम से ज्ञात है। संग्राहकों के उद्दीपनों से सुख का अहसास और भ्रांति उत्पन्न होती है। अब यह प्रायोगिक रूप से भी दर्शाया गया है कि पी. सी. पी. इन संग्राहकों से बहुत शक्ति के

साथ जुड़ जाती है। पी. सी. पी. की कई क्रियाओं को इस विधि से समझाया जा सकता है।

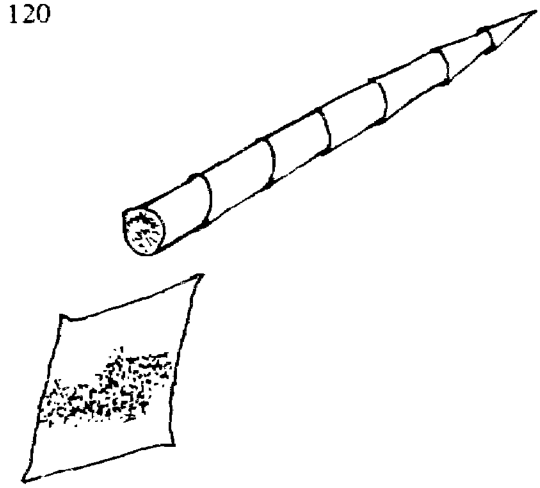
यह भी दिखाया गया है पी. सी. पी. हमारे स्नायुतंत्र में डोपामीन की मात्रा बढ़ा देती है। हमने देखा है कि कोकीन भी इसी तरह कार्य करती है। पी. सी. पी. एक अन्य स्नायु प्रेषक रसायन (न्यूरोट्रांसमीटर) नारपाइनेफ्रीन की मात्रा में भी वृद्धि करती है। इस दैत्याकार नाम से चौंकिए मत। डोपामीन की भांति नारपाइनेफ्रीन की परिकल्पना भी हमारे स्नायुतंत्र में संदेश-वाहक कबूतरों के रूप में की जा सकती है। इन दो न्यूरोट्रांसमीटरों की मात्रा में वृद्धि से पी. सी. पी. जनित कई अन्य प्रभावों को भी समझा जा सकता है।

कुछ अन्य बेहद जटिल प्रक्रियाएं भी शामिल हैं। यह देखा गया है कि पी. सी. पी. से कोशिका झिल्ली के आर-पार कैल्सियम आयरनों का आवागमन कम हो जाता है। लेकिन इससे पी. सी. पी. जनित विभिन्न लक्षणों का क्या संबंध है, यह अभी स्पष्ट नहीं है।

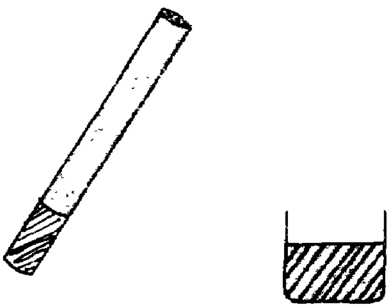
पी. सी. पी. क्रियाविधि जानने के लिए किए जा रहे अनुसंधानों के दौरान एक रोचक तथ्य प्रकाश में आया। अध्ययन आगे बढ़ाने से पहले स्नायु कोशिकाओं के गुणों पर एक नजर डाल लेना उचित होगा। आक्सीजन की कमी (इसकीमिया) के प्रति स्नायु कोशिकाएं अतिसंवेदनशील होती हैं। अर्थात्, दिल के दौरे, गंभीर दुर्घटना, या कोई भी स्थिति जिसमें अत्यधिक रक्तस्राव होता हो या रक्त संचरण में कमी आती हो, के बाद ऊतकों को आक्सीजन की कमी का सामना करना पड़ता है। आक्सीजन की कमी से मरने वाली कोशिकाओं में स्नायु कोशिकाएं प्रथम होती हैं। इस स्थिति में मस्तिष्क कोशिकाएं सिर्फ तीन मिनटों तक जीवित रहती हैं। यह देखा गया है कि आक्सीजन की कमी से स्नायु कोशिकाओं की मृत्यु दर को पी. सी. पी. और संबंधित यौगिक कम कर सकते हैं। इस क्रिया से पी. सी. पी. के लक्षणों पर कोई फर्क पड़ता है या नहीं स्पष्ट नहीं है, पर एक चीज स्पष्ट है कि भविष्य में आघात और संबंधित अन्य स्थितियों के इलाज में पी. सी. पी. असरदार पात्र साबित हो सकती है।

पटरी उपयोग

पटरी पर पी. सी. पी. कई रूपों में मिलती है, जैसे—पाउडर, टिकिया, पर्ण-मिश्रण, तरल या एक ग्राम के क्रिस्टलीय 'राक' के रूप में। इन सभी में पी. सी. पी. की मात्रा परिवर्तनशील होती है। एंजेलडस्ट या फरिश्तों की धूल नामक पाउडर



चित्र 68 : पी. सी. पी. जाइंट।



चित्र 69 : तरल पी. सी. पी.।

पी. सी. पी. का शुद्धतम रूप है, जिसमें इसकी मात्रा 88 से 100% तक होती है। क्रिस्टल में 50 से 100% और अन्य में यह घटकर 10 से 30% तक ही रह जाती है। टिकिया रूप में खुराक 1 से 5 मि. ग्रा. तक होती है पर 5 मि. ग्रा. खुराक सामान्य है। पर्ण-मिश्रण रूप में यह अजमदे, पुदीने या ओरेगानों की पत्तियां के साथ मिलाई जाती है। मिश्रण को आमतौर पर 'जाइंट' में बेल दिया जाता है (क्रिस्टल जाइंट या कंजे) जिनका सामान्य वजन 100 से 400 मि. ग्रा. होता है और हरेक 150 मि. ग्रा. पत्तियों में 1 मि. ग्रा. पी. सी. पी. होती है। इन 'जाइंटों' में पी. सी. पी. की मात्रा 0.25 से 8% तक होती है। पर जब चिरकालिक लती इन्हें बनाता है तो वह इन पर 50 मि. ग्रा. तक पी. सी. पी. पाउडर छिड़क लेता है। इससे पता चलता है कि पुराने लतियों में इसके प्रति कितनी सहनशीलता होती है। पी. सी. पी. की ख्याति धूम्रपान के लिए सबसे अधिक है और इसे गांजे की सिगरेटों पर छिड़का जाता है (इससे सुपर ग्रास नाम निकला है)। पटरी पर यह संयोग मिलना दुर्लभ है। एक अन्य प्रचलित तरीके में वैध रूप से निर्मित मेंथोलेटेड (पुदीने के सत से बनी) सिगरेटों को तरल पी. सी. पी. में डुबोकर बाद में इनका धूम्रपान 'सुपर कूल्स' की तरह किया जाता है।

पी. सी. पी. के समतुल्य

30 से भी अधिक रसायन पी. सी. पी. से मिलते-जुलते हैं। इनकी रासायनिक

संरचना पी. सी. पी. के समान है और उनके प्रभाव भी इसके समान हैं। पांच ऐसे समतुल्य जिनका सर्वाधिक दुरुपयोग होता है, इस प्रकार हैं—कीटामीन, पी. एच. पी., पी. सी. सी., टी. सी. पी. और पी. सी. ई.।

कीटामीन एक निश्चेतक है और पी. सी. पी. समतुल्यों में एकमात्र इसी का मानव प्रयोग के लिए निर्माण होता है। पटरी पर कीटामीन हाइड्रोक्लोराइड के कैप्सूल 'ग्रीन' नाम से मिलते हैं। पी. सी. पी. की तुलना में यह कम खतरनाक है।

पी. एच. पी., पी. सी. पी. जितनी असरकारक है और आसानी से व कम खर्च पर इसका निर्माण भी हो जाता है। व्यसनियों में इसका दुरुपयोग अधिक व्यापक है क्योंकि नियमित विश्लेषणों के जरिए इसका पता लगाना कठिन है। परिणामस्वरूप व्यसनी अक्सर कानूनी और चिकित्सकीय जांच में बेदाग बच निकलते हैं।

पी. सी. सी. एक अस्थिर यौगिक है। इसके विखंडन से पिपरीडीन बनता है। इस कारण इसे पिपरीडीन की विशेष मछली जैसी गंध से पहचाना जा सकता है। गर्म करने पर (धूम्रपान के दौरान) इससे एक खतरनाक जहरीली हाइड्रोजन साइनाइड गैस निकलती है, जिसके कारण इसका धूम्रपान करने वाले साइनाइड विषाक्तता से पीड़ित होते हैं।

टी. सी. पी. पटरी पर सर्वप्रथम 1972 में पकड़ी गयी थी। टी. सी. पी. के प्रभाव पी. सी. पी. के समान, पर अधिक तीव्र और अल्पकालिक होते हैं।

शुरू-शुरू में पी. सी. ई. पटरी पर 1960 के उत्तरार्ध में गीले-गीले, पीले भूरे गोंद के रूप में प्रकट हुई थी। इस रूप में इसे पी. सी. पी. से अलग पहचानना कठिन था, पर यह उससे अधिक असरकारक थी। आज भी यह एक लोकप्रिय मादक औषधि है।



8

विविध भ्रांतिकारक

एल. एस. डी. और पी. सी. पी. के अलावा भ्रांतिकारक पदार्थों का एक पूरा जमघट है जो लती व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त होते हैं। इनमें से कई प्राकृतिक पादप उत्पाद हैं, जिनका लंबा व रंगबिरंगा इतिहास रहा है। आइए, इनमें से कुछ की खोजबीन करें।

मार्निंगग्लोरी के बीज

संपूर्ण दक्षिणी मैक्सिको, खासकर औक्साका क्षेत्र में एक बेल पायी जाती है जो कि अपनी सहजात, पीतवर्णी अमरबेल के काफी समान है। पर इसकी टहनियां काष्ठमय होती हैं और यह अपने संबंधियों की अपेक्षा अधिक सफलता से नागफनी की बाड़ या पुरानी दीवारों पर चढ़ जाती है। वनस्पतिशास्त्र में यह टरबाइना कारिम्बोसा (पूर्व नाम रिवीया कारिम्बोसा) नाम से ज्ञात है।

इसकी पत्तियां मार्निंगग्लोरी की पत्तियों के समान दिल के आकार की नुकीली होती हैं। पर इसके सफेद, शंक्वाकार पुष्प मुश्किल से 5 सें. मी. तक लंबे होते हैं। इसका गूदेदार फल अनुपयोगी होता है, पर इसमें एक काले रंग का, मसूर के दाने के समान बीज होता है जो लाइसर्जिक एसिड उत्पादों (लाइसर्जिक एसिड एमाइड और आइसोलाइसर्जिक एसिड एमाइड) से भरपूर है। अतिप्राचीन काल से मैक्सिकी आदिवासियों के पुजारी इन बीजों का सेवन बड़े विधि-विधान से ईश्वर से संपर्क साधने के लिए करते आ रहे हैं। स्थानीय बोली में इस पौधे का नाम ओलोलियुकुई है। मैक्सिको में कई वस्तुओं, जैसे झरनों, नदियों और पर्वतों के अपने अलग-अलग देवता होते हैं और ओलोलियुकुई इतनी पवित्र समझी जाती है कि इसका खुद का भी एक देवता है। पुजारियों द्वारा

धार्मिक कार्यों में उपयोग के अलावा इसके बीज यहां के मूल निवासी नशे के लिए भी उपयोग में लाते हैं। कुछ स्थानीय चिकित्सक इनका उपयोग औषधियों के रूप में भी करते हैं। इस मार्निंगग्लोरी की कम से कम एक प्रजाति और है जिसके बीज उपरोक्त बेल के समान गुणों वाले होते हैं। यह है इपोमीया वायोलेसिया जो स्थानीय लोगों को वडोह नेग्रो नाम से ज्ञात है। यह दक्षिणी मैक्सिको के ओक्साका क्षेत्र के जैपोटेक कबीलों में लोकप्रिय है।

दोनों पौधों के बीजों में समान रसायन होते हैं, पर टरबाइना कारिम्बोसा में कुल अल्कलायडों की मात्रा 0.012% है जबकि इपोमीया वायोलेसिया में 0.06% अल्कलायड है। इसी कारण आदिवासी अपने धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान इपोमीया के बीजों का कम मात्रा में सेवन करते हैं। बीजों को पहले पीसा जाता है, फिर उसे ठंडे पानी में भिगो दिया जाता है। बाद में घोल को कपड़े से छानकर पिया जाता है। इसके द्वारा उत्पन्न लक्षण एल. एस. डी. के लक्षणों के समान हैं। अधिकांशतः यह रात में और अकेले में ही पिया जाता है।

यह एल. एस. डी. का खोजकर्ता हाफमैन ही था, जिसने 1960 के दशक में मार्निंगग्लोरी के सक्रिय घटक की पहचान की थी। अमेरिका की गुप्त दुकानों पर यह बीज उपलब्ध है। बहुत सारे बीज हमारे देश में भी तस्करी के जरिए लाए जाते हैं।

भ्रांतिकारक कैक्टस

कुछ कैक्टसों में भी भ्रांतिकारक गुण पाये जाते हैं। इनमें से एक है—पेयोट कैक्टस, जो वनस्पतिशास्त्र में लोफोफोरा विलियम्सी नाम से ज्ञात है। यह उत्तरी मैक्सिको और अमेरिका के दक्षिणी टैक्सास के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में उगता है। इसका 7/8 भाग तक जमीन में दबा होता है। ऊपरी सिरा चपटा, मुलायम और शूलरहित होता है। इसकी चिकनी स्लेटी हरी सतह पर छोटे-छोटे सफेद रोम गुच्छों (बालों के गुच्छे) में होते हैं। कैक्टस का 'सिर' एक अनोखी शलजम जैसी जड़ पर रखा हुआ होता है। कैक्टस का गला इसका मर्मस्थल है। यहां पर जड़ मोटे तने की शक्ल ले लेती है। इस पट्टीनुमा तने पर बटन जैसे उभार होते हैं जो मैस्कल बटन के नाम से ज्ञात हैं। इन्हें काटकर सुखा लिया जाता है। इन बटनों में तीस के करीब अल्कलायड होते हैं, जिनमें अधिकांश मनोवैज्ञानिक रूप से सक्रिय होते हैं। लेकिन इनमें में सबसे महत्वपूर्ण और सक्रिय अल्कलायड मेस्कालीन है जो मेस्कल बटन की कुल अल्कलायड मात्रा का लगभग 30% होता



चित्र 70 : पेयोट कैक्टस।

है। लती लोग एक दौर में 30 बटन तक खपा सकते हैं। इन बटनों को चबाया जाता है। इनका स्वाद अरुचिकर, कड़वा और किरकिरा होता है। कभी-कभी इन्हें खाने से जी मिचलाने लगता है। इस बुरे स्वाद को छिपाने के लिए बटनों को बारीक काटकर उबाल लिया जाता है और वाइन, गर्म कहवे, संतरे के रस या अन्य किसी अत्यधिक सुगंधित पेय में मिलाकर पिया जाता है। इसका नशा अल्कोहल से भी ज्यादा होता है। वस्तुतः जर्मन लोग इस कैक्टस को स्क्नैप्सकाफ कहते हैं यानी शराब का भी मुखिया।

मार्निंगग्लोरी की भांति पेयोट का भी उपयोग आदिवासी धार्मिक उत्सवों में ईश्वर तक पहुंचने के लिए करते हैं। नशा होने पर चटखदार रंगबिरंगे दृश्यों की चलती-फिरती शृंखला दिखाई देती है—बिल्कुल वैसे ही जैसे कैलीडोस्कोप (बहुरूपदर्शी) में दिखती है। ये दृष्टिभ्रम एक निश्चित क्रम का पालन करते दिखते हैं, जो रेखागणित की आकृतियों से शुरू होकर परिचित दृश्यों और चेहरों से होते हुए आश्चर्यजनक दृश्यों और भांति-भांति की अज्ञात वस्तुओं पर आकर खत्म होता है। अन्य भ्रांतियां, खासतौर पर अन्य श्रव्य संबंधी भ्रांतियां, भी नशे के दौरान अनुभव की जाती हैं। लती व्यक्ति ऐसे आश्चर्यजनक स्वर सुन सकता है जो होते ही नहीं। ये प्रभाव दो-तीन दिन के बाद हल्के पड़ते हैं। ऐसा यकीन किया जाता है कि इन अटपटी भ्रांतियों से मनुष्य का आत्मिक संसार से संपर्क सध जाता है। इस आत्मिक संसार से सभी बीमारियां एवं मौत आती हैं जिनसे संबोधित हो आदिवासी चिकित्सक रोगों का निदान व इलाज खोजते हैं। लेकिन पश्चिमी चिकित्सा में यह समझा जाता है कि पेयोट में कुछ औषधीय गुण भी हैं, क्योंकि इसमें कुछ प्रतिजैविक गुण पाये जाते हैं।



चित्र 71 : मेस्कल बटन।



चित्र 72 : पेयोट का एक उत्सव।

स्पष्टतः पेयोट का उत्सवी उपयोग हजारों वर्ष पुराना है। पेयोट पौधे के अवशेष और उनके रेखाचित्र 8000 वर्ष पुरानी गुफाओं में पाये गये हैं। चूंकि

बटन तने पर मौजूद होते हैं इसलिए कभी-कभी ऐसा लगता है कि छोटे-छोटे बटनों जैसी खुंबियों (कुकुरमुत्तों) के गुच्छे उग रहे हैं। पर वास्तव में मैक्सिको में कुछ भ्रांतिजनक खुंबियां भी पाई जाती हैं जिससे कई बार गलती से पेयोट को भी खुंबियां मान लिया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि मैक्सिको पर स्पेनिश विजय के समय वहां पेयोट को 'पवित्र खुंबी' कहा जाता था। कई प्रसिद्ध हस्तियों ने अपने जीवन में कभी न कभी पेयोट का सेवन जरूर किया है। इनमें प्रमुख हैं आयरिश नाटककार, डब्लू. बी. यीट्स (1865-1939), अंग्रेजी मनोवैज्ञानिक हैवलाक एलिस (1859-1939) और अंग्रेज उपन्यासकार आल्डस हक्सली (1894-1963)। हक्सली ने तो पेयोट के ऊपर एक पुस्तक भी लिखी, जिसका नाम था 'द डोर्स आफ परसेप्शन'। 'मेस्क' या 'चीफ' नाम से ज्ञात यह औषधि आमतौर पर मुंह से ली जाती है, पर कभी-कभी इसके बुरे स्वाद से बचने के लिए बांह में इसका इंजेक्शन भी लगाया जाता है। पूर्व वर्णित भ्रांतिजन्य प्रभावों के अलावा आंख की पुतली फैलना इसका सामान्य प्रभाव है। उबकाई, चक्कर, सिरदर्द और छाती में दर्द भी अनुभव होता है।

दूसरा महत्वपूर्ण भ्रांतिजनक कैक्टस सैन पेड्रो या एगुआकोला कैक्टस है। यह वनस्पतिविज्ञान में ट्राइकोसिरियस पैकानोई नाम से ज्ञात है। यह एंडीज पर्वतमाला के मध्य भाग में बोलीविया, इक्वेडोर और पेरू में पाया जाता है। यह 1300 ई. पू. से मनुष्य के उपयोग में है। इसे सैन पेड्रो (सेंट पीटर का स्पेनी रूप) नाम इसलिए दिया गया क्योंकि सैन पेड्रो की भांति इसके पास भी स्वर्ग की कुंजी है। इसी अंधविश्वास के तहत यह भी अपने संबंधी पेयोट की भांति धार्मिक समारोहों में सेवन किया जाता है। इसके प्रयोग से जुड़े सभी अनुष्ठान चंद्रमा पर आधारित हैं और इनका उपयोग मदात्यय से लेकर पागलपन तक के 'इलाज' में होता है। जादूगरी और टोने-टोटकों का सामना करने के लिए शकुन विद्या में भी यह काफी मूल्यवान समझा जाता है। इस कैक्टस के तने के छोटे-छोटे टुकड़े आदिवासी बाजार में बिकते हैं। इन्हें करीब सात घंटे तक पानी में उबालकर इसमें दूसरी जड़ी-बूटियां मिलाकर पिया जाता है। यह पेय सिमोरा नाम से ज्ञात है। इसमें मिलाई जाने वाली चीजों में अन्य कैक्टस जैसे नीयो रेमेंडिया मैक्रोस्टिबास शामिल है जो अत्यधिक मनोत्तेजक घटक है। इसमें अक़सर जादूगरी के लिए अन्य चीजें मिलाना भी जरूरी है, जैसे हड्डियों का चूरा और कब्रिस्तान की मिट्टी।

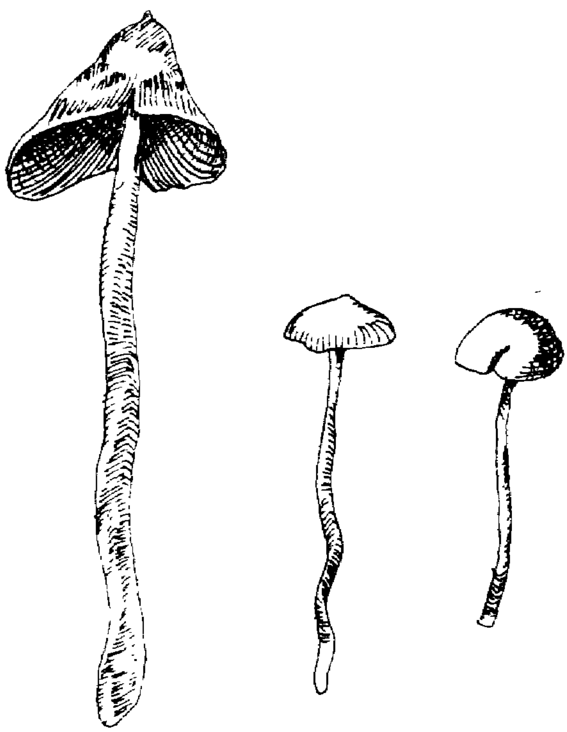
दक्षिण अमेरिका में ट्राइकोसिरियस की कोई 40 प्रजातियां हैं। इनमें कम

से कम 25 भ्रांतिजनक अल्कलायडों से और कुछ मेस्कालीन में भरपूर हैं। सैन पेड्रो कैक्टस, जो सिर्फ 800 मी. से 2300 मी. की ऊंचाई तक ही पाया जाता है, में मेस्कालीन की मात्रा कुछ अधिक होती है (शुष्क भार का 2%)। इसमें सात अल्कलायड भी होते हैं। इसके प्रभाव भी पेयोट के प्रभावों के समान होते हैं।

भ्रांतिकारक खुंबियां

कैक्टसों के अलावा कई खुंबियां भी भ्रांतिकारक होती हैं। दक्षिणी मैक्सिको में करीब दो दर्जन खुंबियों की प्रजातियां जादूगरी व धार्मिक कृत्यों में प्रयुक्त होती हैं। ये सभी नजदीकी रूप से संबंधित गुणों–पैनीयोलस, साइलोसाइब और स्ट्रोफेरिया आदि की सदस्य हैं। इन सभी में एक समान सक्रिय अल्कलायड साइलोसिबीन पाया जाता है तथा एक और अस्थिर अल्कलायड साइलोमीन भी। साइलोसिबीन मनोचिकित्सा में प्रयोग होती रही है।

खुंबियों से नशा करने के समारोह प्राचीनकाल में भी होते थे। मध्य मैक्सिको से प्राप्त 300 ई. के भित्तिचित्रों में खुंबियों की पूजा होते हुए दिखाया



चित्र 73 : भ्रांतिकारक खुंबियां–यहां साइलोसाइब की 3 प्रजातियों को दिखाया गया है।

गया है। इनसे भी अधिक पुराने और विलक्षण 'मशरूम स्टोन' नामक शिल्प हैं जो ग्वाटेमाला में ऊंचे मध्यक्षेत्रों से भारी मात्रा में खोदकर निकाले गये हैं। ये प्रतिमाएं 1000 ई. पू. की हैं। ये सीधे तने की शक्ल में हैं जिसमें मनुष्य या जानवर की आकृति के ऊपर खुंबियों का छत्र ताने हुए दिखाया गया है।

मैक्सिको के एज़टेक लोग इन खुंबियों को पवित्र मानते थे और इनके लिए उनका शब्द था टियोनानकेट्ल जिसका अनुवाद कुछ इस तरह से हो सकता है— 'देवताओं का गोश्त'। इसका तात्पर्य देवताओं के खाने लायक गोश्त से था या उनके शरीर के अंग से था, यह स्पष्ट नहीं है। लेकिन स्पेनी विजेताओं ने इन्हें नाम दिया 'शैतान का गोश्त' और यह काफी सटीक भी है क्योंकि इनके सेवन से सर्वाधिक भयावह भ्रांतियां उत्पन्न होती थीं। टियोनानकेट्ल न सिर्फ सामाजिक और त्यौहारों के अवसर पर खाया जाता था बल्कि ओझाओं और ज्योतिषियों द्वारा चिकित्सा-धार्मिक अनुष्ठानों पर भी उपयोग में लाया जाता था। इन वेलाडा नाम से ज्ञात समारोहों के दौरान खुंबियों को ताजा ही पिया जाता था। वेलाडा के दौरान अंधकार व एकांत जरूरी शर्त थी।

इन मैक्सिकी खुंबियों के अतिमहत्वपूर्ण भ्रांतिजन्य प्रभावों से अलग अन्य विशिष्ट लक्षण इस प्रकार हैं—मांसपेशियों में शिथिलता, नशे की शुरुआत में आंख की पुतलियों का फैलाव व सिकुड़न। इसके बाद भावात्मक उत्तेजना, जैसे अत्यधिक उल्लास और ध्यान-केंद्रित करने में कठिनाई का दौर शुरू होता है। इस अवस्था में दृश्य और श्रव्यभ्रम प्रकट होते हैं। अंततः अवसाद और मानसिक व शारीरिक उदासी मनुष्य को घेर लेती है और काल व स्थान के बोध का नाश या गंभीर परिवर्तन हो जाता है। इस दशा में एक अनोखी बात ऐसी है जिसकी प्रायोगिक मनोचिकित्सा में उपयोग की रोचक संभावना हो सकती है। यह है प्रयोगाधीन व्यक्ति का उसके चारों ओर के संसार से अलगाव। बिना होश गुम किए व्यक्ति को उसके वातावरण के प्रति उदासीन बनाया जा सकता है। इस अवस्था में संसार उसके लिए मिथ्या हो सकता है क्योंकि व्यक्ति के सपनों की दुनिया वास्तविक बन जाती है। इन खुंबियों के प्रभाव एल्. एस. डी. के प्रभावों के काफी समान हैं।

हरमाला अल्कलायड

बोलीविया, ब्राजील, कोलंबिया, इक्वेडोर और पेरू के दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम अमेजन नदीय क्षेत्रों में और इक्वेडोर तथा कोलंबिया के प्रशांत महासागरीय तट

क्षेत्रों में मूल इंडियन 'बेनिस्टीरियोप्सिस *कापी*' नामक वृक्ष की छाल से एक मनोत्तेजक काढ़ा तैयार करते हैं। यह काढ़ा सिर्फ इसी वृक्ष से बनता है, लेकिन अक़सर इसमें अन्य पौधे भी मिलाये जाते हैं। 20 से भी अधिक प्रजातियां मूल काढ़े में मिलाई जाती हैं। इनमें दो पौधों—डिप्लाप्टेरिस कैब्रिराना और साइकोट्रिया विराइडिस की पत्तियां प्रमुख हैं।

बेनिस्टीरियोप्सिस कापी की छाल से तैयार काढ़ा मनोत्तेजक है; इसमें कई भ्रांतिजनक अल्कलायड हैं—हारमीन, हारमलीन और टेट्राहाइड्रो-हारमीन। डिप्लाप्टेरिस या साइकोट्रिया की पत्तियां मिला देने से नशे की अवधि व प्रभाव की तीव्रता बढ़ जाती है। इन दोनों पौधों में ट्रिप्टामीन होते हैं जो कि हरमाला अल्कलायडों के प्रभाव को बल प्रदान करते हैं।

इस काढ़े के प्रभाव को तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है—पहली अवस्था में उल्टी-दस्त, पसीना बहना और आकाश में उड़ने का अहसास होना है। इसी समय चमकदार रंगीन रोशनी दिखती है और जल्दी ही इसकी जगह तेजी से बदलती हुई रेखागणितीय आकृतियां ले लेती हैं। दूसरी अवस्था में ये आकृतियां अदृश्य हो जाती हैं और उड़ने तथा शून्यता का अहसास होता है। साथ में जानवरों तथा राक्षसों की त्रिआयामी आकृतियां भी दिखती हैं। द्रश्य और श्रव्यभ्रांतियां दूसरी अवस्था के विशिष्ट लक्षण हैं। अंतिम अवस्था में चमकदार रंगीन दृश्यों की जगह शांतिदायक गंदले नीले या हरे दृश्य ले लेते हैं। इसके साथ ही सुखद, शांत संगीत लयों का दौर शुरू होता है जो अंततः अतिशांतिपूर्ण, स्वप्न की अवस्था में बदल जाता है।

कोहोबा की सुंघनी

एक बेहद शक्तिशाली भ्रांतिजनक सुंघनी पिप्टेडेनिया पेरेग्राइना नामक पौधे के बीजों से बनती है। यह मुख्यतः दक्षिण अमेरिकी इंडियनों द्वारा प्रयुक्त होती है, लेकिन दूसरे देशों में भी उत्साही किशोर इसका सेवन करते देखे जाते हैं। वेस्टइंडीज में इसे कोहोबा की सुंघनी या नसवार कहते हैं।

इस नसवार में तेज तंबाकू की महक होती है और इसे अनूठे तरीके से बनाया जाता है। बड़े शंखों और सीपियों को आग में जलाकर इसका अनबुझा चूना बनाते हैं। इसमें पिप्टेडेनिया के पिसे हुए बीज मिलाकर मिश्रण को महीन पाउडर में पीस लिया जाता है। इस तरह तैयार नसवार को उंगली पर रख गहरी सांस लेकर नाक में खींचा जाता है। इसका प्रभाव इतना शक्तिशाली होता है कि लती व्यक्ति तुरंत होश खो बैठता है। कम शक्ति की मात्रा सूंघने पर अनोखे दृष्टिभ्रम उत्पन्न होते हैं। इस नसवार में सक्रिय संघटक ट्रिप्टामीन के उत्पाद और

बूफोटेनिन हैं। बूफोटेनिन नामक भ्रांतिजनक रसायन सबसे पहले टोड की त्वचा और कर्णमूल ग्रंथियों में पाया गया था। टोड के नाम बूफो वल्गैरिस पर बूफोटेनिन पड़ा। इसके अलावा यह अमेनिटा फफूंद में भी पाया जाता है।

कोहोबा का उपयोग योद्धाओं द्वारा निडर और पीड़ा के प्रति असंवेदनशील बनने के लिए किया जाता रहा है। बूफोटेनिन प्रयोगशाला में भी बन सकती है। इस भ्रांतिकारक नसवार के उपयोग का जिक्र सन् 1496 में कोलंबस की दूसरी जलयात्रा के दौरान भी मिलता है।

याकी

दक्षिण अमेरिका में लोकप्रिय एक और भ्रांतिकारक सुंघनी विरोला प्रजातिओं (केलोफाइला, एलौंगाटा) की छाल से तैयार होती है। छाल को कूटकर मिट्टी के बर्तन में पानी के साथ उबालते हैं जब तक कि सारा पानी उड़ न जाये और नीचे तलछट बची रहे। इस तलछट को हल्की आंच पर सेंका जाता है और भुरभुरा होने पर इसे पीसकर महीन पाउडर बना लिया जाता है। इस सुंघनी को सरकंडे की नली में रखकर लती व्यक्ति की नाक में फूंका जाता है (चित्र देखिए)। इस सुंघनी का भ्रांतिकारक प्रभाव काफी शक्तिशाली होता है क्योंकि लती व्यक्ति तुरंत ही जोर-जोर से गाने और चिल्लाने लगता है। यह सुंघनी एथेना न्याकबाना और पारिका नाम से भी ज्ञात है। इसमें सक्रिय घटक 'ट्रिप्टामीन' है। विरोला को सुंघनी के रूप में लेने की बजाए इसके गाढ़े लेप को छोटी गोलियों की शक्ल भी दी जा सकती है। इन गोलियों पर फिर 'साल्ट' (कई पौधों की छाल की राख) का मुलम्मा चढ़ाया जा सकता है। इन गोलियों को निगलने पर पांच मिनटों में ही नशा होने लगता है।

जायफल और जावित्री

ये दोनों घरेलू मसाले हैं जो एक ही वृक्ष जयपत्र (मिरिस्टिका फ्रैगरेंस) से प्राप्त होते हैं। जायफल इस वृक्ष का बीज होता है और जावित्री इस बीज का खोल है जो नारंगी लाल रंग का होता है। इन दोनों में मिरिस्टमिन नामक रसायन होता है जो अधिक मात्रा में लिये जाने पर गांजे जैसा प्रभाव उत्पन्न करता है। इसके लिए दो संपूर्ण पिसे हुए जायफल की जरूरत होती है। पर इनका उपयोग, निराशा की अवस्था को छोड़कर, विरले ही देखने में आया है। इसका कारण इससे जुड़े दुष्प्रभाव हैं, जैसे—मुंह सूखना, तेज प्यास, दिल जोर-जोर से धड़कना, उदर-शूल,



चित्र 74 : विरोला और उसके उपयोग।

उबकाई, चक्कर आना और उत्तेजना। जायफल का व्यापक उपयोग 'प्रिजन ड्रग' (जेल औषधि) के रूप में है, क्योंकि यह कैदियों को आसानी से और सस्ते में उपलब्ध हो जाती है।

कावा

यह पेय दक्षिणी प्रशांत क्षेत्र में युगों से प्रचलित है। यह यहां के स्थानीय पौधे

पिपरमेथिस्टिकम की जड़ से बनता है। ये जड़ें नशे का मुख्य स्रोत हैं। इस जड़ की इतनी मांग है कि पुराने दिनों में बाकायदा इसके बाग लगते थे। हालांकि ज्यादातर जड़ों का उपयोग पीसकर किया जाता है, पर उन्हें चबा-चबाकर खाने की विधि भी लोकप्रिय है। औषधि का प्रभाव शुरू में सुखभ्रम उत्पन्न करता है। इसके बाद शांतिपूर्ण नींद आ जाती है।

खाट

कैथा एडुलिस नामक वृक्ष के डंठलों और पत्तियों में खाट अल्कलायड मिलता है। दक्षिण अफ्रीकी इसे बुश्मैन की चाय भी कहते हैं। इथियोपिया में इसका उपयोग प्रागैतिहासिक काल से होता आ रहा है। वैसे तो यह वृक्ष वहां जंगली रूप में मिलता है, पर दो मुख्य केन्द्रों में इसकी खेती भी होती है। इथियोपिया के हर्रार और केन्या के मेरू में। यह पर्वत की 1,500 से 2,000 मी. की ऊंचाई पर सीढ़ीदार ढलानों पर उगाया जाता है। एक बाग में 8 से 12 पेड़ होते हैं। टहनियों और पत्तियों को चबाकर इस औषधि का सेवन करते हैं। इन्हें दस मिनट तक चबाया जाता है ताकि सारा रस निकल जाये। चबाने के साथ-साथ धूम्रपान और ढेर सारा पानी पीना रिवाज है। कभी-कभी इसे शहद के साथ पीसकर भी खाया जाता है। अरब के कुछ भागों में इसके सूखे पत्तों का धूम्रपान किया जाता है। अरब के कुछ हिस्सों में इस औषधि का सेवन समारोहों में होता है ताकि इसके सुखद प्रभावों का भरपूर आनंद उठाया जा सके, पर अधिक मात्रा लेने पर उत्तेजना, पागलपन और भ्रांतियां उत्पन्न हो सकती हैं।

सोमरस

हम सभी इस ऐतिहासिक पेय से परिचित हैं। यह देवताओं का पेय था और इसका महिमागान ऋग्वेद में भी है। 'सोमा' शब्द यूनानी से निकला है और इसका तात्पर्य शरीर से है। इसके विपरीत 'साइक' का अर्थ मस्तिष्क से लगाया जाता है। इसका उपयोग भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर अफगानिस्तान में आर्यों द्वारा बड़े समारोह और आडंबरपूर्ण ढंग से किया जाता था। इंडो-ईरानी लोग भी इसका सेवन करते थे। आर्यों का सोम पौधा क्या था, इसकी निश्चित पहचान नहीं हो पायी है। पर ऋग्वेद के वर्णन के आधार पर कई समझदारीपूर्ण अनुमान लगाए गये हैं। यह पौधा अयोस्कोरिया

बल्बीफेरा या सेरोपेजिया बल्बोसा हो सकता है। सोमरस भांग की तरह शक्तिशाली नशीला पेय था।

नकली (साइकोमिमेटिक) एम्फीटामीन

ये औषधियां रासायनिक रूप से एम्फीटामीन से मिलती-जुलती हैं, पर एम्फीटामीन के विपरीत भ्रांतिकारक गुणों को दर्शाती हैं। अभी तक 28 ऐसी भ्रांतिकारक एम्फीटामीन की पहचान पटरी बाजारों में हो चुकी है। ये अपने रासायनिक नामों के संक्षिप्त नामों से लोकप्रिय हैं।

डी. ओ. एम. (2,5 डाइमीथाक्सी-4- मिथाइलएम्फीटामीन) जो एस. टी. पी. नाम से भी ज्ञात है (अंग्रेजी के एस. टी. पी. सेरेनिटी, ट्रांक्विलिटी और पीस के लिए प्रयुक्त होते हैं, हिंदी में तीनों का अर्थ है शांति)। यह एक कृत्रिम औषधि है जिसका प्रवेश औषधि परिदृश्य में 1967 की वसंत ऋतु में हुआ था। 1964 में डव केमिकल कं. के लिए मीथाक्सोलेटेड एम्फीटामीन के ऊपर कार्य करते हुए डा. एलेक्जेंडर टी. शुलमिन ने डी. ओ. एम. का निर्माण किया था। ऐसा अनुमान है कि यह मेस्कालीन से लगभग 100 गुना अधिक शक्तिशाली पर एल. एस. डी. से 30 से 50 गुना कम असरकारक है। इसके सेवन से शून्यता, तनाव, कंपकंपी, थकान और अत्यधिक पसीना जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं। अधिक मात्रा लेने पर एल. एस. डी. के समान मानसिक प्रभाव प्रकट होते हैं। भ्रांति उत्पन्न करने के लिए कम से कम 5 मि. ग्रा. खुराक जरूरी है।

एम. डी. ए. 3,4 मिथाइलीन डाइआक्सीएम्फीटामीन के संक्षिप्त नाम हैं। लेकिन लती व्यक्तियों ने इस नाम से काल्पनिक नाम ईजाद किया है मेलोव ड्रग आफ अमेरिका यानी अमेरिका की रसीली औषधि। यह 'लव ड्रग' या प्रेम औषधि के नाम से भी ज्ञात है। लंबे समय से यह गलतफहमी रही है कि यह विषहीन भ्रांतिकारक औषधि है। इसके प्रभाव भी एल. एस. डी. के समान हैं।

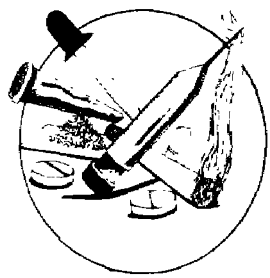
डी. एम. टी.

यह डाइमिथाइलट्रिप्टामीन का संक्षिप्त नाम है। यह या तो सूंघी जाती है या इसका इंजेक्शन लिया जाता है। इसके 60 से 150 मि. ग्रा. की एक खुराक का असर 45 से 60 मिनट तक रहता है। इस कारण से इसे कभी-कभी

बिजिनेसमैन्स ट्रिप (व्यापारी का दौरा) या 'लंच-आवर ट्रिप' (दोपहर के भोजन का दौरा) नाम से भी जाना जाता है। इसके प्रभाव मुख्यतया भ्रांतिकारक हैं। डी. एम. टी. मानसिक निर्भरता विकसित कर सकती है, शारीरिक नहीं। पटरी बाजारों में यह नारंगी द्रव्य या क्रिस्टल रूप में मिलती है।

डी. ई. टी.

डाइथाइलट्रिप्टामीन या डी. ई. टी. कानूनी नियंत्रण में आने वाली नयी भ्रांतिकारक औषधियों में से एक है। यह डी. एम. टी. की समतुल्य, तेज असर कृत्रिम औषधि है। इसकी 50 से 60 मि. ग्रा. मात्रा इंजेक्ट करने पर दृष्टि-विकृतियां या विकृत दृश्य, चक्कर और समय का अनिश्चित अहसास आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। डी. ई. टी. का प्रभाव दो से तीन घंटों तक रह सकता है।



9

एम्फीटामीन : सुपरमैन औषधियां

एम्फीटामीन औषधि के रासायनिक नाम एल्फामिथाइल फेनीथाइलामीन के परिवर्णी शब्द से बना नाम है। लेकिन अब एम्फीटामीन नाम एम्फीटामीन-जैसे यौगिकों और इनके समतुल्य रसायनों के पूरे वर्ग के लिए मुक्त रूप से प्रयुक्त होता है। एम्फीटामीन औषधियों के उस वर्ग से संबंधित है जिसे उत्तेजक (स्टीमुलेंट्स) नाम से जाना जाता है और ये व्यक्ति को सक्रिय बना देती हैं। उत्तेजक पदार्थ केंद्रीय स्नायुतंत्र पर प्रभाव डाल व्यक्ति के शरीर की क्रियाओं की गति बढ़ा देते हैं जिससे वह असीमित ऊर्जा महसूस करता है। कुछ लोग उत्तेजक औषधि लेने पर अशांत व बातूनी बन जाते हैं या सोने में कठिनाई महसूस करते हैं। वे अस्थायी रूप से स्वस्थ, आत्मविश्वासी और चुस्त महसूस करते हैं। ऐसे लोग लंबे समय तक जगे रहकर दूसरों की अपेक्षा अधिक कार्य कर सकते हैं। इसी कारण से इन औषधियों को 'सुपरमैन ड्रग्स' कहा जाता है। पर असल में उत्तेजक औषधियां शरीर को अतिरिक्त ऊर्जा नहीं देती हैं, बल्कि शरीर की ऊर्जा को तेजी से खर्च करती हैं। लेकिन एम्फीटामीन के प्रयोग से देर तक जागकर अधिक कार्य करना बिल्कुल ऐसा ही है जैसे थके हुए घोड़े को चाबुक मारकर चलाया जाए। अंततः लती व्यक्ति अवमानव साबित होता है। इसीलिए चिकित्सा विशेषज्ञ थकान दूर करने, भूख कम करने या उदासी दूर करने के लिए उत्तेजक औषधि लेने की सलाह नहीं देते हैं।

हम चाय,काफी जैसे मामूली उत्तेजक पदार्थों से परिचित हैं। लेकिन ये नुकसानदायक नहीं हैं। नुकसानदायक उत्तेजकों जैसे एम्फीटामीन 'अपर्स' या 'पेप पिल्स' नाम से औषधियों के अपराध जगत में ज्ञात हैं। ये उत्तेजक दिल की धड़कन को बढ़ा सकते हैं और अत्यंत उच्च रक्तचाप का कारण बन सकते हैं।

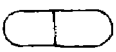
अक़्सर ऐसी स्थिति रक्तस्राव के जरिए मस्तिष्क को गंभीर रूप से क्षति पहुंचा सकती है। बाजार में आज कई एम्फीटामीन जैसे यौगिक उपलब्ध हैं, परंतु जिन तीन औषधियों का सर्वाधिक दुरुपयोग होता है, वे हैं–बेंजेड्रीन, डैक्सेड्रीन और मेथेड्रीन। बेंजेड्रीन एम्फीटामीन सल्फेट का व्यापारिक नाम है और यह चिकित्सकीय उपयोग के लिए स्मिथ-क्लाइन फ्रेंच लैबोरेट्रीज द्वारा बनाई जाती है। यह 5 मि. ग्रा. की चपटी, आडू के रंग की (हरित-गुलाबी), त्रिपक्षीय (सिंघाड़े के शक्ल की), बीच में दबी टिकिया के रूप में, और 15 मि. ग्रा. के सतत दवा मुक्त करने वाले कैप्सूलों के रूप में उपलब्ध है। कैप्सूलों का ढक्कन भूरे रंग का तथा निचला हिस्सा पारदर्शी होता है जिसमें गुलाबी रंग की औषधि दिखती है और आवरण पर 'एस. के. एफ.' अंकित होता है।

औषधियों के भूमिगत संसार में एम्फीटामीन सल्फेट कई रूपों में प्रकट होती है। ये गुलाब के रंग की, दिल की शक्ल की गोलियों के रूप में मिल सकती हैं जो अवैध व्यापार में 'पीचेज़' 'रोजेज़', 'हार्ट्स' या 'बेनीज़' नाम से ज्ञात हैं। अधिकांश खतरनाक औषधियों के समान एम्फीटामीन के खास नाम भी गोलियों या कैप्सूलों की आकृति और रंग, प्रभाव और प्रयोग पर आधारित होते हैं। कभी-कभी एम्फीटामीन सल्फेट गोल, सफेद दुहरी खांचेदार गोलियों के रूप में भी मिलती है। इसके इन रूपों को 'कार्टव्हील', 'व्हाइट्स' या 'बेनीज़' कहा जाता है (तालिका 3) :

दूसरी एम्फीटामीन डेक्सेड्रीन है जो डेक्स्ट्रोएम्फीटामीन-सल्फेट का व्यापारिक या संक्षिप्त नाम है। चिकित्सकीय प्रयोग के लिए इसका निर्माण स्मिथ क्लाइन फ्रेंच लैबोरेट्रीज द्वारा तीन रूपों में किया जाता है–अक्सीर या सत के रूप में, वक्त-जरूरत पर औषधि मुक्त करने वाले कैप्सूल के रूप में और टिकिया के रूप में। कैप्सूल (अवैध व्यापार में ब्राउनीज नाम से ज्ञात) का ऊपरी भाग भूरा और निचला भाग पारदर्शी होता है जिससे सफेद व नारंगी रंग की औषधि दिखती है। कैप्सूल पर एस. के. एफ. अंकित होता है। इन अक्षरों के आगे दो बिंदु 15 मि. ग्रा.; एक बिंदु 10 मि. ग्रा.; और कोई भी बिंदु नहीं होने पर 5 मि. ग्रा. का आशय प्रकट होता है। 5 मि. ग्रा. की टिकिया पीले-नारंगी रंग की, सिंघाड़े के शक्ल की, चपटी और खांचेदार होती है। अवैध व्यापार में ये टिकिया 'आरेंज हार्ट्स', 'आरेंजेज़' या 'डेक्सीज़' नाम से विख्यात हैं।

मेथेड्रीन रासायनिक रूप से मेथेएम्फीटामीन हाइड्रोक्लोराइड है। यह सफेद टिकियों या गोलियों की शक्ल में उपलब्ध है और 'मेथ', 'स्पीड', 'क्रिस्टल' या 'व्हाइट्स'

तालिका 3 : एम्फीटामीन जिनका सामान्यतः उपयोग और दुरुपयोग होता है

कैप्सूल व टिकिया का रंग और आकार	*व्यापारिक नाम*	*पटरी बाजारों में नाम*
 लाल, गुलाबी	बेंजेड्रीन (स्पैंसूल कैप्सूल)	'बेनीज़'
 गुलाबी	बेंजेड्रीन (टिकिया)	'बेनीज़'
 नारंगी	डेक्सेड्रीन (स्पैंसूल कैप्सूल)	'डेक्सीज़'
 नारंगी	डेक्सेड्रीन (टिकिया)	'डेक्सीज़'
 हरा	डेक्सामिल (टिकिया) (डेक्सेड्रीन और एमोबार्बीटल युक्त)	
 सफेद	एड्रिसल (टिकिया) (बेंजेड्रीन, एस्पिरिन और फेनएसिटिन युक्त)	
 सफेद	बाइफीटामीन (कैप्सूल)	'व्हाइट्स'
 सफेद	मेथेड्रीन (टिकिया)	'मेथ','स्पीड', 'क्रिस्टल', 'व्हाइट्स'

नामों से विख्यात हैं। लेकिन मेथेड्रीन मुख्यतया अंतशिरा उपयोग के लिए है।

इसके अलावा, ये औषधियां कई विचित्र संयोगों में भी उपलब्ध हैं। सर्वाधिक लोकप्रिय मेल में से एक बाइफीटामीन है जो सफेद कैप्सूलों (व्हाइट्स) के रूप में उपलब्ध है। यह बेंजेड्रीन और डेक्सेड्रीन की बराबर मात्राओं का मिश्रण है। डेक्सेड्रीन एक शामक औषधि ऐमोबार्बीटल से साथ हरे रंग की सिंघाड़े की शक्ल की गोलियों में भी उपलब्ध है।

एम्फीटामीन की कहानी

यह कहानी 1887 से शुरू होती है जब दमा की महंगी औषधियों के सस्ते विकल्प के रूप में एम्फीटामीन का निर्माण हुआ था। इसके चालीस साल बाद यह पता चला कि औषधि का केंद्रीय स्नायुतंत्र पर शक्तिशाली उत्तेजक असर पड़ता है। सन् 1930 में बेंजेड्रीन श्वासक (इनहेलर) के रूप में इस औषधि से लोगों का परिचय हुआ जो नासिका मार्ग साफ करने और खोलने के काम आता था। सन् 1937 में एम्फीटामीन टिकिया के रूप में भी आने लगी। उद्देश्य था नारकोलेप्सी (निद्रा रोग—जिसमें हमेशा सोने की इच्छा होती है) का इलाज। तबसे इसका प्रयोग किस्म-किस्म की रोग अवस्थाओं के इलाज में होने लगा। इनमें शामिल हैं—सामान्य पागलपन, मस्तिष्कीय पक्षाघात, अफीम की लत, तंबाकू की लत, हृदय रोग, पैरों की कंपकंपाहट, अल्कोहल की लत, पार्किन्सन डिसीज, सामान्य अवसाद, मिर्गी और अति चौकस शिशु लक्षण। अति चौकस शिशु लक्षण (हाइपरकाइनेटिक चाइल्ड) ऐसी अवस्था है जिसमें बच्चा इतना सक्रिय होता है कि उस पर काबू पाना कठिन होता है। हालांकि एम्फीटामीन उत्तेजक हैं पर बच्चों को उपरोक्त अवस्था में वे शांत कर देती हैं। इसका कारण स्पष्ट नहीं है।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान एम्फीटामीन का उत्पादन बहुत अधिक बढ़ा। इसका उपयोग युद्ध के मोर्चे पर लड़ाई की थकान मिटाने में और देश के अंदर उद्योगों में मजदूरों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए होने लगा। युद्ध के बाद जापान, स्वीडन और अमेरिका में एम्फीटामीन दुरुपयोग की महामारी जैसी स्थिति देखी गयी। पहला व्यापक दुरुपयोग जापान में सन् 1945 में सामने आया और सन् 1954 में यह चरम सीमा पर पहुंचा। युद्ध के बाद जरूरत न पड़ने पर सेना ने दवा कंपनियों से एम्फीटामीन लेना बंद कर दिया। फलस्वरूप कंपनियों के पास यह भारी मात्रा में जमा हो गयी। इसे खपाने के लिए दवा निर्माताओं ने आम जनता में इसका व्यापक प्रचार किया। जापान, जो कि पहले औषधि दुरुपयोग से मुक्त देश था, करीब 20 लाख एम्फीटामीन लती लोगों से भर गया जिसमें अधिकांश इसे नस में लेते थे। दूसरी दुरुपयोग महामारी स्वीडन में हुई जो 1950 के दशक के मध्य में चरम पर पहुंची। इस दौरान एम्फीटामीन से संबंधित औषधि फेनमेट्राजीन (प्रिलुडिन नाम से बिकती थी) नसों के जरिए ली जाती थी।

अमेरिका में 1950 के दशक के आरंभ में एम्फीटामीन को मुंह से लेने का चलन इम्तहान की तैयारी में जुटे कालेज विद्यार्थियों और देश के आर-पार

ट्रक चलाते ड्राइवरों के बीच लोकप्रिय हुआ। 1950 के दशक के उत्तरार्ध में पश्चिमी तट के शहरों में एम्फीटामीन नस से लेने की लत 'स्पलैश' (बोझार) के रूप में तेजी से फैली। इसका एक कारण शायद अच्छी किस्म की हेरोइन की कमी थी। 1960 दशक की शुरुआत में सैन फ्रांसिस्को खाड़ी क्षेत्रों में औषधि दुरुपयोग निरंकुश रूप से बढ़ा। इस प्रकोप पर कुछ काबू फर्जी डाक्टरों को दंडित कर और बाजार से एम्फीटामीन के एम्प्यूल हटाकर पाया गया। इसके कुछ वर्ष पूर्व आसानी से उपलब्ध पर अधिक दुरुपयोग किए जाने वाले नासिका इनहेलर्स में बेंजड्रीन और डेक्सेड्रीन का प्रयोग बंद कर दिया गया था। इन श्वासकों में 350 मि. ग्रा. एम्फीटामीन का आधार प्रोपाइलहेक्सीड्रीन नामक यौगिक में बदल दिया गया जिसकी रासायनिक संरचना मेथएम्फीटामीन के समान थी।

वैध रूप से तैयार एम्फीटामीन की उपलब्धता घटने के साथ ही अवैध 'स्पीड लैब्स' प्रकट हुई, जिनमें 1960 के दशक के मध्य में उत्पादन चरम पर पहुंच गया। व्यावसायिक रूप से उपलब्ध शुरुआती रसायनों से इन गुप्त प्रयोगशालाओं में एम्फीटामीन बनाना आसान था। बावर्चीनुमा रसायनज्ञ को आधा किलो औषधि बनाने में मात्र 50 से 150 डालर खर्च आता था। पर यही औषधि भारी मिलावट करने के बाद पटरी बाजार में 85 डालर प्रति 15 ग्रा. की दर से बिकती थी।

इतिहास के ऐसे भी दौर रहे हैं जब एम्फीटामीन की वैध सप्लाई का अनुमानित 90 प्रतिशत अवैध बाजारों में बिकता था। सन् 1971 तक अमेरिका में एम्फीटामीन का वैध उत्पादन 12 अरब टिकिया तक पहुंच गया था। अमेरिकी एम्फीटामीन महामारी 1960 दशक के आखिर में अपने चरम पर पहुंची थी। लेकिन औषधि उपयोगकर्ताओं में अधिकांश वे रोगी थे जो अनजाने में कानूनन वैध नुस्खों का पालन कर रहे थे। आज हालांकि बच्चों के निद्रारोग व अतिगतिशीलता का इलाज एम्फीटामीन से प्रभावकारी ढंग से हो रहा है, पर पहले यह कई चिकित्सकीय अवस्थाओं के लिए मान्य थी जिनका पूर्व में वर्णन किया गया है।

पटरी उपयोग

ऐसे लोग जो औषधि के सेवन में रोमांच की तलाश करते हैं, पटरी बाजार की बोली में 'स्पीड फ्रीक्स' (तरंगी) हैं। शुरुआती 'फ्लैश' या 'रश' आनंदकर होता है और हालांकि यह क्षणिक होता है पर एम्फीटामीन दुरुपयोग के लिए प्राथमिक

प्रेरक का काम करता है। 'रश' के बाद कुछ अधिक समय तक कायम रहने वाली भावनाएं शुरू होती हैं। इनमें अति-बलशाली, सुखी, स्पष्ट सोच, मिलनसारिता, आत्मविश्वास, उत्साह और अपराजेयता का अहसास शामिल है। थकान या उदासी तुरंत दूर हो जाती है। शुरू-शुरू में 2 से 40 मि. ग्रा. की मात्रा दिन में चार-पांच बार नस द्वारा दी जाती है। पर शीघ्रता से सहनशीलता बढ़ने पर चिरकालिक लती धीरे-धीरे दिन भर में 800 से 2400 मि. ग्रा. की ऊंची खुराक भी सह लेते हैं। अभी तक किसी भी लती में दिन भर की उच्चतम खुराक 15,000 मि. ग्रा. (15 ग्राम) दर्ज की गयी है। ऐसी दैत्याकार खुराकों के मस्तिष्क पर कई अनचाहे दुष्प्रभाव भी पड़ते हैं। सर्वमान्य परिणाम है निर्णय में गलती करना और दंडित होने के भय से हिंसक कार्य करना। इस अहसास की पहचान पैरानोइया (संविभ्रम) नामक मानसिक बीमारी से की गयी है। इस रोग में रोगी को लगता है कि हर कोई उसी के पीछे पड़ा है।

स्पीड बिंज

एम्फीटामीन दुरुपयोग के साथ 'स्पीड बिंज' या 'रन' नामक व्यापक बानगी देखने में आती है। इसके दौरान नस में दिन भर में 10 के हिसाब से तीन-चार दिनों तक लगातार एम्फीटामीन इंजेक्ट की जाती है। कभी-कभी यह प्रक्रिया 12 दिनों तक चलती है। तरंगी (स्पीड बिंज) के अधीन व्यक्ति इसके बाद थककर चूर होने तक कुछ भी खाता या सोता नहीं है। बिंज (रंगरली) समाप्त होने के बाद लती व्यक्ति लगातार पांच दिनों तक सोता है और अंत में कुंभकर्णी भूख के साथ जागता है। फिर गहरे अवसाद का दौर शुरू होता है जिसका अंत फिर एम्फीटामीन के इंजेक्शन से ही होता है और इस प्रकार इसका दुष्चक्र शुरू हो जाता है। कुछ लोग चक्र को बार्बीच्यूरेट्स का इंजेक्शन लकर तोड़ने की कोशिश करते हैं, क्योंकि बार्बीच्यूरेट्स और ओपीएट्स का प्रभाव एम्फीटामीन का ठीक उल्टा होता है (अगला अध्याय देखिए)। इस तरीके को 'ठंडा-गरम-ठंडा करना' कहते हैं। तरंगियों के लिए औषधि विशेषज्ञ दुरुपयोग के विरुद्ध अपने अभियान में नारा लगाते हैं–'स्पीड थ्रिल्स बट किल्स'। यह दिलचस्प इबारत हम अक्सर जाने पहचाने यातायात चिह्नों पर देखते हैं। कुछ तरंगी अपनी सीमा जानते हैं और इसे परोक्ष रूप से पार करने की कोशिश नहीं करते। कुछ लोग अपनी सीमा पार कर ही जाते हैं। ऐसे लोगों का 'स्तर' इस बात से पता चलता है कि वे कितनी खुराक ले सकते हैं, उनका पहनावा कैसा है, उनका आचरण व व्यवहार

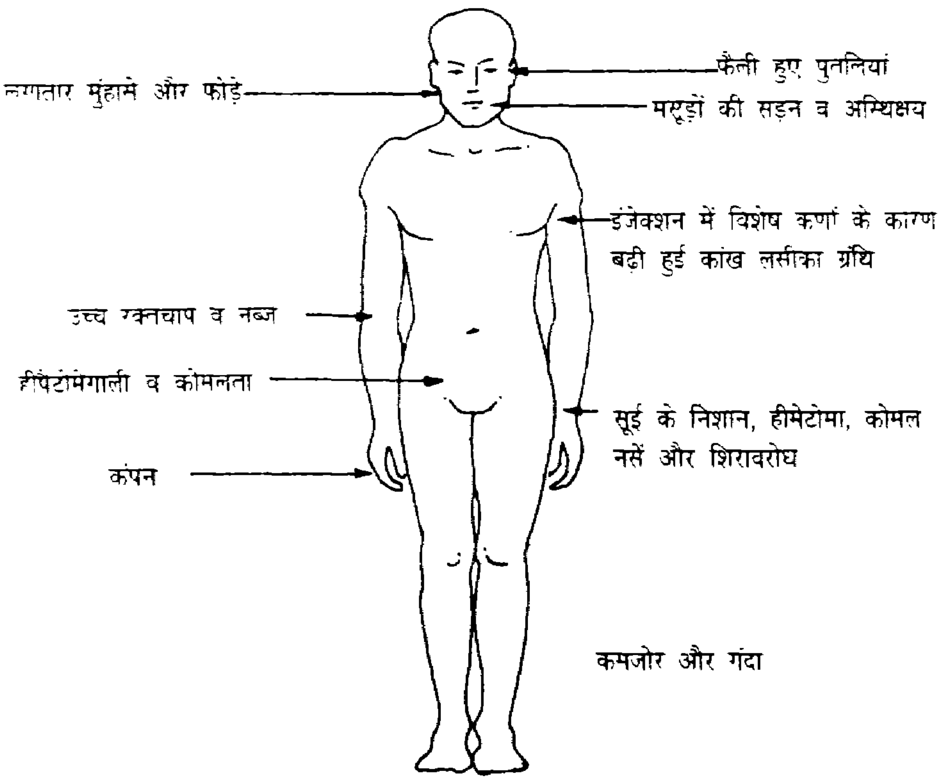
कैसा है, और औषधियों के संबंध में उनकी सामान्य जानकारी कितनी है।

हेरोइन की कमी के दिनों में हेरोइन के लती एम्फीटामीन लेना शुरू कर देते हैं। ऐसी एक घटना सन् 1972 में वाशिंगटन डी. सी. में हुई थी। हेरोइन की घटती गुणवत्ता और उपलब्धता से एम्फीटामीन की लघु महामारी शुरू हो गयी थी। एम्फीटामीन का उपयोग 'स्पीड बाल' में कोकीन के विकल्प के रूप में भी हुआ है। 'स्पीड बाल' कोकीन/हेरोइन का मिश्रण है।

आज पटरी बाजार में उपलब्ध एम्फीटामीन या 'स्पीड' मात्र कैफीन और/या विभिन्न अन्य औषधियों की जो एम्फीटामीन की नकल होती है, मिश्रण होती हैं। ऐसी दो औषधियों फेनाइल प्रोपेनॉल अमीन और एफिड्रीन हैं। फेनफ्लोरामीन एम्फीटामीन की समतुल्य है पर यह उत्तेजना के स्थान पर अवसाद उत्पन्न करती है।

लक्षण और कार्य

विषाक्तता के लक्षणों का वर्णन चार बिंदुओं में वर्गीकृत किया जा सकता है।



चित्र 75 : एम्फीटामीन–चिह्न व लक्षण

अवस्था-1 के दौरान बेचैनी, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा, अनियंत्रित कंपन, पसीना बहना, आंख की पुतलियां फैलना और चेहरा लाल होना शामिल है। *अवस्था-2* के दौरान सक्रियता, भ्रम, रक्तचाप, तापमान और श्वसन दर सभी बढ़ जाते हैं। *अवस्था-3* के दौरान सन्निपात, उन्माद, खुद को चोट पहुंचाना और रक्तचाप, ताप और श्वसन दर में और बढ़ोतरी आदि दर्ज किए जाते हैं। *अंतिम अवस्था* में झटके, बेहोशी रक्त संचरण बंद होना और अंततः मौत हो जाना शामिल है।

एम्फीटामीन प्राकृतिक शारीरिक हारमोनों एपिनेफ्रीन और नारएपिनेफ्रीन के सदृश्य हैं। इस समानता के कारण ये औषधियां प्राकृतिक हारमोनों की नकल कर सीधे अपना प्रभाव डाल सकती हैं। सामान्यतया ये हारमोन तनाव के समय निकलते हैं। इस प्रकार एम्फीटामीन लेने पर शरीर सामान्य तनाव की अवस्था में चला जाता है, जैसे कि वह किसी खतरे या मार-पीट का सामना करने को तैयार हो। एम्फीटामीन के प्रभावों व लक्षणों का यही आधार है।

अधिकांश मादक औषधियों की भांति एम्फीटामीन के सेवन करने पर एक अनोखी मनोविकृति विकसित होती है। सामान्यतया यह धीरे-धीरे लंबे समय तक भी प्रकट हो सकती है। एम्फीटामीन मनोविकृति काफी कुछ पैरानायड स्कीजोफ्रेनिया (संविभ्रम पागलपन) के समान होती है। इस प्रकार के पागलपन में मुख्यतः वहम और भ्रम उत्पन्न होते हैं। एम्फीटामीन मनोविकृति के परिचायक लक्षण हैं—चिंता, भय, अस्त-व्यस्त सोच, ध्यान केंद्रित न होना, वहम, भ्रांति और हमेशा मारे जाने का भ्रम। मारे जाने का भ्रम एक विशेष प्रकार की भ्रांति है जिसमें व्यक्ति को गलतफहमी होती है कि कोई-न-कोई उसे मार देगा। समय-समय पर सामान्य मनुष्य को इस प्रकार की गलतफहमी हो सकती है, पर इस गलतफहमी को तर्क देकर दूर किया जा सकता है। जबकि भ्रांत मनुष्य अपनी गलतफहमी पर अड़ा रहेगा और उसकी गलतफहमी किसी भी तर्क से दूर नहीं होती है (वहम का इलाज हकीम लुकमान के पास भी नहीं था)। यही इस भ्रांति की विशेष पहचान है।

अक्सर भ्रांतियां दृष्टि संबंधी होती हैं, अर्थात व्यक्ति अस्तित्वहीन वस्तुओं को देखता है। वहीं दूसरी ओर पागलपन में भ्रांतियां आवाजों से जुड़ी होती हैं। रोगी अस्तित्वहीन आवाजों को सुनता है। स्पर्श और घ्राण संबंधी भ्रांतियां भी एम्फीटामीन दुरुपयोग से जुड़ी हुई हैं। स्पर्श भ्रांति में लगता है कि शरीर पर कीड़े रेंग रहे हैं और घ्राण भ्रांति में अस्तित्वहीन महक महसूस होती है। ये दोनों भ्रांतियां असाधारण संवेदनाएं हैं।

एम्फीटामीन मनोविकृति की एक खास अभिव्यक्ति एक ही कार्य बाध्य रूप में बार-बार करने की आदत है। इसे 'निक-नैकिंग' (दिखावा करना), 'पंडिंग' या 'हंग अप एक्टीविटी' के नाम से जाना जाता है। नशे में रोगी बार-बार माला जपता रहेगा, नाखून पालिश करता रहेगा या टेलिविजन, रेडियो और घड़ियां खोलकर उनके पुर्जों को अलग-अलग करेगा, उनका विश्लेषण करेगा और फिर उन्हें क्रम से लगायेगा। अगर इसके पास कार हुई तो वह उसे दिन भर धोता ही रहेगा। या दिन भर अपने जूते चमकाने में लगा रहेगा। इसी प्रकार एक बार पुलिस ने ऐसे नशे से ग्रस्त एक मोटरसाइकिल गिरोह को रोका जो एक ही सड़क के दो सौ चक्कर लगा चुका था। यह आवृतीय व्यवहार व्यक्ति को संतोषजनक लगता है और जानवरों में एम्फीटामीन से उत्पन्न व्यवहार के समान है।

कई वजन घटाने वाली गोलियों में भी एम्फीटामीन होती हैं क्योंकि इनसे भूख कम हो जाती है। पर अच्छे चिकित्सक कभी इन्हें लेने की सलाह नहीं देंगे क्योंकि कुछ महीनों बाद ये गोलियां निष्प्रभावी हो जाती हैं और व्यक्ति दोबारा अधिक भोजन करने लगता है। ये गोलियां ऐसी औरतों के लिए खासतौर से खतरनाक हैं जो अभी प्रजनन-वय में हों क्योंकि यह ज्ञात है कि एम्फीटामीन अजन्मे बच्चों में विकृतियां उत्पन्न कर सकती हैं। नवजात शिशु में हाथ-पैरों की विकृतियों का कारण माता द्वारा एम्फीटामीन दुरुपयोग में खोजा गया है।

हालांकि एम्फीटामीन की सहनशीलता और शारीरिक निर्भरता स्पष्ट रूप से विकसित होती हैं पर अपनयन लक्षण हेरोइन जैसी शामक औषधि के मुकाबले काफी मंद होते हैं। शरीर में ऐंठन नहीं होती और कोई घातक बात भी नहीं होती। सिर्फ तंद्रा और उदासी के लक्षण उभरते हैं। औषधि छोड़ने के दो-तीन दिन बाद अवसाद चरम अवस्था में होता है। यह इतना गहरा और सतत हो सकता है कि रोगी दोबारा औषधि लेने पर मजबूर हो जाता है।

जहां तक कार्यक्षमता की बात है, अधिकतर मादक औषधियों की भांति एम्फीटामीन के साथ भी कामोत्तेजक होने का मिथ्या प्रचार जुड़ा हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि एम्फीटामीन वीर्य-स्खलन को विलंबित कर सकती है जिससे कामक्रिया घंटों तक चल सकती है और जब चरमोत्तेजना आती है तो उसमें असीम आनंद मिलता है। पर कोई भी चिकित्सकीय प्रमाण इस धारणा की पुष्टि नहीं कर सका है। लती द्वारा महसूस की गई कामोत्तेजना पूरी तरह से मानसिक होती है न कि शारीरिक। वस्तुतः कई अनुसंधानों से पता चला है कि एम्फीटामीन लेने के बाद लैंगिक निषेध की भावना और गहरी और पक्की हो जाती है।

एम्फीटामीन का सेवन करने वाले एथलीटों का प्रदर्शन बेहतर हो जाता है, अतः वे अन्य अव्यसनी प्रतियोगियों के मुकाबले बेईमानीपूर्ण लाभ की स्थितियों में होते हैं। इसीलिए अंतर्राष्ट्रीय ओलंपिक संघ सहित सभी क्रीड़ा संगठनों ने एम्फीटामीन के उपयोग पर पाबंदी लगा दी है। इसका सेवन करते पकड़े जाने पर खिलाड़ी के ऊपर किसी भी प्रतियोगिता से हिस्सा लेने पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है।

प्रिलुडिन

यह फेनमेट्राजीन हाइड्रोक्लोराइड का व्यापारिक नाम है। यह एम्फीटामीन के काफी समान है। 1950 के दशक के मध्य में स्वीडिश औषधि महामारी के लिए यही जिम्मेदार थी। औषधि के रूप में यह एक दुर्बल उत्तेजक है। कैफीन से शक्तिशाली पर एम्फीटामीन से कम सक्षम। एम्फीटामीन की तरह इसका उपयोग भी वजन कम करने के लिए होता था। इससे उत्तेजक या बनावटी स्वस्थ होने की अवस्था पैदा होती है। इस अहसास और झूठे कामोत्तेजक गुणों के कारण इसका दुरुपयोग होता है। निर्भरता, क्षमता और अपनयन लक्षण एम्फीटामीन से मिलते-जुलते हैं। प्रिलुडिन का निर्माण गेइगी फार्मेस्यूटिकल्स द्वारा किया जाता है। यह कई रूपों और मिश्रणों में आती है पर अधिकतर यह गुलाबी, वर्गाकार खांचेदार 2.5 मि. ग्रा. की टिकिया या गुलाबी गोल 'एंड्यूरेट्स' के रूप में दिखती है जो 75 मि. ग्रा. की टिकिया है जिससे दीर्घावधि तक असर होता है।

गैर-एम्फीटामीन उत्तेजक

पटरी बाजारों में गैर-एम्फीटामीन उत्तेजक बहुत कम संख्या में उपलब्ध है। इनमें से एक रीटालिन नाम से बेची जाने वाली मिथइलफेनाइडेट हाइड्रोक्लोराइड है। यह व्यक्ति के मूड (मिजाज) को उछालकर कार्य-कौशल में सुधार लाती है और वह भी बिना अति उत्तेजना या गंभीर पश्च अवसाद के। प्रिलुडिन की भांति इसके भी निर्भरता, क्षमता और अपनयन लक्षण एम्फीटामीन के समान हैं। यह सीबा फार्मेस्यूटिकल्स द्वारा बनाई जाती है और 5 मि. ग्रा. की पीली, 10 मि. ग्रा. की पीत-नीली और 20 मि. ग्रा. की हरित-गुलाबी गोल टिकियों में जिनके ऊपर 'सीबा' छपा होता है, बेची जाती हैं।

10

बार्बीच्यूरेट्स–चिरनिद्रा के आसान उपाय

बार्बीच्यूरेट्स औषधियों के शामक या मंदकारक रूप में ज्ञात समूह की सदस्य हैं। अफीम पोस्त के ओपिएट उत्पाद और उनके समान मानवनिर्मित शामक औषधियां, जैसे–हेरोइन, मार्फीन, डेमिरोल और मीथाडोन इस समूह में शामिल हैं। शामक औषधियां ऐसे यौगिक हैं जो केंद्रीय स्नायुतंत्र की सक्रियता को मंद करते हैं। इस प्रकार इनका प्रभाव एम्फीटामीन जैसे उत्तेजकों का ठीक उलटा होता है। यह अजीब बात है कि औषधियों के इन दोनों वर्गो का भरपूर दुरुपयोग होता रहा है, हालांकि दोनों वर्गो की औषधियों का एक दूसरे से ठीक उलट प्रभाव होता है–शामक या उत्तेजक।

अपने प्रभाव की तीव्रता के आधार पर शामक औषधियों को तीन वर्गो में बांटा गया है। इनमें सबसे शक्तिशाली हिप्नोटिक्स (निद्राजनक औषधियां) हैं जो व्यक्ति को तुरंत सुला देती हैं। इसके बाद सीडेटिव हैं जो तनाव रहित अवस्था पैदा करती हैं जिससे नींद आती है। और अंत में ट्रांक्विलाइजर्स हैं, जो चिंता से मुक्ति दिलाती हैं, मांसपेशियों को तनाव-मुक्त करती हैं और शांति देती हैं, पर नींद या उनींदापन उत्पन्न नहीं करती हैं।

इस प्रकार हिप्नोटिक्स, सीडेटिव और ट्रांक्विलाइजर्स का एक ही काम है पर अंतर इनके प्रभाव की तीव्रता का है। बार्बीच्यूरेट्स निद्राजनक समूह से संबंधित हैं। इन्हें हम सामान्यतया नींद की गोलियों के रूप में जानते हैं। अवैध व्यापार में वे 'बार्ब्स', 'गूफबाल्स', 'कैंडी' या 'डाउनर्स' नाम से विख्यात हैं। इन सभी बार्बीच्यूरेट्स का जनक बार्बीच्यूरिक एसिड सर्वप्रथम जर्मन रसायनज्ञ एडाल्फ वान बेयर द्वारा सन् 1863 में बनाया गया था। इस रसायन के नामकरण के पीछे एक दिलचस्प कहानी है। उसकी खोजबीन के दौरान म्यूनिख कैफे की



चित्र 76 : जर्मन रसायनज्ञ बेयर बार्बीच्यूरिक एसिड बनाने वाला पहला व्यक्ति था।

वेट्रस ने अपने मूत्र नमूनों को उपलब्ध करा वान बेयर की हार्दिक सहायता की थी। उसका नाम बारबरा था। इसलिए जब अंततः औषधि तैयार हुई तो बेयर ने वेट्रस का सम्मान करने का निश्चय किया और उसके नाम पर अपनी खोज का बार्बीच्यूरिक एसिड नाम रखा।

इससे मिलती-जुलती घटना 40 वर्ष बाद सन् 1903 में घटित हुई जब दो जर्मन रसायनज्ञों, जोसेफ वान मेरिंग और एमिल फिशर ने एक संबंधित औषधि डाईथाइल बार्बीच्यूरिक एसिड का निर्माण किया। यह भी एक अच्छी निद्राजनक औषधि थी। वान मेरिंग को इटली का शहर वेरोना बेहद पसंद था। वह अकसर वेरोना जाया करता था और उसका मानना था कि वह विश्व में सर्वाधिक शांतिदायक जगह है। चूंकि नई-नई निर्मित औषधि भी शांति पहुंचाती थी, इसलिए उसने इसे नाम दिया—'वेरोनल'। एक तरह से यह नाम उचित भी था। लेकिन सन् 1918 में औषधि का नाम वेरोनल से बदलकर बार्बीटोन कर दिया गया।

बार्बीच्यूरेट्स के समूह

बार्बीच्यूरिक एसिड से लगभग 2,500 उत्पाद, बार्बीच्यूरेट्स बनाए जा चुके हैं। अपने असर की कालावधि के आधार पर उनको मोटे तौर पर चार प्रमुख समूहों में बांटा गया है। दीर्घावधि असरकारक बार्बीच्यूरेट्स का प्रभाव आठ या अधिक घंटे तक रहता है। बार्बीटोन, फेनोबार्बीटोन और मेथोबार्बीटोन इस समूह की प्रमुख औषधियां हैं। मध्यावधि असरकारक बार्बीच्यूरेट्स का प्रभाव चार से आठ घंटे तक रहता है। ऐमोबार्बीटल, ब्यूबार्बीटोन, साइक्लोबार्बीटोन और पेंटोबार्बीटोन इस समूह की औषधियों के उदाहरण हैं। अल्पावधि असरकारक बार्बीच्यूरेट्स का

असर चार घंटे से भी कम समय तक चलता है। इसके उदाहरण सेकोबार्बीटोन और हेक्सोबार्बीटोन हैं। अंत में अति अल्पावधि असरकारक बार्बीच्यूरेट्स हैं जिनका प्रभाव तुरंत शुरू होकर मात्र एक घंटे तक ही चलता है। इन औषधियों को सिर्फ शिरा मार्ग से दिया जाता है। इसके उदाहरण हैं—थियोपेंटोन और थियलबार्बीटोन।

बार्बीच्यूरेट्स की चिरकालिक विषाक्तता और अपनयन ऐंठन का पुरातन संदर्भ जर्मनी में चिकित्सकीय ग्रंथों में सन् 1905 का मिलता है। इसके बाद लगातार तीन दशकों तक यह खबरें आती रहीं कि बार्बीच्यूरेट्स से शारीरिक निर्भरता विकसित होती है। लेकिन इन्हें अनदेखा कर दिया गया। इस दौरान यह धारणा प्रबल थी कि बार्बीच्यूरेट्स का दुरुपयोग शारीरिक की बजाय मानसिक कारणों से ज्यादा था। सिर्फ सन् 1950 तक ही बार्बीच्यूरेट्स की पहचान हानिकारक औषधि के रूप में हुई जो शारीरिक निर्भरता उत्पन्न कर सकती थी।

आज कई प्रकार के बार्बीच्यूरेट्स का दुरुपयोग होता है। आमाइटल इली लिली एंड कं. द्वारा बनाई गयी औषधि एमोबार्बीटल का व्यापारिक नाम है। यह सेवन के आधे घंटे के भीतर ही असर करने लगती है और इसका प्रभाव तीन से छह घंटे तक चलता है। इसके 65 मि. ग्रा. के छोटे और 200 मि. ग्रा. के बड़े पीले-नीले-हरे कैप्सूलों पर खोलों के जोड़ पर गाढ़े नीले रंग की पट्टी होती है। दोनों खोलों पर 'लिली' छपा होता है। इनके 'ब्लूड्रैगन', 'ब्लूहेवेंस', 'ब्लू डेविल्स' आदि नाम लोकप्रिय हैं। सेकोनल, इली लिली द्वारा निर्मित सेकोबार्बीटल का व्यापारिक नाम है। यह 30, 50 और 100 मि. ग्रा. के कैप्सूलों में आती है। ये कैप्सूल चमकदार लाल रंग के होते हैं और दोनों खोलों पर गुलाबी रंग से लिली छपा हुआ होता है। ये 'पिल्स', 'रेड्स' आदि नामों से ज्ञात हैं। एक निर्माता ने इन दोनों औषधियों को बराबर मात्राओं में मिलाकर लाल-नीले कैप्सूलों में बेचना शुरू कर दिया। इसे 'टुइनल' का व्यापारिक नाम दिया गया। अपने दोरंगे कैप्सूल के कारण अवैध व्यापार में यह औषधि 'रेनबो', 'क्रिसमस ट्री' या 'रेड्स एंड ब्लूज़' से जानी गयी (तालिका 4)।

ऐबट लेबोरेट्रीज द्वारा निर्मित औषधि पेंटोबार्बीटल का व्यापारिक नाम नेमब्यूटल है। इस औषधि के अवैध व्यापारिक नाम 'येलो जैकेट्स', 'येलो बड्र्स' आदि हैं। जैकलीन सूसन के उपन्यास 'द वैली आफ द डाल्स' में नेमब्यूटल

तालिका 4 : सामान्य दुरुपयोग में बार्बीच्यूरेट्स

कैप्सूल का रंग और आकार	*व्यापारिक (और जातीय) नाम*	*पटरी बाजार में नाम*	*मुख्य चिकित्सकीय उपयोग*	*प्रभाव की अवधि*
 नीला-हरा	अमाइटल (एमोबार्बीटल)	ब्लू ड्रैगन	शामक व निद्राजनक	मध्यावधि
 लाल	सेकोनल (सेकोबार्बीटल)	रेड्स, रेड बड्र्स रेड डेविल्स	निद्राजनक	अल्पावधि
 लाल-नीला	टुइनल (एमोबार्बीटल व सेकोबार्बीटल का मिश्रण)	इंद्रधनुष (रेनबो)	निद्राजनक	मध्यम दीर्घावधि
 पीला	नेमब्यूटल (पेंटाबार्बीटल)	येलो जैकेट्स	निद्राजनक शामक और ऐंठनरोधी	अल्पावधि
 हरा	ल्यूमिनल (फेनोबार्बीटल)	पर्पल हर्ट्स बार्ब्स	निद्राजनक	दीर्घावधि

का ही अभिप्राय 'डाल्स' है। इससे कुछ भ्रम उत्पन्न हो सकता है क्योंकि औषधियों की अवैध नामावली में 'डाल्स' या 'डालीज' डोलोफीन (मेथाडोन) के संदर्भ में प्रयुक्त होता है जो कि एक कृत्रिम ओपिएट है न कि बार्बीच्यूरेट्स। ल्यूमीनल फेनोबार्बीटल का व्यापारिक नाम है जो हरे रंग के कैप्सूल में आती है। यह 'पर्पल हर्ट्स', 'बार्ब्स' या 'इडियट पिल्स' के नामों से ज्ञात है।

चिकित्सक और कानून लागू करने वाले अधिकारियों के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वे इन कैप्सूलों के रंगों को याद रखें, जिससे वे जब्त करते समय इन औषधियों की पहचान कर सकें। बार्बीच्यूरेट्स की अधिक मात्रा खाने से मरे लोगों की शव परीक्षा करते समय चिकित्सक आसानी से मौत के लिए जिम्मेदार औषधि की पहचान पेट में पाए गए कैप्सूलों के रंग से कर सकते हैं।

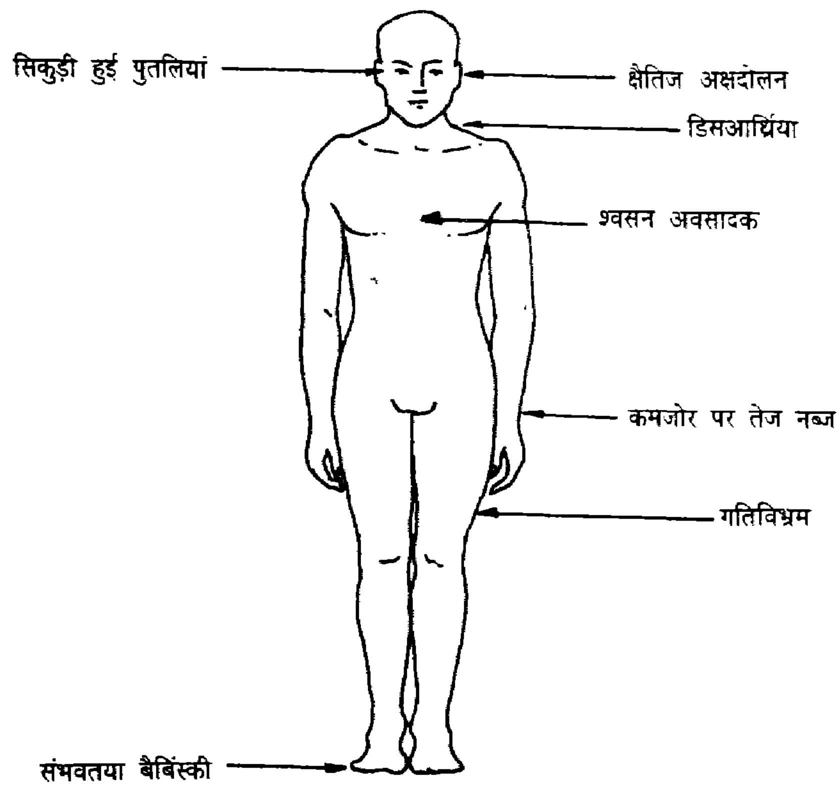
बार्बीच्यूरेट्स के शामक प्रभाव

हालांकि बार्बीच्यूरेट्स का चिकित्सकीय उपयोग एक सुरक्षित और अधिक प्रभावकारी औषधि वर्ग बेंजोडायजीपाइंस (लोकप्रिय औषधि कांपोज इससे संबंधित है) की तुलना में काफी कम हो गया है। फिर भी वे कई अवस्थाओं के लिए अति उपयोगी हैं। आजकल बार्बीच्यूरेट्स का उपयोग कुछ विशेष जठरांत्रीय व्याधियों, उच्च रक्तचाप, दमा, हृदय-धमनीरोध और ऐंठन के इलाज में होता है। वे सिर की चोट सहित कई मस्तिष्क व्याधियों के लिए भी मूल्यवान हैं। बार्बीच्यूरेट्स उपयोग में सुरक्षा-सीमा या उनके सुरक्षित उपयोग की गुंजाइश काफी कम है। अगर नींद लाने के लिए इसकी एक निश्चित खुराक जरूरी है तो इसकी पांच गुना खुराक बेहोशी (कोमा) उत्पन्न करेगी और मूल खुराक का दस गुना मौत के लिए काफी है। इस प्रकार अगर कोई व्यक्ति एक कैप्सूल लेने से ही सो जाता है तो उसे मारने के लिए दस कैप्सूल काफी हैं। इसीलिए चिकित्सक के निर्देशों का सावधानीपूर्वक पालन करना अति महत्वपूर्ण है। और यही कारण है कि क्यों बार्बीच्यूरेट्स का आत्महत्या प्रयासों में इतना व्यापक दुरुपयोग होता है। जानबूझकर या अनजाने में बार्बीच्यूरेट्स की अधिक मात्रा लेकर मरने के मामले किसी अन्य औषधि की तुलना में अधिक होते हैं। बार्बीच्यूरेट्स से आत्महत्या के अलावा ये औषधियां अनचाही या दुर्घटनावश मृत्यु के कारणों के लिए भी कुख्यात हैं। इसका कारण इनके द्वारा उत्पन्न एक अनूठा प्रभाव है जिसे 'आटोमैटिज्म (स्वचालिता) कहते हैं।

कभी-कभी कोई व्यक्ति असली चिकित्सकीय अवस्था के कारण नुस्खे के अनुसार एक नींद की गोली ले लेता है जिसके मस्तिष्क के ऊपर प्रभाव के कारण यह भ्रमित हो जाता है। उसे याद नहीं रहता कि वह एक गोली ले चुका है, तथा वह एक गोली और ले लेता है, पर तब भी उसे यही यकीन होता है कि वह पहली गोली ही ले रहा है। इस प्रकार नींद की गोलियां लेने का भ्रम तब खत्म होता है जब बदकिस्मत व्यक्ति इनकी प्राणघातक मात्रा ले चुका होता है। इस प्रकार के स्वचालित व्यवहार को ड्रग आटोमैटिज्म कहते हैं और यह खासतौर से बार्बीच्यूरेट्स के साथ देखने में आता है। कभी-कभी व्यक्ति लगातार गोलियां खाता रहता है। वह इस बात पर गौर नहीं करता कि बार्बीच्यूरेट्स की अवशोषण दर काफी धीमी है और इसका प्रभाव देर से प्रकट होता है। अपनी इस लापरवाही से भी व्यक्ति अनजाने में औषधि की प्राणघातक

खुराक ले लेता है।

अपने द्वारा उत्पन्न सुखभ्रांतिजनक प्रभाव के कारण बार्बीच्यूरेट्स का दुरुपयोग होता है। सामान्यतः ये मुंह से ली जाती हैं। पर नसों में इंजेक्शन द्वारा और गुदा द्वारा भी इन्हें लिया जा सकता है। बार्बीच्यूरेट्स के साथ शारीरिक निर्भरता और सहनशीलता तेजी से विकसित होती है। बार्बीच्यूरेट्स के कारण शारीरिक निर्भरता हेरोइन पर शारीरिक निर्भरता से भी अधिक गंभीर समझी जाती है। रोमांच तलाशने वालों और चिरकालिक व्यसनियों द्वारा बार्बीच्यूरेट्स का दुरुपयोग बहुधा अल्कोहल और ओपिएट जैसी औषधियों के साथ भी होता है। ऐसे तजुर्बेनुमा मिश्रण बेहद जोखिम भरे होते हैं क्योंकि ये सभी औषधियां मस्तिष्क के श्वसन केंद्र को प्रभावित करती हैं। ऐसे मिश्रणों से गंभीर विषाक्तता और मृत्यु भी हो सकती है। ऐसे भी मामले प्रकाश में आये हैं जब चिकित्सकों को मृतक के पेट से बहुत कम मात्रा में अल्कोहल और बार्बीच्यूरेट्स मिले। इनकी



चित्र 77 : बार्बीच्यूरेट्स–चिह्न और लक्षण।

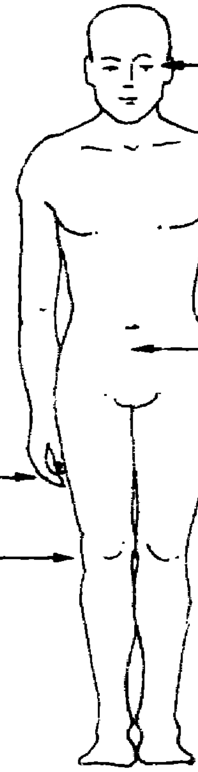
इतनी कम मात्राएं अकेले मृत्यु का कारण बनने के लिए नाकाफी थीं, पर साथ-साथ लिये जाने पर दोनों औषधियों ने एक दूसरे को बल पहुंचाया और मौत का कारण बनीं (बल प्रदान करने (पोटेंशिएशन) का अर्थ है कि औषधियों का मिला-जुला प्रभाव औषधियों के अलग-अलग प्रभाव से अधिक था)। जेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों की लोकप्रिय सूक्ति–"द सम इज ग्रेटर दैन इट्स पार्ट्स" (अपने भागों से योग अधिक होता है) बार्बीच्यूरेट्स और अल्कोहल के मामले में बिल्कुल सटीक बैठती हैं।

बार्बीच्यूरेट्स दुरुपयोग का सर्वाधिक स्पष्ट लक्षण है बिना अल्कोहल की दुर्गंध के नशे की-सी हालत रहना। साधारणतया उनींदापन और लड़खड़ाती चाल, कुर्सी पर बैठे-बैठे सो जाना, और आसपास की चीजों में दिलचस्पी खत्म होना इस हालत के प्रमुख लक्षण हैं। कुछ महत्वपूर्ण व्यावहारिक परिवर्तन भी होते हैं। दुरुपयोगकर्ता भ्रम का शिकार हो जाता है। वह अपनी मांसपेशियों के कार्य में तालमेल नहीं बिठा पाता और उदास, चिड़चिड़ा और झगड़ालू हो जाता है।

अपनयन लक्षण

बहुत से कारक अपनयन लक्षणों को प्रभावित करते हैं। दुरुपयोग की अवधि और मात्रा; औषधि का प्रकार और औषधि का सेवन बंद करने की शीघ्रता इनमें शामिल हैं। अगर शारीरिक निर्भरता अधिक प्रबल नहीं है तो बार्बीच्यूरेट्स छुड़ाने पर क्षीण लक्षण जैसे अनिद्रा, कंपकंपाहट, चिंता और कमजोरी आदि प्रकट होंगे। पर लंबे समय तक बार्बीच्यूरेट्स की अधिक मात्रा लेने वाला व्यक्ति अधिक नाटकीय और खतरनाक लक्षण अनुभव करेगा। आरंभ में अपनयन लक्षण क्षीण दिखते हैं। जैसे-जैसे रक्त में बार्बीच्यूरेट्स की मात्रा घटती है और विषाक्तता साफ होती जाती है, तब पहले 12 से 15 घंटों तक व्यक्ति आमतौर पर अच्छा महसूस करता है। इस शुरुआती झूठे सुधार के बाद औषधि पर निर्भर व्यक्ति की बेचैनी, चिंता, कंपकंपाहट और कमजोरी बढ़ती जाती है। ऐंठन, उबकाई और उल्टी भी हो सकती है। घटते रक्तचाप के कारण व्यक्ति जब उठता है तो मूर्च्छित होकर गिर जाता है।

तीन दिन बाद ये लक्षण चरम सीमा पर पहुंचते हैं। इसी समय शरीर में झटके लगने लगते हैं। यह प्रभाव अब तक का सबसे खतरनाक लक्षण है। कुछ खास दीर्घावधि असरकारक बार्बीच्यूरेट्स जैसे फेनोबार्बीटल के साथ अपनयन



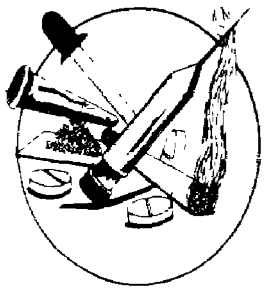
चित्र 78 : बार्बीच्यूरेट्स के अपनयन लक्षण।

लक्षण धीरे-धीरे बढ़ते हैं और उन्हें व्यक्ति को अपने वश में करने में औषधि बंद करने के बाद सात-आठ दिन लग जाते हैं। इस दौरान चिंता चरम अवस्था में होती है और दृष्टिभ्रम, काल व स्थान का बोधह्रास और सन्निपात भी हो सकते हैं।

कई बार्बीच्यूरेट्स पर निर्भर व्यक्ति चौथे से सातवें दिन के अंदर इन ऐंठनों और मरोड़ों से मर जाते हैं। इन ऐंठनों का इलाज किसी भी ज्ञात औषधि से नहीं हो सकता है। यह विडंबना ही है कि इन ऐंठनों को सिर्फ बार्बीच्यूरेट्स से ही बंद किया जा सकता है। अगर निर्भर व्यक्ति एक-दो हफ्ते की इन कष्टदायी अवस्थाओं को झेल गया, तो वह दो महीनों के अंदर स्वस्थ होकर सामान्य जीवन जी सकता है।

बार्बीच्यूरेट्स के अपनयन लक्षण हेरोइन के अपनयन लक्षणों से भी अधिक खतरनाक होते हैं। बार्बीच्यूरेट्स का सर्वाधिक खतरनाक लक्षण—वास्तविक ऐंठन

या झटके, हेरोइन या ओपिएट के साथ देखने में नहीं आते हैं। दूसरी ओर हेरोइन के अपनयन लक्षण, जैसे आंख बहना, पेट में मरोड़, दस्त, बार्बीच्यूरेट्स छुड़ाने प्रर परिलक्षित नहीं होते हैं। दोनों के अपनयन लक्षणों के बीच यह मुख्य अंतर है। हेरोइन पर निर्भर लोगों में से एक तिहाई बार्बीच्यूरेट्स भी लेते हैं और चिकित्सक पाते हैं कि उनकी हेरोइन की लत छुड़ाने के बाद भी उनकी बार्बीच्यूरेट्स पर निर्भरता एक और भी गंभीर समस्या बनी रहती है।



उपसंहार

हम लत लगाने वाली अनेक औषधियों से परिचित हो चुके हैं। आज औषधि समस्या ने सारे विश्व को घेर लिया है। कुछ ही लोग जानते होंगे कि संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अपने सत्रहवें सत्र में 1991-2000 के दशक को 'औषधि दुरुपयोग के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र दशक' घोषित किया है। भारत में भी स्थिति काफी शोचनीय है। बड़े शहरों, खासकर महानगरों और उपनगरों में, ब्राउन शुगर लत लगाने वाली मुख्य औषधि है। अफीम, भांग, गांजा और चरस ग्रामीण इलाकों में नशे के मुख्य स्रोत थे और आज भी हैं। कुल मिलाकर मादक औषधि परिदृश्य कोई ऐसी चीज नहीं है जिस पर हम गर्व करें या संतोष करें। विश्व के दो सर्वाधिक खतरनाक और अवैध मादक औषधि व्यापार क्षेत्रों ('सुनहरा त्रिकोण' और 'सुनहरा चांद') के बीच फंसी हमारे देश की भौगोलिक स्थिति से भी यह समस्या गंभीर हो रही है। औषधि दुरुपयोग से निबटने के लिए भारत सरकार ने सन् 1985 में एक महत्त्वपूर्ण कानून पारित किया जिससे कानून लागू करने वाले अधिकारियों को व्यापक अधिकार मिल गये। जहां तक प्रावधानों के कार्यक्षेत्र व व्यापकता और उनके उल्लंघन के विरुद्ध दंड का संबंध है यह विधेयक निश्चित ही एक ऐतिहासिक विधेयक था। 'नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रापिक सब्सटैंसेज एक्ट 1985' (एन. डी. पी. एस. एक्ट 1985) के रूप में ज्ञात इस कानून में औषधि दुरुपयोग की समस्या को नियंत्रित करने के कई महत्वपूर्ण प्रावधान थे; दूसरी चीजों के साथ निश्चित मात्रा से अधिक मादक औषधियां लेकर चलना गैर-जमानती अपराध बन गया। अगर कोई व्यक्ति पहली बार इन औषधियों के साथ पकड़ा जाये तो उसे 10 साल की कैद और 1.5 लाख रु. जुर्माने की सजा मिलेगी। दुबारा अपराध करने पर यह सजा 20 साल कैद और 3 लाख रु. जुर्माने की होगी। इस कानून के तहत मादक औषधि नियंत्रण ब्यूरो के गठन का भी प्रावधान किया गया जिसके छह मंडलीय कार्यालय

मुंबई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, जोधपुर और वाराणसी में और एक क्षेत्रीय कार्यालय इंफाल में होगा। ब्यूरो का प्रधान कार्यालय दिल्ली में होना निश्चित हुआ। नये ब्यूरो और नये कानून के तत्वावधान में बहु-अनुशासित औषधि प्रवर्तन एजेंसियां अवैध औषधि तस्करों के खिलाफ अनवरत संघर्ष कर रही हैं। 1985 के एन. डी. पी. एस. एक्ट के प्रभाव में आने से पूर्व हमारे देश की पश्चिमी सीमा से भारी मात्रा में हेरोइन और चरस भारत में लाये जाती थीं, फिर उन्हें पश्चिमी देशों में स्थित ठिकानों पर पहुंचा दिया जाता था। कानून लागू होने के तुरंत बाद अप्रत्याशित रूप से भारी मात्रा में इन मादक औषधियों को पकड़ा जाने लगा। सारे भारत में हेरोइन की बरामदगी बढ़नी गयी। जहां सन् 1985 में मात्र 761 कि. ग्रा. हेरोइन जब्त की गयी, वहीं सन् 1986 में 2621 कि. ग्रा. और सन् 1988 में यह मात्रा 3,028 कि. ग्रा. तक पहुंच गयी। सन् 1992 जून के पहले हफ्ते में मुंबई पुलिस ने एक ही दिन में सबसे अधिक हेरोइन (350 कि. ग्रा.) बरामद करने का विश्व रिकार्ड बनाया।

पर कुछ विधि परिचालन संबंधी समस्याओं के कारण यह कानून उतना कारगर और उपयोगी साबित नहीं हो सका जितनी कि उम्मीद थी। इसलिए जुलाई 1988 में सरकार ने एक अध्यादेश पारित कर प्रवर्तन विभाग को यह कानूनी अधिकार दे दिया कि वे किसी भी व्यक्ति को शक के आधार पर दो साल तक जेल में बंद रख सकते हैं। इससे कानून का पैनापन बढ़ा। पर अभी भी काफी कुछ किया जाना जरूरी है।

लेकिन विचार करने की बात यह है कि सरकारी एजेंसियों पर निर्भर न रहकर इस दिशा में व्यक्तिगत स्तर पर कितना प्रयास किया जा सकता है। किशोरों का अपने से यह कहना सही है, 'अगर मैं एक बार इस औषधि का स्वाद चखूं तो शायद मुझे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मैं जब चाहे इस समस्या से बाहर निकल सकता हूं।' पर दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं होता। गड्ढा इस समस्या की सबसे अच्छी उपमा हो सकता है। पहाड़ की चोटी पर खड़े होने की कल्पना कीजिए और सोचिए कि आप नीचे देख रहे हैं। इससे नीचे गिरकर कोई भी उसी रास्ते ऊपर नहीं आ सकता। औषधियों के साथ भी यही स्थिति होती है। अधिकांश औषधियों में लत लगाने की असीमित शक्ति होती है और सिर्फ एक बार चखकर भी आप अवश्य ही इनके जाल में फंस जायेंगे। ऐसी स्थितियां हो सकती हैं, जब आप तनावग्रस्त हों और तनाव कम करने के लिए औषधियों का सहारा लेने की सोच रहे हों, पर औषधियां अस्थायी और मिथ्या राहत ही

पहुंचाती हैं। लंबे समय के सेवन के बाद औषधियां अधिक नुकसानदायक साबित होती हैं। अगर आप तनाव महसूस करें तो बेहतर यही होगा कि आप अपने माता-पिता, भाई-बहनों, मित्रों, सहयोगियों, शिक्षकों, पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका से अपनी समस्या पर चर्चा करें न कि औषधियों का सहारा लें।

कई लोग औषधि लेने से मना करना चाहते हैं, पर कर नहीं पाते क्योंकि उन्हें उनके मित्रगण औषधि सेवन के लिए बाध्य कर देते हैं। या वे समूह में बने रहना चाहते हैं। यह तथाकथित बराबरी की होड़ है। हर कोई अपनी मित्रमंडली में खपना चाहता है। पर औषधि सेवन की बात आने पर पहले अपना संकल्प दृढ़ करना चाहिए। 'नहीं, धन्यवाद' कहना ही उचित होगा। ऐसी मंडली से उठकर चल देने से भी सहायता मिलेगी। सबसे अच्छा तो यही होगा कि ऐसी स्थितियों से बचा जाए। खेल-कूद, संगीत, शास्त्रार्थ आदि गतिविधियां बोरियत, निराशा और अवसाद से बचने के अच्छे साधन हैं। मां-बाप भी इसमें बच्चों की काफी सहायता कर सकते हैं। उपेक्षित महसूस करने पर कई किशोर औषधि लत के शिकार बनते हैं। मजबूत पारिवारिक संबंधों से बच्चे में परिवार के प्रति प्यार और आत्मविश्वास पनपता है।

अन्य पठन सामग्री

अनिल अग्रवाल (1992) : *1000 क्राइम क्विज,* रूपा एंड कं. 180 पृष्ट मादक

औषधियों पर प्रश्नोत्तर रूप में जानकारी।

अर्नेस्ट एल. एबेल (1980) : *मैरिजुआना–द फर्स्ट ट्वेल्व थाउजैंड ईयर्स,* प्लेनम प्रेस, न्यूयार्क; 289 पृष्ठ।

मैरिजुआना (गांजे) के इतिहास पर अति मनोरंजक पुस्तक। गांजे के बारे में गहराई से खोजबीन करना चाहने वालों के लिए पढ़ने लायक। पुस्तक के अंत में 500 पुस्तकों की संदर्भ-ग्रंथ सूची है, ताकि पाठक और जानकारी प्राप्त कर सकें।

एच. आई. ग्रीन, एम. एच. लेवी (1976) : *ड्रग अब्यूज–ह्यूमैन अब्यूज,* मार्सेल डेकर इंका., 270, मैडीसन एवेन्यू, न्यूयार्क; 566 पृष्ठ।

कुछ पुरानी पर उपयोगी पुस्तक। पुस्तक में रोचक विशेषता यह है कि मादक औषधियों के संबंध में तथ्य प्रश्नोत्तर रूप में हैं।

एल. एस. गुडमैन, ए. जी. गिलमैन (1985) : *द फार्मेकोलोजिकल बेसिस आफ थिरेपयूटिक्स* (सातवां संस्करण) मैकमिलन पब्लिशिंग कं., न्यूयार्क; 1839 पृष्ठ।

एक अति विस्तारित पुस्तक, न सिर्फ मादक औषधियों पर, बल्कि सभी प्रकार की औषधियों पर। मूलतः विशेषज्ञों के लिए। औषधियों की रासायनिक संरचना, उनके गुण और मनुष्य के शरीर पर संपूर्ण प्रभावों का वर्णन पुस्तक में है।

एस. फिशर, ए. रस्किन, ई. एच. उहलेनहथ (1987) : *कोकीन–क्लीनिकल एंड बायोविहेवियरल आस्पेक्ट्स,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, यू. के.; 249 पृष्ठ।

कोकीन पर लगभग निर्णायक पुस्तक। अंतिम अध्याय में कई भ्रांतिजनक पौधों का भी विस्तार से रोचक वर्णन किया गया है।

कोनन कोर्नेटस्की, (1976) : *फार्मेकोलोजी : ड्रग्स एफेक्टिंग बिहेवियर,* जान विली एं. संस; 275 पृष्ठ।

सभी प्रकार की मादक औषधियों पर उपयोगी पुस्तक। कुछ-कुछ तकनीकी चिकित्सा शब्दावली से परिचित सामान्य पाठक भी इसका आनंद ले सकते हैं।

जान सी. क्रैंट्ज, (1974) : *हिस्टोरिकल मेडिकल क्लासिक्स इनवाल्विंग न्यू ड्रग्स,* विलियंस एं. विल्किंस कं., बाल्टीमोर; 129 पृष्ठ।

एल. एम. डी. और मार्फीन का रोचक इतिहास इस पुस्तक में है।

जेम्स सी. कोलमैन (1972) : *एबनार्मल साइकोलाजी एंड माडर्न लाइफ,* स्काट फोरेसमैन एं. कं., यू. एस. ए.; 798 पृष्ठ।

टी. ई. वैलिस (1960) : *टेक्स्ट बुक आफ फार्मेकोग्नोसी,* जे. एंड ए. चर्चिल लि. लंदन; 640 पृष्ठ।

मादक पौधों, जैसे पोस्त, सन और कोका की पहचान का वर्णन।

डी. वैलेचिंस्की, आई. वैलेस. ए. वैलेस (1980) : *द बुक आफ लिस्ट्स,* बैंटम बुक्स, यू. एस. ए.; 519 पृष्ठ।

पुस्तक में उन प्रसिद्ध लोगों के नाम दिए गये हैं जो विभिन्न मादक औषधियों का सेवन करते हैं। हल्के-फुल्के रूप से भी पठनीय।

डेंका पोदजास्का (1990) : द *अमेजिंग वर्ल्ड आफ प्लांट्स,* हैम्लिन, लंदन; 160 पृष्ठ।

पुस्तक में ऐसे पौधों का सचित्र खंड है जिनसे मादक औषधियां निकाली जाती हैं।

मेरिता एल. थामसन (1991) : *ग्रोईंग अप ड्रग-फ्री,* स्काट फोरेसमैन, एं. कं., यू. एस. ए.; 80 पृष्ठ।

मुख्यतः बच्चों के लिए मजेदार छोटी-सी पुस्तक। स्पष्ट और सटीक परिभाषाएं दी गयी हैं। प्रारंभिक जानकारी के लिए उत्तम।

लुईस लेविन (1964) : *फैंटास्टिका, नारकोटिक एंड स्टिमुलेरिंग ड्रग्स : देयर यूज एंड अब्यूज,* राउटलेज एंड केगन पाल, लंदन; 335 पृष्ठ।

सभी प्रकार की मादक औषधियों पर सामान्य जानकारी सहित पठनीय पुस्तक। शुरू से आखिर तक रोचक आख्यानों और पौराणिक कथाओं से भरपूर।

लेविस आर. गोल्डफ्रैंक (1986) : *टॉक्सिकोलोजिक इमर्जेंसीज*, एप्लेटोन-सेंचुरी क्राफ्ट्स, यू. एस. ए.; 930 पृष्ट।

चिकित्सकों के लिए; तकनीकी; मादक औषधियों के आधुनिक इलाज का अच्छा वर्णन। चिकित्सा संबंधी शब्दावली की थोड़ी जानकारी रखने वाले सामान्य जन भी इसका आनंद उठा सकते है।

लै. टी. टी. ब्राउन (1961) : द *एनिग्मा आफ एडिक्शन*. थामस चार्ल्स सी., यू. एस. ए.; 350 पृष्ट।

अपेक्षाकृत पुरानी पुस्तक। अफीम, खासतौर से अफीम के धूम्रपान पर अध्याय के लिए मूल्यवान।

सी. जे. एस. थामसन (1931) : *पायजन्स एंड पायजनर्स* हेराल्ड शेलर, लंदन; 392 पृष्ट।

एक पुरानी पुस्तक; अत्यधिक पठनीय, जिसमें सभी मादक औषधियों का वर्णन है। इनसे संबंधित कई दिलचस्प आख्यान और पौराणिक कथाएं भी पुस्तक में हैं। गैर-तकनीकी।

सी. जे. पोलसन, एम. ए. ग्रीन, एम. आर. ली. (1983) : *क्लिनिकल टाक्सिकोलाजी*, पिटमैन, लंदन; 608 पृष्ठ।

एक तकनीकी पुस्तक जिसमें मादक औषधियों का रोचक इतिहास है।

स्यूगो ग्लेसर (1888) : द *ड्रामा आफ मेडिसिन*, बटरवर्थ्स प्रेस, लंदन।

कई मादक औषधियों के पीछे की रोचक कहानियों का संग्रह।

हैडाड विंचेस्टर (1983) : *क्लिनिकल मैनेजमेंट आफ पायजनिंग एंड ड्रग ओवर डोज*. डब्लू बी सौंडर्स एंड कं., यू. एस. ए.; 1012 पृष्ट।

विषय विज्ञानियों के लिए तकनीकी पुस्तक। लेकिन तकनीकी शब्दों का कम से कम प्रयोग करते हुए स्पष्ट भाव से लिखी गयी है। मादक औषधियों पर एक विशाल खंड पुस्तक में है।

मुद्रक : ब्यूटी प्रिंट, 10/8020 मुलतानी ढाडा, पहाडगंज, नई दिल्ली-55